तात्या टोपे

[क्रान्ति के महान् अग्रदूत तात्या टोपे पर निष्पक्ष ऐतिहासिक दृष्टि डालने वाला अपूर्व जीवनचरित]

लेखक

श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्राक्कथन

सन् १८५७ की क्रान्ति को प्रायः १०७ वर्ष हो गए हैं। इतिहास की दृष्टि से यह घटना बहुत पुरानी नहीं कही जा सकती। आज से कोई ३०–३५ वर्ष पूर्व तक ऐसे वृद्धजन जीवित थे जिन्होंने अपने बाल्यकाल में इस क्रान्ति की घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था। आज भी देश में ऐसे वृद्धजनों की कुछ न कुछ संख्या अवश्य है जो इस क्रांति के प्रत्यक्षदर्शी ही न हों पर जिन्होंने अपने उन पूर्वजों से इसकी घटनाओं का ...न सुना होगा जो क्रांतिकाल में जीवित थे। पर दुर्भाग्य से इतिहास के ...हत्त्वपूर्ण आधार बहुत कुछ लोप हो चुके हैं तथा जो शेष हैं वे भी दुनिया ...ते जा रहे हैं। इस क्रांति के भारतीय पक्ष पर प्रकाश डालनेवाले ...रों का प्रायः अभाव-सा ही है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त साधन ... के सम्बन्ध में भारतीयों के दृष्टिकोण को समझने में इतिहासकारों ...ए बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है ... तत्कालीन घटनाओं से सम्बन्धित इन वृद्धजनों के ज्ञान का संग्रह किया जाय तथा अन्य आधारों के साथ इसकी तुलना कर सत्यासत्य का निर्णय किया जाय। निःसन्देह श्री अमृतलाल नागर ने इस दिशा में प्रयत्न किया है। अवध के कुछ ज़िलों में घूमकर, वृद्धजनों से मिलकर, आपने उनसे प्राप्त जानकारी को 'ग़दर के फूल' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया है। यह स्वाभाविक ही है कि एक व्यक्ति द्वारा किये गए प्रयास का दायरा संकुचित ही रहेगा। एक राष्ट्रव्यापी क्रांति की ऐतिहासिक खोज भी राष्ट्रव्यापी होनी चाहिए।

वास्तव में इस क्रांति का इतिहास एकांगी ही सा है। क्योंकि इसके इतिहास का मुख्य आधार है अंग्रेजों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ अथवा अंग्रेज़ी सरकार के पुराने रिकार्ड। अंग्रेज तो इस क्रांति-संघर्ष में एक पक्ष थे।

अतएव उनके लेखों में निष्पक्षता, वास्तविकता और ऐतिहासिक सत्य की आशा करना व्यर्थ ही है। अधिकतर अंग्रेज़ लेखकों ने हिन्दुस्तानियों को 'शत्रु', 'बदमाश', 'हत्यारे', 'पाण्डे'[१] आदि नामों से पुकारा है। अंग्रेज़ लेखक या तो जानबूझकर इस गौरवपूर्ण क्रांति को अपने वास्तविक रूप में संसार के सामने नहीं आने देना चाहते थे या वे भारतीय भावनाओं और विचारों से इतने अनजान थे कि इस क्रांति के भारतीय पक्ष को समझने की क्षमता उनमें नहीं थी। अंग्रेज़ इस बात से बड़े सचेत थे कि क्रांति का इतिहास अपने वास्तविक और सच्चे रूप में भारतीयों के सामने न आने पाए। अन्यथा बहुत सम्भव है कि इसकी स्मृति भारतीयों के लिए इस देश से अंग्रेज़ी सत्ता को मिटा देने के निश्चय का स्फूर्ति-केन्द्र जाय। अतएव अंग्रेज़ लेखकों ने अंग्रेज़ सेनानियों के कार्यों को चढ़ाकर और उनपर वास्तविकता से अधिक महानता लादकर गौरवशाली बनाने का सदा प्रयत्न किया। पर क्रांतिकारियों के उद्देश्यों और उनके नेताओं के उज्ज्वल चरित्रों को काले तथा घृणि में चित्रित करने में वे सदा प्रयत्नशील रहे। इस बात के भी प्र मिलते हैं कि वे कागज़ात जिनके द्वारा क्रांति की महानता पर पड़ता था, अंग्रेज़ अधिकारियों ने जानबूझकर नष्ट कर दिये। सुप्र लेखक सर जेम्स हिल ने इस बात को इन शब्दों में स्वीकार कि है: "जिस बात को वे छिपाना चाहते थे उसको छिपाने में बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स ने अपनी कुशलता का सर्वत्र परिचय दिया है।"

भारतीय पक्ष को सच्चे रूप में संसार के सामने लानेवाली ऐतिहासिक सामग्री या तो नष्ट कर दी गई या नष्ट हो गई। क्रान्ति की असफलता के बाद इसके नेताओं ने अपने सभी पत्र-व्यवहार तथा क्रांति-सम्बन्धी सभी कागज़ात आत्मरक्षा के लिए नष्ट कर दिए। आज अगर हमें नानासाहब, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, बहादुरशाह, कुंवरसिंह, मौलवी

१. मंगल पाण्डे के बलिदान के बाद अनेक अंग्रेज़ 'पाण्डे' शब्द का प्रयोग घृणापूर्ण ढंग से प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए करते थे।

अहमदुल्ला शाह, हज़रतमहल बेगम आदि के पत्र-व्यवहार मिलते तो वास्तव में ये सब इस क्रांति के इतिहास के लिए बहुमूल्य सामग्री सिद्ध होते। साथ ही जो पत्र-व्यवहार इनके सम्बन्धियों के यहाँ था वह भी इन्होंने नष्ट करने में ही अपनी भलाई समझी। अपने संशोधन-कार्य के सिलसिले में लेखक को पता चला कि ब्रह्मावर्त के पंडों ने उन बहियों को नष्ट करने में ही अपना हित माना जिन बहियों पर नानासाहब पेशवा, तात्या टोपे, झाँसी वाली रानी तथा इनके कुटुम्बियों की सनदें तथा हस्ताक्षर थे।

समकालीन निष्पक्ष भारतीय लेखकों द्वारा लिखे गए ग्रन्थों का तो अभाव ही है। तत्कालीन उर्दू के इतिहासकार अधिकतर अंग्रेज़ों के पक्षपाती ही थे। उनकी किताबों में अंग्रेज़ों के पक्ष का समर्थन ही मिलता है। हाँ, दक्षिण से आये हुए यात्री विष्णु भट्ट गोडसे ने क्रांति की घटनाओं का जो आँखों देखा तथा कानों सुना हाल "माझा प्रवास" नामक मराठी ग्रन्थ में लिखा है वह भारतीय पक्ष पर काफी प्रकाश डालनेवाला है। पर ऐसे निष्पक्ष और विश्वसनीय ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। इस प्रकार राष्ट्रीय पक्ष के कार्यों, उद्देश्यों तथा इसके मुख्य पात्रों पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री अप्राप्य हो गई है। पर साथ ही साथ इतना होने पर भी इस प्रकार की सामग्री पूर्णरूपेण लुप्त नहीं हो पाई है।

आज भी अगर प्रयत्न किये जाएँ तो नेपाल, ग्वालियर, इन्दौर आदि अनेक राज्यों के सरकारी बस्तों में इस क्रांति के सम्बन्ध में सामग्री प्राप्त हो सकती है। मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, रुहेलखण्ड, अवध आदि भागों में पुराने सरदारों, जमींदारों, तालुकेदारों, देशी नरेशों आदि के यहाँ पुराने बस्तों में आज भी न मालूम कितनी अमूल्य सामग्री छिपी पड़ी होगी। अभी कुछ वर्षों पूर्व ग्वालियर के भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने अपने परिवार के प्राचीन कागज़ात से नानासाहब पेशवा के उपनयन-संस्कार की निमन्त्रण-पत्रिका खोज निकाली है। यह निमन्त्रण-पत्रिका बाजीराव पेशवा ने भालेराव के पूर्वज 'बामनजी खंडेराव सूबेदार' को

भेजी थी। इसी प्रकार भालेरावजी ने झाँसी राज्य के दीवान मुले के वंशजों के यहाँ के बस्तों से बाजीराव पेशवा के उत्तराधिकारपत्र की एक प्रति खोज निकाली है। यह निमन्त्रण पत्र तथा उत्तराधिकारपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने बानपुर के राजा मानसिंह के वंशजों के यहाँ महारानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र देखा था। इस पत्र में महारानी ने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया था। पर दुर्भाग्य से वह पत्र प्रकाशित नहीं हुआ है। अब शायद इस पत्र का मिलना भी कठिन हो गया है। ऐसी न जाने कितनी ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो जाने के मार्ग पर है। इसका उद्धार करना हमारी सरकार, हमारे इतिहासकारों और संशोधकों का पवित्रतम राष्ट्रीय कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यकता है लगन की, परिश्रम की, खोज की और धन की भी। तभी इतिहास की यह महत्त्वपूर्ण सामग्री नष्ट होने से बचाई जा सकती है और सत्तावनी क्रांति के भारतीय पक्ष पर अज्ञानता का जो काला आवरण पड़ा हुआ है उसे भी दूर किया जा सकता है।

सन् १९४७ ई० में देश के स्वतन्त्र होने पर, यह स्वाभाविक ही था कि हमारे राष्ट्र की आँखें उन महान वीरों की ओर आकर्षित होतीं जिन्होंने अपने बलिदानों से देश के राजनैतिक मुक्ति के प्रयत्नों में योग-दान दिया। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने, जनमत से प्रभावित होकर, स्वातन्त्र्य-संग्राम का इतिहास तैयार करने की आवश्यकता का अनुभव किया। सन् १९५३ ई० के जनवरी मास में भारत सरकार ने स्वातंत्र्य-संग्राम का इतिहास तैयार करने के लिए एक सम्पादकमंडल की स्थापना की। इस मंडल ने विभिन्न प्रदेशों की सरकारों से, अपने-अपने क्षेत्रों में इस इतिहास की सामग्री की खोज करने के लिए समितियाँ बनाने की प्रार्थना की। केन्द्रीय सरकार के इस आदेश के अनुसार कई प्रदेशों की सरकारों ने इन समितियों का निर्माण किया। इन समितियों ने काफी परिश्रम से ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की। यह स्वाभाविक ही था कि इनका कार्य सन् १८५७ की क्रांति से, जो हमारा प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध

था, आरम्भ किया जाता। निदान विभिन्न ज़िलों से सत्तावनी क्रांति से सम्बन्धित सरकारी रिकार्डों से बस्ते खोजकर निकाले गए। समकालीन पुराने समाचारपत्रों की फाइलों से तत्कालीन घटनाओं पर प्रकाश डालने वाले समाचार तथा उस समय के लोगों के विचारों को एकत्रित किया गया। इस प्रकार इस क्रांति के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली बहुमूल्य मूलभूत सामग्री पुस्तकों के रूप में प्रकाश में लाई गई। निःसन्देह यह आधारभूत सामग्री भावी इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

पर दुर्भाग्य से यह खोज भी एकाङ्गी सिद्ध हुई। इस खोज के परिणामस्वरूप जो सामग्री प्रकाश में आई वह अधिकतर सरकारी पुराने रिकार्डों से ही प्राप्त की गई थी। स्वभावतः यह सामग्री भी अधिकतर अंग्रेज़ों के पक्ष का समर्थन करनेवाली है। बहुत कम ऐसी सामग्री प्रकाश में आई है जो भारतीय पक्ष पर प्रकाश डालने की क्षमता रखती हो। यही कारण है कि इस सामग्री के आधार पर लिखे गए इतिहास भी एकाङ्गी ही हैं तथा वे केवल ब्रिटिश पक्ष पर ही प्रकाश डालते हैं।

सत्तावनी क्रान्ति के अवसर पर सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० सुरेन्द्रनाथ सेन ने १८५७ का इतिहास लिखा है। सरकार और राष्ट्र की आकांक्षा थी कि स्वतन्त्र भारत की सरकार द्वारा प्रकाशित यह इतिहास इस क्रान्ति के भारतीय पक्ष पर प्रकाश डालनेवाला हो, पर डा० सेन जैसे विद्वान भी अंग्रेज़ लेखकों के प्रभाव से अपनी रक्षा करने में असफल रहे। पुरानी बातें कुछ नये ढंग से अवश्य कही गईं। पर इस इतिहास में अंग्रेज़ों की भावना ही सर्वत्र दिखाई देती है।

डा० सेन के 'अठारह सौ सत्तावन' को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होने लगता है कि लेखक कहीं अंग्रेज़ी कैम्प में बैठकर इतिहास लिख रहा है। भारतीय पक्ष का उससे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। दिल्ली के मोरचे पर हम लेखक को दिल्ली पुनर्विजय के लिए आगे बढ़नेवाली अंग्रेज़ी सेना के साथ ही पाते हैं। बहादुरशाह की दिल्ली में, जिसने १३३ दिनों तक अंग्रेजों की सुसज्जित और विशाल सेनाओं का सामना

किया, उन्हें केवल आपसी फूट, लड़ाई-झगड़ा, लूटमार और असन्तोष ही दिखाई देता है। कानपुर में लेखक घिरे हुए अंग्रेज़ों के साथ ही उपस्थित मालूम होते हैं। क्रान्तिकारियों के एक-एक गोले का अंग्रेज़ों पर क्या प्रभाव पड़ता था, कितने मरते थे, कितने घायल होते थे आदि बातों का विस्तृत विवरण आपको इतिहास में मिलेगा। पर जहाँ से ये गोले दागे जाते थे उस कैम्प का कोई विशेष हाल आपको न मिलेगा। लखनऊ में भी हम लेखक को 'बेली गारद' में घिरे हुए अंग्रेज़ों के बीच पाते हैं। रेज़ीडेन्सी में भोजन-सामग्री की कमी, सिगरेट-शराब का वितरण आदि साधारण बातों पर प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं 'बेली गारद' की दीवाल पर संयोगवश बैठे हुए नीलकण्ठ पक्षी के सुन्दर पंखों का भी वर्णन पढ़ने को मिलेगा। पर 'बेली गारद' के बाहर हज़रतमहल बेगम, मौलवी अहमदुल्ला शाह, राना बेनीमाधव के नेतृत्व में क्रान्तिकारी क्या योजनाएँ बना रहे हैं, क्या कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं मिल सकती। विद्वद्वर डा० सेन का इसमें कोई दोष नहीं। दोष है उस सामग्री का जिसके आधार पर उन्होंने इतिहास की रचना की।

इसी शताब्दी के अवसर पर भारत के प्राचीन काल के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० आर० सी० मजुमदार ने भी "सिपाही-विद्रोह और १८५७ का विप्लव" (The sepoy Mutiny and Revolt of 1857) नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखा है। डा० सेन तथा डा० मजुमदार दोनों ही ने इस क्रान्ति को केवल विद्रोह के ही रूप में देखा। वे इसे स्वातंत्र्य-संग्राम नहीं मानते और न इन इतिहासज्ञों को इसके पीछे किसी योजना अथवा कार्यक्रम का आभास ही मिला। इन दोनों आदरणीय विद्वानों के आधारभूत ग्रन्थ अंग्रेज़ों द्वारा ही लिखे गये थे। सरकारी रिकार्ड भी इनका सहायक रहा। पर क्रान्तिकारियों की योजना अथवा कार्यक्रम न इन्हें इन ग्रन्थों में मिल सकते थे और न सरकारी रिकार्डों में। वे तो इन्हें तभी प्राप्त हो सकते थे जबकि उन्हें क्रान्तिकारियों के कैम्प में प्रवेश मिलता। इन इतिहासज्ञों ने क्रान्तिकारी कैम्पों में प्रवेश प्राप्त कर

सामग्री खोजने के बजाय 'पुरानी शराब को नई बोतलों में भरना' आरंभ किया। परिणामस्वरूप वे इसे स्वातंत्र्य-संग्राम के रूप में न देख सके और न इन्हें इस क्रान्ति के पीछे कोई निश्चित योजना अथवा क्रान्ति के आरम्भ करने की निश्चित तिथि ही दिखाई दी।

लेखक को अपने बाल्यकाल में इस क्रान्ति की जन्मभूमि ब्रह्मावर्त (बिठूर) में उन वृद्धजनों से बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जो इस क्रान्तिकाल में जीवित थे तथा जिनके स्मृति-पटल पर इससे संबंधित घटनाएँ अङ्कित थीं। तात्या टोपे के सौतेले भाई विनायक पाण्डुरंग टोपे तथा सदाशिव पाण्डुरंग टोपे के दर्शन करने का सौभाग्य लेखक को अपने बचपन मे प्राप्त हुआ था। अभी कुछ दिनों पूर्व तक देश में ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने पूर्वजों से क्रान्ति का आँखों देखा हाल सुना था। इनमें एक-दो वृद्धजन आज भी भूतकाल के अवशेषों के रूप में विद्यमान हैं जो क्रान्तिकाल की घटनाओं का वर्णन करने की क्षमता रखते हैं। में अपने बचपन से ही इन वृद्धजनों से क्रान्ति के सम्बन्ध में बातें सुना करता था। इस क्रान्ति के नेता नानासाहब, तात्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाई आदि की जीवन-सम्बन्धी अनेक घटनाओं को सुनते रहने के कारण इस क्रान्ति और इसके नेताओं के उच्च आदर्श तथा उदात्त चरित्रों के सम्बन्ध में हृदय-पटल पर उनके उज्ज्वल चरित्र अंकित हो गये थे। पर आगे चलकर ज्यों-ज्यों मैं इस क्रान्ति के अंग्रेज़ लेखकों के ग्रन्थ पढ़ने लगा त्यों-त्यों मैंने अनुभव किया कि इन ग्रन्थों में क्रान्ति के तथा उसके नेताओं के जो चित्र खींचे गए हैं, वे मेरे हृदय-पटल के चित्रों से सर्वथा भिन्न हैं। इस समय मेरे सामने दो प्रकार के चित्र थे। एक प्रकार के चित्र महान् आदर्शों से परिपूर्ण तथा गौरवशाली थे। दूसरे प्रकार के चित्रों में निर्दयता, क्रूरता और नृशंसता प्रतिबिम्बित थी। मैं इन दोनों प्रकार के चित्रों की तुलना करता रहा। अन्त में वर्षों के अध्ययन, मनन तथा चिन्तन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रारम्भिक काल मे जो छाप मेरे मस्तिष्क और हृदय पर अंकित हुई थी वही वास्तविकता

और सत्य लिए हुए है। अंग्रेज़ लेखकों की लेखनी से भी कभी-कभी, अनिच्छा से क्यों न हो, ऐसी बातें यत्र-तत्र निकल पड़ी हैं जो मेरी प्रारम्भिक कल्पनाओं का समर्थन करती हैं। अंग्रेज़ लेखकों द्वारा लिखित पंक्तियों के बीच अलिखित लेखों को ध्यान देकर पढ़ने से भी मेरे इसी विश्वास को बल मिलता है कि यह क्रान्ति फिरंगियों की सत्ता को मिटा देने का एक संगठित तथा पूर्व-नियोजित प्रयास था।

तात्या के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें टोपे कुटुम्ब तथा ब्रह्मावर्त के वृद्धजनों से सुनी थीं। पर सब सुनी बातों को ऐतिहासिक सत्य नहीं माना गया है। साथ ही उन सबको प्रारम्भ से केवल कपोल-कल्पना भी नहीं माना गया है। प्रत्येक कथन को इतिहास तथा अन्य विश्वसनीय आधारों तथा बुद्धि की कसौटी पर कसा गया है और अगर यह कथन इस परीक्षण में खरा उतरा तभी उसे स्वीकार किया गया है। इस प्रकार यह चरित्र लिखने में विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण ही अपनाया गया है। इसमें ऐसी कोई बात स्वीकार नहीं की गई है जिसकी ऐतिहासिक आधारों से पुष्टि न होती हो। इनको स्वीकार करने में तत्कालीन परि-स्थितियों, रीति-रिवाजों और व्यावहारिक संभावनाओं का पूर्ण ध्यान रखा गया है। मुझे विश्वास है कि इस जीवन-चरित्र द्वारा तात्या टोपे के चरित्र पर नव प्रकाश पड़ेगा।

तात्या के अन्त के सम्बन्ध में प्रचलित इतिहास से मेरा मतभेद है। सन् १८५७ की क्रान्ति के इतिहास का अध्ययन करने से मेरी धारणा दृढ़ बन गई है कि शिवपुरी में तात्या टोपे के नाम से जो व्यक्ति फाँसी लटकाया गया वह तात्या टोपे न था वरन् उन्हींका कोई अन्य साथी था। मेरी इस धारणा के पक्ष के ऐतिहासिक प्रमाण इस पुस्तक में यथास्थान दिये गए हैं। मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार कलकत्ते के 'ब्लैक होल' की मनगढन्त कथा अब अविश्वसनीय मानी जाने लगी है, उसी प्रकार तात्या के अन्त के सम्बन्ध में भी इतिहास को अपने प्रचलित विश्वास को बदलने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

तात्या टोपे जैसे ऐतिहासिक महापुरुष का कोई अच्छा चरित्र (किसी भी भाषा में) न होना वास्तव में दुःख और लज्जा की बात है। इस कमी की पूर्ति करने का यह जीवन-चरित्र एक अल्प-सा प्रयास है। आवश्यकता इस बात की है कि किसी महान् इतिहासकार का ध्यान इतिहास के इस अभाव की ओर आकर्षित हो तथा उसके द्वारा इस पराक्रमी स्वातंत्र्यवीर का एक ऐसा चरित्र प्राप्त हो जिसे पढ़कर भारतीय गौरवान्वित अनुभव कर सकें। अगर यह छोटा-सा चरित्र किसी इतिहासज्ञ का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

सत्तावनी क्रांति का अध्ययन करने में मुझे गुरुवर्य इतिहासाचार्य पंडित लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी से सदा प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है। आपने तात्या टोपे के जीवन पर ऐतिहासिक पुस्तक लिखने की केवल प्रेरणा ही नहीं दी वरन् इतिहास-सम्बन्धी-पुस्तकों के अपने विशाल संग्रह के द्वार भी मेरे लिये उन्मुक्त कर दिए। उनके सक्रिय और स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन के बल पर ही इस पुस्तक की रचना करना मेरे लिए सम्भव हो सका। उन्होंने इस चरित्र की हस्तलिखित प्रति को पढ़कर स्थान-स्थान पर संशोधन और परिवर्धन के अनेक सुझाव दिए जो वास्तव में पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। अतएव मैं उनके प्रति श्रद्धापूर्ण कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति को, मेरे मित्र श्री गजपतराय सक्सेना एडवोकेट ने बड़े परिश्रम तथा ध्यानपूर्वक दोहराने का कष्ट किया है जिसके परिणामस्वरूप इसे और अधिक शुद्ध रूप प्राप्त हुआ है। साथ ही दोसर वैश्य इण्टर कालेज, कानपुर के कला विषय के शिक्षक श्री सुशीलकुमार वर्मा ने टोपे वंशवृक्ष तथा तात्या टोपे की दौड़ का मार्ग चित्रित कर इस पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने में सहायता दी है। मैं इन दोनों मित्रों के प्रति अपने हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

—श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर

विषय-सूची

प्राक्कथन

परिशिष्ट :

चित्रावली

टोपे वंश वृक्ष
गजानन
काशी
नर्मदा
नरहरी
चन्द्रभागा
छोटी
माधव
शंकर + उमा
गणेश
गोदावरी
रामकृष्ण + राधाबाई
लक्ष्मण + भागीरथीबाई
नारायण
रघुनाथ + सीता
नारायण + रमा
रघुनाथ
रघुनाथ + गंगाबाई
गंगाधर + सावित्रीबाई
बैजनाथ + लक्ष्मीबाई
काशीबाई नेवालकर
सदाशिव + पार्वतीबाई
सखाराम
रामचन्द्र (तात्या) + जानकीबाई
गंगाबाई मोरे
पाण्डुरंग
विनायक + सरस्वतीबाई
गोविन्द
त्रिम्बक
वासुदेव

तात्या टोपे

प्रारम्भिक जीवन

तात्या टोपे के नाम का उच्चारण करते ही हमारी आँखों के सामने एक ऐसे पराक्रमी, वीर, साहसी तथा चतुर व्यक्ति का चित्र उपस्थित होता है जिसमें मिट्टी को स्वर्ण बनाने तथा निराशा के गहन अंधकार में आशा का आलोक उत्पन्न कर देने की अद्‌भुत क्षमता थी। अपनी इन अलौकिक शक्तियों से उन्होंने भारत के प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध को इतना प्रखर बना दिया था कि भारत का अंग्रेज़ी साम्राज्य भी डगमगाने लगा था। उस वीर ने दो वर्ष के क्रान्ति-काल में प्रायः डेढ़ सौ मोर्चों पर अंग्रेज़ी सेना से संघर्ष किया और अपने आश्चर्य-जनक रण-कौशल से अंग्रेज़ सेनानायकों को भी चकित कर दिया। विकट से विकट संकटकालीन परिस्थिति में भी तात्या का अदम्य साहस सदा अडिग रहता था। निराशाजनक परि-स्थितियों में भी मार्ग ढूँढ़ निकालने में जिस सूझ-बूझ का वे परिचय देते थे, उसकी अंग्रेज़ लेखकों तक ने बड़ी प्रशंसा की है। एक अंग्रेज लेखक ने इन्हें इटली के स्वातंत्र्य-वीर गेरीबाल्डी की उपमा दी है। मराठी लेखकों ने उन्हें 'शिवाजी की परम्परा का अन्तिम सेनानी' माना है। इसमें सन्देह नहीं कि सन् १८५७ के समराकाश में जो अनेक देदीप्यमान नक्षत्र प्रकट हुए थे उनमें तात्या टोपे की तेजस्विता अत्यन्त प्रभाव-शाली और प्रतिभापूर्ण रही है।

मराठों की रणनीति 'गनीमी कावा' (छापेमारी) का उस सेनानी ने अत्यन्त कुशलता एवं सफलता से उपयोग किया। संसार के इतिहास में तात्या टोपे के सानी का कोई छापेमार सेनानी ढूंढ़ निकालना सहज कार्य नहीं है। अनेक पराजयों के होते हुए भी यह वीर सदा अजेय ही रहा।

तात्या का जन्म अहमदनगर ज़िले के येवला नामक गाँव में एक देशस्थ ब्राह्मण के कुल में हुआ। इसी गाँव में इनके बाबा त्रिंबक भट[१] सरदार विंचूरकर के यहाँ कुल-देवता की पूजा किया करते थे। इनके पुत्र पांडुरंग भट श्रुति और स्मृति के विद्वान थे। शास्त्रोक्त कर्मकाण्ड कराने में ये बड़े कुशल माने जाते थे। तत्कालीन पेशवा बाजीराव धर्म-प्राण व्यक्ति थे। वे शास्त्रज्ञों और वेदज्ञों का बड़ा आदर करते थे। जब उनके कानों तक पांडुरंग भट की विद्वत्ता की बात पहुँची तो उन्होंने भट को तुरन्त पूना आने के लिए आमन्त्रित किया और अपना आश्रय प्रदान कर उन्हें वहीं रख लिया। बाजीराव के यहाँ जो धार्मिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञादि होते थे उनमें पांडुरंग भट सादर निमंत्रित किये जाते थे।

तत्कालीन प्रथा के अनुसार पांडुरंग भट का विवाह बालपन में ही हुआ था। उनकी पत्नी का नाम रुक्माबाई था। रुक्माबाई को ही तात्या की जननी बनने का गौरव प्राप्त हुआ था। तात्या उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका वास्तविक नाम रामचन्द्र था। रामचन्द्र के जन्म के दो वर्ष बाद रुक्माबाई

---

१. महाराष्ट्र में पुरोहिती करनेवाले व्यक्ति के नाम के आगे 'भट' शब्द जोड़ने की प्रथा है।

को द्वितीय पुत्र हुआ। उसका नाम गंगाधर रखा गया। गंगाधर अपने बड़े भाई रामचन्द्र को तात्या[1] कहकर पुकारते थे। आगे चलकर रामचन्द्र 'तात्या' नाम से विख्यात हुए।

तात्या की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं है। ऐसा कोई ऐतिहासिक आधार भी नहीं मिलता जिसके बल पर तात्या की जन्म-तिथि का निश्चय किया जा सके। तत्कालीन कागज़ात में यत्र-तत्र कुछ ऐसी बातों का उल्लेख मिल जाता है जिसके आधार पर उनके जन्म-वर्ष की कल्पना की जा सकती है।

नाना साहब और उनके साथियों को गिरफ्तार करने के लिए १८५८ में अंग्रेज़ों ने क्रान्तिकारियों की एक सूची उनके हुलिया के साथ प्रकाशित की थी, जिसमें तात्या की आयु ४२ वर्ष की लिखी गई थी। इसके अनुसार तात्या का जन्म वर्ष १८१६ होना चाहिए। पर इस सूची की समस्त बातों को प्रमाणित मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता। इसमें दी गई बातें साधारण-सी इधर-उधर की गई थोड़ी जाँच के बाद ही लिखी गई होंगी।

कथित तात्या टोपे ने १८५९ में अपने मुकदमे में जो लिखित बयान अदालत के सामने दिया था उसमें उन्होंने अपनी

---

१. मराठी भाषा में 'तात्या' अपने से बड़े और श्रद्धास्पद व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। संस्कृत का 'तात' शब्द इसका कुछ समानार्थी प्रतीत होता है। पर अंतर केवल इतना ही है कि 'तात्या' आयु में बड़े व्यक्ति के लिए ही प्रयोग में लाया जाता है, पर 'तात' का प्रयोग बड़ों के साथ-साथ छोटों के लिए भी किया जाता है।

आयु प्रायः ४५ वर्ष की कही थी। इस आधार के अनुसार तात्या का जन्म वर्ष १८१४ होना चाहिए। इसी जन्म-वर्ष की पुष्टि तात्या के कुटुम्बियों द्वारा भी होती है। ब्रह्मावर्त में तात्या टोपे के भतीजे नारायण लक्ष्मण तथा तात्या की भतीजी गंगूबाई रहती हैं। इनका कथन है कि उनके कुटुम्ब में सदा से यह बात कही जाती रही है कि जब पांडुरंग भट १८१९ में बाजीराव पेशवा के साथ ब्रह्मावर्त आये थे तव रामचन्द्र (तात्या) की आयु ४ वर्ष की थी तथा उनके छोटे भाई गंगाधर की आयु २ वर्ष की थी। टोपे कुटुम्ब के परंपरागत कथन से भी यही सिद्ध होता है कि तात्या का जन्म १८१४ में ही हुआ था। अतएव इसी वर्ष को उनका जन्म का वर्ष मान लेना अधिक उचित प्रतीत होता है।

जब बाजीराव पेशवा पूना का राज्य अंग्रेज़ों को सौंपकर ब्रह्मावर्त आया तो उसके अनेक आश्रित कुटुम्ब भी उसके साथ यहाँ आये। पांडुरंग भट भी अपनी पत्नी तथा अपने दो पुत्रों के साथ यहाँ आये। कुछ वर्षों के बाद रुक्माबाई की मृत्यु हो गई। बाजीराव पेशवा ने अपने जीवनकाल में ११ विवाह किये। साथ ही दूसरों के विवाह कराने का भी उसे शौक था। उसका वहुत-सा धन इस प्रकार विवाह कराने में खर्च हो जाता था। पांडुरंगराव की पत्नी की मृत्यु के बाद बाजीराव ने अपने एक अन्य आश्रित जेजूरकर नामक कुटुंब की कन्या मथुरा से उनका विवाह करा दिया। महाराष्ट्र की प्रथा के अनुसार मथुरा का ससुराल में नाम बदलकर रुक्माबाई रखा गया। पांडुरंग ने उसका वही नाम रखना पसन्द किया जो

उनकी प्रथम पत्नी का था। पर मथुरा ब्रह्मावर्त की ही थी, अतएव उसका बचपन का नाम ही प्रचलित रहा। वह मथुराबाई के नाम से ही पुकारी जाती रही।

पांडुरंग के द्वितीय पत्नी से ६ पुत्र और एक पुत्री हुई। उनके नाम क्रमशः ये हैं : रघुनाथ, रामकृष्ण, लक्ष्मण, बैजनाथ, सदाशिव, विनायक तथा दुर्गा।

बाजीराव ने ब्रह्मावर्त आते ही पांडुरंग भट को अपनी यज्ञशाला तथा धार्मिक विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। बाजीराव धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति था। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देना वह धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग मानता था। इसकी दानवीरता भी विख्यात थी। उसकी पेन्शन का एक बहुत बड़ा भाग इसी दान-धर्म में व्यय हो जाता था। उसके दान-विभाग का उत्तरदायित्व भी पांडुरंग भट पर ही था। इस प्रकार बाजीराव के यहां इन्हें अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान प्राप्त था।

तात्या अपने पिता के साथ अक्सर बाजीराव के महल में जाया करते थे। अपना कोई पुत्र न होने के कारण बाजीराव बच्चों की ओर बहुत आकर्षित रहता था। तात्या शीघ्र ही उसके प्रियभाजन बन गये। बाजीराव के गोद लिये हुए पुत्र नानासाहब से तात्या लगभग दस वर्ष बड़े थे। पर दोनों बाल-सखा थे। साथ-साथ ज्ञानोपार्जन करते थे और खेलते थे। जब मोरोपंत तांबे, अपने स्वामी चिमाजी अप्पा की मृत्यु के बाद काशी से ब्रह्मावर्त आये तो उनकी पुत्री मनू साथ आई थी। वह शीघ्र ही बाजीराव की लाड़ली छबीली बन गई। उसका भी लालन-पालन ब्रह्मावर्त के महल में नानासाहब, उनके भाइयों

और तात्या टोपे के साथ-साथ हुआ। यही मनू आगे चलकर इतिहास में झाँसीवाली रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। सत्तावनी क्रान्ति के इन तीन सेनानियों ने ब्रह्मावर्त की भूमि पर ही शस्त्र-विद्या, घुड़सवारी, निशानेबाज़ी आदि कलाएं सीखीं। इन तीनों महारथियों के बाल-हृदयों में इस समय देशप्रेम और वीरता के जो अंकुर जमे, वे आगे चलकर सन् १८५७ के रणांगणों में पूर्णरूप से पुष्पित और पल्लवित होकर संसार के सामने आये।

तात्या के कुटुम्ब का नाम 'टोपे' कैसे पड़ा, इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक आख्यायिका प्रचलित है। बिठूर स्थित टोपे कुटुम्ब का कहना है कि उनके कुल का यह पुराना नाम नहीं है। पहिले यह कुटुम्ब येवलेकर के नाम से प्रसिद्ध था। बाजीराव के समय ही इस कुटुम्ब को 'टोपी' नाम प्राप्त हुआ।

एक बार बाजीराव तात्या के किसी वीरता तथा साहसपूर्ण कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अनेक रत्नों से जड़ी हुई एक टोपी बनवाई और वह तात्या को पुरस्कार में दी। यह एक बिलकुल नवीन ढंग की तथा अप्रचलित-सी टोपी थी। तात्या के प्राचीन चित्र में यही टोपी उनके सिर पर दिखाई देती है। जब तात्या ने वह रत्न-जटित टोपी पहनी तो बाजीराव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें 'टोपी' कहकर पुकारा। तभी से तात्या के कुटुम्ब का नाम 'टोपी' पड़ा।

पुराने अंग्रेज़ लेखकों ने तथा सरकारी कागज़ात में उनका उल्लेख 'तंतिया टोपी' के नाम से ही किया गया है। विष्णुपंत गोडसे ने भी, जिन्होंने १८५७ की क्रांति की अनेक घटनाओं

को ग्वालियर, झाँसी, कालपी आदि स्थानों में प्रत्यक्ष देखा था, अपने ग्रंथ 'माझा प्रवास' में उन्हें तात्या टोपी ही कहा है। मराठी के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० नारायणकेशव बेहरे ने, १९२७ में प्रकाशित होनेवाले अपने 'सन् १८५७' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में उन्हें तात्या टोपी ही लिखा है। पर आजकल यह कुटुम्ब अपने को 'टोपे' कहता है। 'टोपी' का 'टोपे' हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

बाजीराव के परिवार से तात्या की इतनी अधिक घनिष्ठता हो गई थी कि यह पेशवा कुटुम्ब के ही एक सदस्य बन गये थे। बाजीराव उनसे बहुत स्नेह करता था, साथ ही तात्या भी बाजीराव से पितृतुल्य प्रेम करते थे। कहते हैं जब बाजीराव की मृत्यु हुई तो तात्या को इतना अधिक शोक हुआ कि उन्हें अपना जीवन बोझ मालूम होने लगा। शोक के आवेग में उन्होंने गंगा में कूदकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। पर वह किसी तरह बचा लिये गये। इसके बाद वे महीनों रुग्णशय्या पर पड़े रहे।

नानासाहब और तात्या का तो बचपन से ही साथ था। दोनों में स्नेह भी बहुत गहरा था। नानासाहब तात्या की व्यवहारकुशलता तथा बुद्धिमत्ता से भी बड़े प्रभावित थे। उनकी सलाह के बिना वे कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं करते थे। तात्या भी निष्ठापूर्वक नाना की सेवा करते थे। नाना की भलाई के लिए तथा उनके द्वारा संकल्पित कार्य को पूर्ण करने में किसी भी संकट को आमन्त्रित करने तथा महान से महान बलिदान करने में ये पीछे नहीं हटते थे। नाना का हित-

साधन ही तात्या के जीवन का उद्देश्य बन गया था। नानसाहब भी इन्हें सदा अपना मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक मानते थे।

पेशवाई की समाप्ति

सन् १७६१ ई० के पानीपत वाले युद्ध में मराठों की जो हार हुई, उससे मराठा साम्राज्य का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया था। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि पराजय का यह कठोर धक्का सहन करना मराठा साम्राज्य की शक्ति के बाहर की बात है। पर सौभाग्य से उस समय माधवराव पेशवा[1] नाना फड़नवीस तथा महदजी शिन्दे जैसे प्रभावशाली और कार्यकुशल व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने डगमगाते हुए मराठा साम्राज्य को नष्ट होने से बचा लिया। उन्हींकी दूरदर्शिता तथा राजनीतिज्ञता ने मराठी रियासत को हैदराबाद के निज़ामअली के आक्रमण से बचाया। निज़ामअली को पराजित कर माधवराव पेशवा ने खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः

१. 'पेशवा' या 'पंत प्रधान' वास्तव में मराठा साम्राज्य के अधिपति के प्रधानमंत्री थे। मराठा राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी तथा उनके कुछ उत्तराधिकारियों के काल में यह पद वंश-परम्परानुगत न था। पर छत्रपति शाहू के शासन में यह पद वंशपरंपरागत बन गया। शासन की वास्तविक बागडोर पेशवा के हाथों में चली गई। शाहू का नाम 'छत्रपति' रह गया। परिणामस्वरूप मराठा साम्राज्य 'छत्रपति के राज्य के स्थान पर 'पेशवाई' बन गया।

प्राप्त की। इसी प्रकार मैसूर के हैदरअली को, जिसने मराठा राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था, हराकर पेशवा ने पानीपत की हार के कलंक को प्रायः धो डाला। सन् १७७२ ई० में इस पराक्रमी पेशवा की मृत्यु हो गई। उनके छोटे भाई नारायणराव पेशवा पद पर आसीन हुए। साथ ही आपसी वैमनस्य तथा संघर्ष भी उस समय तक चरम-सीमा पर पहुँच चुके थे। अंत में नारायणराव पेशवा के चाचा राघोबा (रघुनाथराव) ने उनकी हत्या करवा डाली और स्वतः पेशवा की गद्दी पर बैठा। मराठा सरदारों ने हत्यारे राघोबा को पेशवा मानने से इन्कार कर दिया। उन लोगों ने राघोबा को गद्दी से हटाकर मृत नारायणराव के पुत्र सवाई माधवराव को पेशवा बनाया। राघोबा पदच्युत होते ही अंग्रेज़ों से जा मिला और उनकी सहायता से पुनः पेशवा पद प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। सवाई माधवराव एक अबोध बालक था। बारह सरदारों तथा राजनीतिज्ञों की एक समिति अल्पवयस्क पेशवा के पालकरूप में शासन करती थी। ये बारह व्यक्ति 'बारभाई' के नाम से प्रसिद्ध थे। अंग्रेज़ भला ऐसे सुअवसर को हाथों से कैसे जाने देते? उन्होंने राघोबा को पेशवा के पद पर बैठाने के लिए प्रयत्न किये। पर 'बारभाई' की राजनीतिज्ञता के सामने उनकी एक न चली। अंग्रेज़ों को मराठा साम्राज्य में हस्तक्षेप करने के प्रयत्न में पूर्णरूप से मुंह की खानी पड़ी।

कुछ वर्षों बाद सवाई माधवराव ने आत्महत्या कर ली। इनकी मृत्यु के बाद पेशवा पद के लिए पुनः संघर्ष आरंभ

हुआ। नाना फड़नवीस राघोबा के तीनों पुत्रों में से किसी को पेशवा नहीं बनाना चाहते थे क्योंकि वे 'हत्यारे' पिता के पुत्रों में से किसीको पेशवा पद पर बैठाना, उस महान पद का अपमान समझते थे। राघोबा का सबसे बड़ा पुत्र था—अमृतराव। पर यह गोद लिया हुआ पुत्र था। बाद में राघोबा को बाजीराव तथा चिमाजी अप्पा नामक दो पुत्र हुए। परिस्थितिवश नाना फड़नवीस को चिमाजी अप्पा को पेशवा बनाने का प्रयत्न करना पड़ा। पर चिमाजी राघोबा का छोटा पुत्र था और बाजीराव बड़ा। बड़े के रहते छोटे को गद्दी पर बैठाना अनुचित था। इस बाधा को दूर करने के लिए नाना-फड़नवीस ने चिमाजी को, मृत पेशवा सवाई माधवराव की विधवा पत्नी की गोद दिया। इससे पेशवा पद पर उसका अधिकार दुगुना हो गया। निदान चिमाजी अप्पा पेशवा बनाया गया। इसके उपरान्त पूना की राजनीति ने पुनः पलटा खाया। आत्मरक्षा के लिए नाना फड़नवीस को पूना से भागना पड़ा। नवीन पेशवा के विरोधियों का षड्यंत्र सफल हुआ। चिमाजी अप्पा को गिरफ्तार कर लिया गया तथा बाजीराव पेशवा पद पर आसीन हुआ।

बाजीराव नितान्त अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। अपनी कमज़ोरियों तथा तत्कालीन विकट परिस्थितियों के कारण वह गृह-कलह से मराठा साम्राज्य की रक्षा करने में असमर्थ रहा। इसी समय सन् १८०० ई० में नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई। उनके साथ ही मराठा साम्राज्य की बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता का सूर्य अस्त हो गया। बाजीराव के

सलाहकार अयोग्य थे। व्यवहारकुशलता की भी उनमें कमी थी। उनके व्यवहार से रुष्ट होकर यशवन्तराव होलकर ने पूना पर एक विशाल सेना लेकर आक्रमण किया। बाजीराव उनका सामना न कर सका। वह पूना से भागकर वसई (बसीन) के बन्दरगाह में अंग्रेज़ों की शरण गया। यहीं उसकी अंग्रेज़ों के साथ एक संधि हुई। यह इतिहास में 'वसई की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेज़ों ने बाजीराव पेशवा के राज्य की रक्षा करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। इसके लिए पूना में ६ हज़ार अंग्रेज़ी सेना रखने का निश्चय किया गया। इस सहायक सेना के व्यय के लिए बाजीराव ने २६ लाख रुपये वार्षिक आमदनी का भूभाग अंग्रेज़ों को देना स्वीकार किया। इन अपमानजनक शर्तों पर बाजीराव ने अंग्रेज़ों की कृपा से पेशवा पद पुनः प्राप्त किया।

यह सन्धि बाजीराव ने मराठा सरदारों की राय लिये बिना की थी। पर इसके घातक परिणाम सबको भोगने पड़े। इस सन्धि के परिणामस्वरूप मराठा साम्राज्य की एकता नष्ट हो गई और अंग्रेज़ी सरकार भारत की सार्वभौम सत्ता बन गई। होलकर, भोंसले आदि मराठा सरदारों ने इस असह्य परिस्थिति को पसन्द नहीं किया तथा अंग्रेज़ी सत्ता को स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं हुए। अंग्रेज़ों ने पेशवा की ओर से उन्हें विद्रोही घोषित किया। उन विरोधी सरदारों से एक के बाद एक से युद्ध कर उन्हें संधि करने के लिए बाध्य किया। इन सन्धियों के अनुसार सभी मराठे सरदारों को अपने-अपने राज्य में सहायक सेना तथा शासन की देख-

भाल करने के लिए अंग्रेज़ रेजीडेंट रखने पड़े। प्रत्येक को सेना के खर्च के लिए अपने राज्य के भूभाग देने पड़े। आपस में एक-दूसरे से पत्रव्यवहार करने तक की भी मनाही की गई। धीरे-धीरे पूना के रेजीडेंट ने शासन के सभी सूत्र अपने हाथों में ले लिए। बाजीराव नाममात्र का पेशवा रह गया। सोने के पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह वह परतंत्र और पर-मुखापेक्षी बन गया। वह अपनी इस दयनीय दशा से शीघ्र ही ऊब उठा। मराठे सरदार भी इस असह्य और अपमान-जनक स्थिति का अन्त करने के लिए व्याकुल हो उठे। अंग्रेज़ी सत्ता को मिटा देने के लिए मराठा साम्राज्य में पुनः एकता स्थापित करने के गुप्त प्रयत्न आरम्भ हुए।

गुप्त प्रयत्नों के समाचार उनके गुप्तचरों ने अंग्रेज़ों को दिए। इन समाचारों को सुनकर उनका घबड़ा उठना स्वाभाविक ही था। उन्होंने सोचा कि जब तक पेशवा की गद्दी का अस्तित्व बना रहेगा तब तक मराठे सरदार पेशवा के नेतृत्व में किसी भी समय एक हो सकते हैं तथा अंग्रेज़ी सत्ता के लिए संकट उपस्थित कर सकते हैं। अतएव उन्होंने पेशवाई को ही समाप्त करने का निश्चय किया।

एकाएक अंग्रेज़ी सरकार को यह बात सूझी कि मराठा साम्राज्य का मालिक सतारा का छत्रपति है। पेशवा तो उनका प्रधानमन्त्री मात्र है। अंग्रेज़ों ने छत्रपति प्रतापसिंह से कहा कि अगर वह पेशवा का साथ छोड़ देने को तैयार हो तो अंग्रेज़ उसे मराठा साम्राज्य का सच्चा और वास्तविक शासक बनाने को तैयार हैं। प्रतापसिंह उनकी बातों में आ

गया। अंग्रेज़ों ने प्रतापसिंह का पक्ष यूनियन जैक तथा मराठों का भगवा झंडा लेकर बाजीराव पर आक्रमण किया। छत्रपति अंग्रेज़ों के साथ था, अतएव मराठा सरदार समझ न सके कि वे किसका साथ दें—छत्रपति का अथवा पेशवा का ? अंग्रेज़ी फौज के आते ही बाजीराव भाग खड़ा हुआ। अंग्रेज़ों ने बिना विरोध के पेशवा के महल पर अपना झंडा फहरा दिया। इस प्रकार गौरवशाली पेशवाई का अन्त हो गया।

ब्रह्मावर्त में बाजीराव

द्वितीय बाजीराव अन्तिम पेशवा सिद्ध हुआ। इसकी अयोग्यता और वीरवृत्ति के अभाव से अंग्रेज़ों के लिए सरलता से ही पेशवाई पर अधिकार करना संभव हो सका। जब बाजीराव ने अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया तो उन्होंने उससे कहा कि वह शीघ्र से शीघ्र उत्तरभारत के किसी स्थान को अपने रहने के लिए चुन ले और वहीं रहकर अपने जीवन के शेष दिन बिताये। उसके लिए ८ लाख रुपयों की वार्षिक पेन्शन भी निश्चित की गई।

बहुत बड़ी संपत्ति, सैकड़ों आश्रित महाराष्ट्र कुटुम्ब और अपने अनेक सेवक लेकर बाजीराव सहस्त्रों लोगों के काफिले के साथ उत्तरभारत के लिए रवाना हुआ। मराठा सेना के अनेक स्वामिभक्त सिपाहियों ने अपने पूर्व मालिक का साथ छोड़ना पसन्द नहीं किया। वे भी उसके साथ हो लिये। अनेक

हाथी, घोड़े तथा ऊंट उसके दल के साथ थे। इस प्रकार गद्दी से उतारे गये पेशवा का यह विशाल जुलूस लेफ्टीनेंट लो की संरक्षता में उत्तर की ओर बढ़ने लगा।

उत्तरभारत में वह कहाँ रहे, इसका शीघ्र निर्णय न हो सका। वह काफिला पहिले अजमेर पहुँचा। वहाँ से मथुरा आया। यहीं पर बाजीराव कुछ महीनों तक रहा। धार्मिक वृत्ति का होने के कारण बाजीराव गंगा के तट पर कहीं रहना चाहता था। पवित्र काशी में उसने रहना पसन्द किया था। पर काशी में अनेक पदच्युत तथा असन्तुष्ट शासक रहते थे। बाजीराव जैसे प्रबल साम्राज्य के पूर्व-अधिनायक को काशी में रखना अंग्रेज़ों ने सुरक्षित नहीं समझा। उन्होंने जो स्थान सुझाये वे बाजीराव को पसन्द नहीं आये। अन्त में बाजीराव ने कानपुर ज़िले के ब्रह्मावर्त (बिठूर) नामक स्थान को पसन्द किया। उस समय ब्रह्मावर्त में पांच विद्वान महाराष्ट्र ब्राह्मणों के कुटुम्ब रहते थे। उन कुटुम्बों के पूर्वज गोविन्दपंत बुन्देल के साथ उत्तरभारत आये थे। प्रथम बाजीराव ने अपने सेनानी गोविन्दपंत को फरूखाबाद के नवाब मुहम्मद बंगश के विरुद्ध महाराजा छत्रसाल की सहायता करने के लिए भेजा था। संभवतः उन्हीं महाराष्ट्रीय कुटुम्बों के आग्रह से बाजीराव ने ब्रह्मावर्त को ही रहने के लिए चुना। यह स्थान गंगातट पर तो है ही, धार्मिक दृष्टि से भी प्राचीनकाल से पवित्र माना जाता था। सन् १८१९ के फरवरी मास में बाजीराव पेशवा ब्रह्मावर्त आया। आरंभ में उसने अपने रहने के लिए गंगातट पर एक कोठी बनवाई। पर यह कोठी बाजीराव के ठाठ-बाट के रहन-

सहन के लिए छोटी सिद्ध हुई। अतएव उसने ५७ बीघे भूमि पर एक विशाल बाड़ा बनवाया और इसी बाड़े में वह अपने राजसी ठाट में रहने लगा। पुरानी कोठी उसने रामचन्द्र सूबेदार को दे दी। वह कोठी आज भी सूबेदार कुटुम्ब के अधिकार में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में खड़ी है।

ब्रिटिश सरकार ने रमेल तथा बिठूर गाँव की जागीर बाजीराव को प्रदान की। यह जागीर 'लश्कर आराजी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाग के दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार भी बाजीराव को प्रदान किये गये। इस प्रकार विशाल मराठा साम्राज्य पर शासन करनेवाला पेशवा इस छोटी-सी जागीर के मुट्ठी-भर लोगों पर राज्य कर शासन करने की अपनी आकांक्षा की पूर्ति करने लगा।

उस समय तक बिठूर में ही ज़िले की कचहरियाँ आदि थीं। बाजीराव के दरबार की शानशौकत के सामने उनका महत्त्व घट न जाय, अतएव अंग्रेज़ उन कचहरियों को कानपुर ले आये।

पूना में बाजीराव के ६ विवाह हुए थे। पर ब्रह्मावर्त आते समय उसकी केवल दो पत्नियाँ जीवित थीं। एक का नाम था वाराणसी तथा दूसरी का नाम था सरस्वती। यहाँ वृद्धावस्था में भी उसने पाँच विवाह और किये। इस प्रकार बाजीराव ने कुल मिलाकर ११ विवाह किये। बाजीराव को दो पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे ताईबाई तथा बयाबाई। पुत्र न होने के कारण बाजीराव सदा दुखी रहता था। धार्मिक वृत्ति के कारण उसका विश्वास था कि जिस व्यक्ति के पुत्र

नहीं होता उसका परलोक नहीं सुधरता । इसी कारण उसने अपने सगोत्रीय तथा सम्बन्धी माधवनारायण भट के तीन वर्षीय पुत्र गोविन्द को गोद ले लिया । गोद लिये जाने के बाद उसका नाम धुंडिराज रखा गया । सब लोग उन्हें नाना-साहब के नाम से पुकारते थे । नानासाहब का जन्म महाराष्ट्र के कर्ज़त तालुका में १९ मई, १८२५ को हुआ था । माधवराव का कुटुम्ब भी बाजीराव के साथ ब्रह्मावर्त आया था ।

एक पुत्र लेकर बाजीराव संतुष्ट नहीं हुआ । कुछ वर्षों बाद उसने इसी माधवराव के अन्य पुत्रों—एक पुत्र गंगाधर तथा भतीजे सदाशिव—को भी गोद लिया । वे क्रमशः दादा साहब तथा बाला साहब कहलाते थे । कुछ समय बाद दादा साहब की मृत्यु हो गई । इससे बाजीराव को बहुत दुःख हुआ । दादा साहब की विधवा रोहिणीबाई उस समय छोटी ही आयु की थी । उस बाल-विधवा को सांत्वना देने की दृष्टि से बाजीराव ने माधवराव के दूसरे भतीजे पांडुरंग को रोहिणीबाई की गोद में दे दिया ताकि उसके लालन-पालन में वे अपने दुःख को भूल सकें । इस प्रकार से माधवराव के तीन पुत्र बाजीराव के गोद लिए हुए पुत्र तथा उनका चतुर्थ पुत्र बाजीराव का पौत्र बना । माधवराव का ज्येष्ठ पुत्र बाबा भट ही वंश चलाने के लिए भट कुटुम्ब में रह गया था ।

बाजीराव कम से कम प्रकटरूप में तो अंग्रेज़ों से मित्र-भाव ही रखता था । पर अंग्रेज़ अब भी उसका विश्वास नहीं करते थे । उसकी गतिविधि पर नज़र रखने के लिए उन्होंने ब्रह्मावर्त में एक फौजी अफसर को कमिश्नर बनाकर रखा ।

वह समय-समय पर उसके कार्यों की रिपोर्ट कलकत्ता स्थित गवर्नर जनरल के पास भेजता था। ब्रिटिश सरकार से बाजीराव का पत्रव्यवहार भी उसी कमिश्नर के माध्यम से होता था। अंग्रेज़ी सरकार अब उसे पेशवा अथवा पन्त प्रधान नहीं लिखती थी, प्रत्युत 'महाराजा बाजीराव बहादुर' ही लिखती थी। बाजीराव अब भी अंग्रेज़ों को सन्तुष्ट करने का सदा प्रयत्न करता था। प्रथम अफगान युद्ध में बाजीराव ने ५ लाख रुपया अंग्रेज़ों को उधार दिया। वे रुपये वापस कभी न मिलने की आशा से दिये गये थे। महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेज़ों तथा खालसा दरबार में जब युद्ध हुआ तो बाजीराव ने एक हज़ार पैदल और एक हज़ार घुड़सवार सेना तैयार करने के लिए अंग्रेज़ों को आर्थिक सहायता दी थी।

बाजीराव अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति था। उसके वार्तालाप में एक विशेष आकर्षण रहता था। बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन ने लिखा है कि उसमें स्वाभाविक गौरव के सभी लक्षण विद्यमान थे। अंग्रेज़ लेखक मेंकिंटॉश ने, जो नैपोलियन, जार्ज तृतीय तथा बाजीराव से प्रत्यक्ष मिला था, बाजीराव को ही इनमें सबसे अधिक सुन्दर तथा शिष्टाचार में सर्वश्रेष्ठ बताया है।

बाजीराव के चरित्र के दो पहलू थे। एक ओर बाजीराव विलासी, दुराचारी तथा कामुक था। दूसरी ओर वह अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। पूजा-पाठ और यज्ञादि करने तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देने एवं उन्हें स्वादिष्ट भोजन कराने में ही उसकी संपत्ति का एक बहुत बड़ा भाग खर्च होता था। शायद

इस प्रकार के जीवन से वह अपने विगत गौरव की स्मृति को भुला देना चाहता था। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि उसके आगमन से ब्रह्मावर्त की छोटी-सी बस्ती को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। बाजीराव ने वहाँ अनेक मन्दिर, घाट तथा सुन्दर भवनों का निर्माण कराया तथा ब्रह्मावर्त को एक ऐश्वर्यपूर्ण और सुन्दर नगरी का रूप प्रदान किया।

क्रान्ति का बीजारोपण

पेशवाई की समाप्ति अपने हाथों से करनेवाले बाजीराव को ईश्वर ने अन्य पराक्रमी तथा योग्य पेशवाओं की तुलना में आयु प्रदान करने में बड़ी उदारता दिखाई थी। २८ जनवरी, १८५१ को ब्रह्मावर्त में उसकी मृत्यु ७६ वर्ष की आयु में हुई। उसके अन्तिम संस्कार उसके गोद लिये हुए पुत्र नाना साहब ने किये। नाना साहब ने बाजीराव का क्रिया-कर्म उसके महान पेशवापद के अनुकूल ही बहुत धूमधाम से किया। अन्य दानों के साथ-साथ शास्त्रानुसार उस अवसर पर ब्राह्मणों को पाँच महादान दिये जाते हैं। इनकी व्यवस्था इस प्रकार है : गजदान, अश्वदान, स्वर्णदान, रत्नदान तथा भूमिदान। प्रथम चारों दान तो नानासाहब ने दिये पर जब भूमि-दान का अवसर आया तो उन्होंने अनुभव किया कि उनके पास दान देने के लिए भूमि ही नहीं है। मराठा साम्राज्य के एक समय के अधिपति के मृत्यु-दानों में भूमिदान, भूमि न होने के

कारण, न दिया जा सके इसे भाग्य का फेर ही कहा जा सकता है। संभवतः नानासाहब ने इस अवसर पर शायद प्रथम बार ही अपनी असहायता का अनुभव किया हो। पेशवा के एक सरदार जागीरदार रघुनाथराव विंचूरकर इस समय ब्रह्मावर्त में थे। वह दक्षिण से उत्तरभारत तीर्थयात्रा करने आये थे। उन्होंने अपनी इस यात्रा का वर्णन अपने 'तीर्थयात्रा-प्रबन्ध' नामक ग्रन्थ में किया है। महादान के मार्मिक अवसर का उन्होंने इस शब्दों में वर्णन किया है :

"..........ग्यारहवें दिन सारस्वतेश्वर मंदिर के समीप गंगा मन्दिर[१] में महादान दिये गये। उस दिन के कुल दानों में ३ लाख रुपये खर्च हुए। इन दानों में भूमि-दान नहीं हुआ। तब मैंने नानासाहब से प्रार्थना की कि सरकार पेशवा ने मुझे दो गाँव इनाम में दिये थे। इसके अतिरिक्त मेरी जागीर के ५० गांव सरकार के ही हैं। इनमें से जितनी भूमि आप चाहें ब्राह्मणों को दान दे सकते हैं।" थोड़ी देर बाद आँखों में आँसू भरकर नानासाहब ने कहा, "इसका उत्तर देना मेरी शक्ति के बाहर है। अगर आपकी इच्छा ही है तो यह उचित ही है। पर भूमिदान तो वर्ष श्राद्ध तक दिया जा सकता है। बाद में इसपर विचार किया जा सकता है।"

बाजीराव ने अपनी मृत्यु के दस वर्ष पूर्व अपना उत्तराधिकार-पत्र तैयार किया था। इसमें लिखा था, "सरकार

१. १८५७ की घटनाओं के बाद गंगा मन्दिर को अंग्रेज़ों ने जलाकर नष्ट कर दिया था। इस स्थान पर आज जुग्गीलाल कमलापति की धर्मशाला खड़ी हुई है।

दौलतमदार इंग्लिस्तान सरकार कम्पनी सरकार के सब लोगों को ज़ाहिर तथा विदित होने के लिए लिखा जाता है कि हमारे ज्येष्ठ पुत्र घोड़ोपंत नाना पेशवाई के पद, इधर की (ब्रह्मावर्त की) व्यवस्था, राज्य दौलत, देशमुखी आदि के पूर्ण अधिकारी तथा मालिक होंगे। उनके पुत्र-पौत्रादि वंश-परम्परा से राज्याधिकार तथा दौलत का उपभोग करेंगे।"[१] इस उत्तराधिकार-पत्र पर पाँच गवाहों के अतिरिक्त ब्रह्मावर्त-स्थित विशेष ब्रिटिश कमिश्नर मि० मेसन के भी हस्ताक्षर हैं। इस उत्तराधिकार-पत्र पर ३० अप्रैल, १८४१ की तिथि है। इसी दिन इसपर हस्ताक्षर हुए थे।

बाजीराव की मृत्यु के बाद नानासाहब ने अंग्रेज़ सरकार को लिखा कि बाजीराव को मिलनेवाली पेन्शन उनके नाम कर दी जाय। इस अनुरोध का उत्तर गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ने इन शब्दों में दिया : "बाजीराव ने ३३ वर्ष के लम्बे काल तक पेन्शन ली है। ढाई करोड़ से अधिक रकम उन्हें मिल चुकी है। उन्होंने अपने कुटुम्बियों के लिए २८ लाख रुपयों की सम्पत्ति छोड़ी है। कानून के अनुसार उनके कुटुम्बियों का इस दान पर कोई अधिकार नहीं है। बाजीराव ने जो धन छोड़ा है वह उनके कुटुम्बियों के लिये पर्याप्त है।"

---

१. इस वसीयतनामे की मूल मराठी की प्रति ग्वालियर के भास्करराव भालेराव को महारानी लक्ष्मीबाई के परम्परागत दीनान मुले के पुराने कागजात में प्राप्त हुई है। मराठी मासिक पत्रिका सह्याद्रि के सितम्बर, १९४१ के अंक में ७१६ पृष्ठ पर यह पूरा वसीयतनामा प्रकाशित हुआ है।

आखिर डलहौज़ी व्यापारी ईस्ट इंडिया कम्पनी का गवर्नर जनरल था। वह भला आठ लाख की लम्बी रकम को बचाने के अवसर को कैसे हाथ से जाने देता। स्वार्थ के सामने उसके लिये न्याय-अन्याय का प्रश्न ही न था। उसने बाजीराव की पेन्शन उनके द्वारा गोद लिये हुए पुत्र नानासाहब को देने से इन्कार कर दिया। नानासाहब ने सरकार के पास अनेक प्रार्थनापत्र भेजे। डलहौज़ी के निर्णय के विरुद्ध उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों के पास अपील भेजी। इसमें लिखा गया था : "जब बाजीराव ने अपना राज्य अंग्रेज़ों को सौंपा तब यह निश्चय हुआ था कि उनके तथा उनके परिवार के लिए आठ लाख रुपयों की वार्षिक पेन्शन दी जायगी। बाजीराव की मृत्यु अवश्य हो गई है, पर उनका परिवार आज भी विद्यमान है। उत्तराधिकारी पुत्र तथा उनके कुटुम्बियों को परिवार में न मानना अनुचित है। राज्य लेते समय पेशवा के खर्च का उत्तरदायित्व अंग्रेज़ों ने लिया था। उसे पूरा करना उनका कर्तव्य है। अगर अंग्रेज़ों ने पेशवा का राज्य स्थायी-रूप से लिया है तो उन्हें पेन्शन भी स्थायी रूप से मिलनी चाहिये। टीपू सुलतान के वंशजों को पेन्शन मिल रही है। फिर पेशवा के परिवार को पेन्शन क्यों न मिले।"

बोर्ड के डायरेक्टरों ने इस प्रार्थनापत्र पर विचार कर भारत सरकार को लिखा कि वे "प्रार्थी को सूचित कर दें कि उनको गोद लेनेवाले पिता की पेन्शन वंश-परम्परागत न थी। उनका इसपर कोई अधिकार नहीं है।"

इस प्रकार बाजीराव की पेन्शन नानासाहब को न मिल

सकी। इतना ही नहीं रमेल तथा बिठूर की जागीर से भी वे वंचित कर दिये गये। इस जागीर में बाजीराव को जो दीवानी और फौजदारी अधिकार थे, वे भी नानासाहब को नहीं दिये गये। अब नानासाहब अंग्रेज़ी राज्य के एक साधारण नागरिक बन गये।

इस प्रकार की निराशाजनक परिस्थितियों के होते हुए भी नानासाहब ने प्रयत्न जारी रखे। उन्होंने अपने विश्वास-पात्र अज़ीमुल्लाखाँ के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल विलायत भेजा। इंग्लैण्ड पहुँचकर अज़ीमुल्लाखाँ ने नानासाहब के मामले को अत्यन्त चतुराई से बोर्ड के डायरेक्टरों के सामने रखा। उनके आकर्षक सौन्दर्य तथा शिष्ट व्यवहार के कारण इंगलैण्ड के तत्कालीन उच्च समाज में अज़ीमुल्लाखाँ ने अनेक मित्र बना लिए। बड़ी-बड़ी दावतें देकर उन्होंने अपने वैभव से संभ्रान्त समाज को चकाचौंध कर दिया। अनेक उच्चवंशीय महिलाओं से उनका निकट का सम्पर्क हो गया। पर राज-नीतिक दृष्टि से वे पूर्णरूप से असफल रहे। बोर्ड के डायरेक्टरों ने डलहौज़ी के निर्णय को ही उचित माना। इससे अज़ीमुल्ला-खाँ उनसे अत्यन्त रुष्ट हो गये। अभी तक उन्हें अंग्रेज़ों की ईमानदारी और न्यायप्रियता पर बड़ा विश्वास था। पर अब ब्रिटिश साम्राज्यशाही की स्वार्थान्धता का नग्नचित्र उनके सामने आ गया। वह अंग्रेज़ों के कट्टर शत्रु बन गए।

इसी समय सातारा के पदच्युत छत्रपति प्रतापसिंह के प्रतिनिधि रंगोबापू से उनकी इंग्लैण्ड में ही भेंट हुई। रंगो-बापू भी वहाँ अपने मालिक प्रतापसिंह के प्रति किये गये अन्याय

के विरुद्ध न्याय प्राप्त करने के लिए बोर्ड के डायरेक्टरों के पास गए हुए थे। वे भी उसी प्रकार असफल हुए जिस प्रकार अज़ीमुल्लाखाँ असफल हुए थे। अनुभव ने इन दोनों कूटनीतिज्ञों को अंग्रेज़ों का कट्टर द्रोही बना दिया। दोनों समझ गये कि अंग्रेज़ प्रार्थनापत्रों की भाषा नहीं समझते। वे तो एक भाषा से प्रभावित होते हैं और वह भाषा है तलवार की। जब तक इस भाषा का प्रयोग नहीं किया जायगा, तब तक हिन्दुस्तान का उद्धार होना कठिन है। अतएव दोनों ने निश्चय किया कि भारत वापस आकर अंग्रेज़ों की अन्याय, अत्याचार तथा स्वार्थ पर आधारित सत्ता को समाप्त करने के लिए वे सशस्त्र क्रान्ति का संगठन करेंगे। अज़ीमुल्लाखाँ ने इस विद्रोह का उत्तरभारत में संगठन करने का उत्तरदायित्व लिया और दक्षिण के संगठन का भार रंगोबापू ने उठाया। इस प्रकार गंगा-यमुना के किनारे होनेवाली क्रान्ति का बीजारोपण टेम्स नदी के किनारे सुदूर इंग्लैण्ड में हुआ।

असंतोष की लपटें

सन् १८५७ की क्रांति का कारण था देशव्यापी असंतोष। अंग्रेज़ी सरकार की स्वार्थपूर्ण, अन्यायी और अत्याचारी नीति के कारण देश में चारों ओर अंग्रेज़ों के प्रति तिरस्कार और क्रोध की भावना फैली थी। देश में ऐसा कोई वर्ग नहीं रह गया था जो अंग्रेज़ों की ओर विश्वास की दृष्टि से देखता हो।

उस समय इस देश में जो अंग्रेज़ शासक थे वे केवल सार्वभौम सत्ता ही स्थापित नहीं करना चाहते थे वरन् वे भारतीय प्राचीन परंपराओं, सामाजिक रचना तथा धार्मिक विश्वासों को नष्ट कर उनके स्थान पर एक नवीन संस्कृति की स्थापना का स्वप्न देख रहे थे। उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में तत्कालीन परिस्थितियों के कारण सहज ही सफलता प्राप्त हो गई। पर प्राचीन भारतीय संस्कृति और अनन्तकालीन प्राचीन परंपराओं को नष्ट करने के प्रयत्न में उन्हें इतने प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा कि पौर्वात्य भारत को पाश्चात्य देश बनाने की महत्त्वाकांक्षाएँ धरी रह गईं। यह प्रबल विरोध सन् १८५७ के भयंकर विद्रोह के रूप में संसार के सामने आया।

सन् १७५८ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में केवल व्यापार से लाभ उठाना चाहती थी। पर कम्पनी के जो अफसर इस देश में आते थे, वे यहाँ किसी प्रबल शासक के अभाव, आपसी फूट तथा देश की शोचनीय अव्यवस्था से लाभ उठाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते थे। पर कम्पनी के डायरेक्टर इस देश की राजनीति में भाग लेकर युद्ध लड़ने तथा उसके खर्च का बोझ उठाने के लिये तैयार न थे। उनकी इसी नीति के कारण वारेन हेस्टिंग्ज़, अवध की राजनीति में भाग लेने के कारण संकट में पड़ गया था। पर गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेज़ली के काल तक कम्पनी की नीति में कुछ परिवर्तन हो गया था। अब डायरेक्टर स्थानीय राजनीति में भाग लेने के उतने विरुद्ध नहीं रह गये थे। पर अब भी वे युद्ध में होनेवाली आर्थिक हानि सहन करने को तैयार न थे। वेलेज़ली ने भारत

आते ही एक ऐसी योजना बनाई जिससे कम्पनी पर आर्थिक बोझा पड़े बिना इस देश में अंग्रेज़ों की सार्वजनिक सत्ता स्थापित हो सके। वह यहाँ के नरेशों के बीच फूट के बीज बोने लगा। राज्य के लिये जब दो दावेदार आपस में लड़ते तो वेलेज़ली, अपने स्वार्थ की दृष्टि से उपयुक्त व्यक्ति को सहायता देता तथा उसे गद्दी पर बैठाता। जहां कोई दावेदार न होता वहां ज़बर्दस्ती किसीको दावेदार बनाकर खड़ा किया जाता और उसे शासक बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाता। इस प्रकार देश में अशान्ति तथा अरक्षा का वातावरण तैयार किया गया। प्रत्येक राजा अपने पड़ौसी राजा को अविश्वास की दृष्टि से देखने लगा। इस गड़बड़ी तथा सुरक्षा-विहीन परिस्थिति का वेलेज़ली ने खूब लाभ उठाया। उसने राजाओं से कहा कि हम तुम्हारी रक्षा का भार लेने को तैयार हैं। सुरक्षा के लिये तुम्हारे यहां हमारी सेना रहेगी। इस सेना का खर्च तुम्हें देना पड़ेगा। जो शासक इस सेना का खर्च नहीं दे पाता था उसके राज्य का कुछ भाग इसके बदले में ले लिया जाता था। खर्च की रकम भी बहुत लंबी होती थी। पहिले वेलेज़ली ने इस प्रकार की सहायक संधि छोटे-छोटे राज्यों से की। पर बाद में पेशवा, निजाम, गायकवाड़ जैसे बड़े-बड़े राज्यों को भी इस सन्धि को मानने के लिये बाध्य किया गया। इस प्रकार वेलेज़ली ने अपने कार्यकाल में अंग्रेज़ी सत्ता को इस देश की सार्वभौम सत्ता बना दिया।

वेलेज़ली के ज़माने में नरेशों को आन्तरिक मामलों में स्वतंत्रता थी। पर डलहौज़ी ने आते ही यह स्वतन्त्रता भी

छीन ली। अब तो वही उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठ सकता था जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर स्वीकार करें। इस देश में सार्वभौम सत्ता से भी डलहौज़ी सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह इस देश को 'समतल' बनाने के लिये आया था। सारे हिन्दुस्तान को वह ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनाना चाहता था। इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए उसने देश में आते ही एक के बाद दूसरे राज्य को समाप्त कर उसे अंग्रेज़ी राज्य में मिलाना आरंभ किया।

पेशवाई के समाप्त करने के बाद थोड़े ही दिनों में सातारा के छत्रपति की गद्दी को भी समाप्त कर दिया। पंजाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु होते ही सिख सरदारों को आपस में लड़ाकर सारे पंजाब को अंग्रेज़ों ने अपने अधिकार में कर लिया। दक्षिण के अर्काट के नवाब गौसखाँ ने फ्रान्सीसियों के विरुद्ध अंग्रेज़ों की बड़ी सहायता की थी। पर उसकी मृत्यु होते ही अंग्रेज़ों ने अर्काट को भी अपने राज्य में मिला लिया। दक्षिण में मराठों की तंजौर नामक एक छोटी-सी रियासत थी। यहां के शासक महाराजा शिवाजी की मृत्यु होते ही इसे भी डलहौज़ी ने हड़प कर लिया। विधवा महारानी कामाक्षीबाई ने लंदन में प्रिवी कौंसिल में अपील की। इस उच्च न्यायालय ने डलहौज़ी के इस कार्य को 'तंजौर' की लूट कहा, पर इसे राजकीय कार्य कहकर इसमें दखल देने से इन्कार कर दिया। हैदराबाद का निज़ाम तो अंग्रेज़ों का मित्र था। पर ज्योंही उसपर सहायक सेना के खर्च की रकम चढ़ गई, त्योंही डलहौज़ी ने इस रकम के बदले बरार का उपजाऊ

प्रान्त उससे छीन लिया । नागपुर का शासक अप्पासाहब भोंसले स्वतंत्र वृत्ति का स्वाभिमानी व्यक्ति था । अंग्रेज़ी सेना से उसकी टक्कर हुई । उसने अंग्रेज़ी सेना के छक्के छुड़ा दिये । अन्त में उसे अंग्रेज़ी कैम्प में सन्धि करने के लिए बुलाया गया । पर वहीं उसे धोखा देकर गिरफ्तार कर लिया गया । शीघ्र ही नागपुर अंग्रेज़ी राज्य का भाग बन गया ।

अवध जैसे उर्वर और सम्पत्तिशाली राज्य पर भला डलहौज़ी की लोलुप नज़र कैसे न पड़ती ? वहां के नवाब वाजिदअली शाह पर नालायक शासक होने का आरोप लगाकर उसे गद्दी से उतारकर कलकत्ते में नज़रबन्द किया गया । तथा अवध को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया । झाँसी के शासक गंगाधरराव ने अपनी मृत्यु के थोड़े दिनों पूर्व दामोदर नामक जिस बालक को गोद लिया था उसे डलहौज़ी ने झांसी राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया । उसने झाँसी को भी अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने जब सुना कि उसकी प्यारी झांसी पर अब अंग्रेज़ों का शासन होगा तो उसके मुख से निकल पड़ा, "मैं झाँसी नहीं दूंगी ।" पर उसकी एक न सुनी गई ।

दिल्ली में भी अंग्रेज़ी रेज़ीडेण्ट प्रविष्ट हो चुका था । धीरे-धीरे उसने वृद्ध बहादुरशाह के हाथों से सारी सत्ता अपने हाथों में ले ली थी । बादशाह तो कठपुतली-मात्र रह गया था । वह समझ गया था कि उसकी नाममात्र की बादशाहत का भी शीघ्र ही अन्त होनेवाला है ।

इस प्रकार देश का राजनीतिक प्राङ्गण असन्तोष की

चिनगारियों से व्याप्त था। जिस भारतीय सेना के बल पर अंग्रेज़ों ने इस देश में अपनी सत्ता स्थापित की वह सेना भी सरकार की गोरों के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति के कारण असन्तुष्ट थी। हिन्दुस्तानी सिपाही कितना ही वीर क्यों न हो, उसे कर्नल और मेजर का पद नहीं मिल सकता था। गोरों को भारतीयों से वेतन भी अधिक मिलता था। इस कारण हिन्दुस्तानी सेना में असन्तोष की अग्नि सुलग रही थी।

साधारण जनता भी कम्पनी की सरकार से असन्तुष्ट थी। अंग्रेज़ों ने उनके लिए अत्यन्त उपयोगी ग्राम-पंचायतों को नष्ट कर दिया था। इसके स्थान पर चौकीदारों, पटवारियों तथा थानेदारों का शासन स्थापित किया गया था। उस शासन में जनता अपने को सुरक्षित नहीं समझती थी। अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली भी भारतीयों के लिए असन्तोष का कारण बन गई थी। लार्ड मेकाले ने, जो इस शिक्षा-प्रणाली का प्रवर्तक था, अपने उद्देश्य को इन शब्दों में प्रकट किया है : "हम एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहते हैं जो हमारे (अंग्रेज़ों के) तथा करोड़ों हिन्दुस्तानियों के बीच, जिनपर हम शासन करते हैं, सम्बन्ध स्थापित करने का काम करे। यह वर्ग रंग-रूप से हिन्दुस्तानी होगा, पर रुचि, विचार, भाषा और बुद्धि में अंग्रेज़ होगा।" इस शिक्षा-प्रणाली ने देश में 'बाबुओं' का जो वर्ग तैयार किया वह साधारण जनता से घृणा करने लगा। परिणाम यह हुआ कि साधारण लोग, नवीन पीढ़ी को बौद्धिक दृष्टि से बरबाद करनेवाले अंग्रेज़ों से घृणा करने लगे।

भारतीय धर्मों पर आघात करने में अंग्रेज़ न चूके।

चौराहों-चौराहों पर ईसाई धर्म के प्रचारक हिन्दू और मुसलमानों के धर्म का खुले-आम मज़ाक उड़ाते थे। हिन्दुओं के देवताओं और मुसलमानों के पैगम्बरों के प्रति असभ्य शब्दों का प्रयोग किया जाता था। लोगों को ईसाई बनाने का एक संगठित प्रयत्न किया जा रहा था।

इस प्रकार अंग्रेज़ों ने भारतीयों की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक भावनाओं पर आक्रमण करना आरंभ किया। विधवा-विवाह वैध घोषित किया गया। सती-प्रथा पर रोक लगाई गई। बहुविवाह की प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। धर्मान्तर करने पर वारिसी अधिकार प्रदान करने के कानून बनने लगे। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार तथा अंग्रेज़ों पर पूर्ण अविश्वास होने के कारण ये सामाजिक सुधार भी देश को ईसाई बनाने के प्रयत्न माने गये।

इस प्रकार देश के सभी वर्ग, चाहे वे राजा हों अथवा नवाब, ज़मींदारों हों अथवा व्यापारी, सैनिक हों या साधारण जनता, अंग्रेज़ी सरकार से असन्तुष्ट हो गये। इस देशव्यापी असन्तोष ने सारे देश में शीघ्र ही अंग्रेज़ी सरकार को उलट देनेवाले भयंकर विप्लव का रूप धारण कर लिया।

क्रांति की योजना

हम देख चुके हैं कि सारे देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध असंतोष की तीव्रतर भावना व्याप्त हो गई थी। प्रत्येक हिंदुस्तानी

के लिए फिरंगियों की सत्ता का अस्तित्व असह्य हो उठा था। अनेक अनुभव करने लगे थे कि ब्रिटिश सरकार की जड़ अगर इस देश में जम गई, तो देश की स्वतंत्रता, संस्कृति, धर्म, समाज आदि सुरक्षित नहीं रह सकते। हिन्दुस्तानियों के हृदयों में एक ही प्रबल इच्छा थी कि किसी न किसी प्रकार अंग्रेज़ी राज्य का खातमा कर दिया जाय ताकि भयंकर राष्ट्रव्यापी संकट से देश की रक्षा की जा सके। देश के कोने-कोने में बारूद बिछा हुआ था। एक ज्वलंत चिनगारी की आवश्यकता थी जो इस असन्तोष के बारूद को प्रज्वलित कर देश में एक ऐसा भयंकर विस्फोट करती जिसमें देश के शत्रु, फिरंगियों की सत्ता सदा के लिये समाप्त हो जाती।

देश को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करने की इस राष्ट्र-व्यापी मनोकामना को राष्ट्रीय संकल्प का योजनाबद्ध रूप देने का काम किया नानासाहब पेशवा, तात्या टोपे तथा अज़ी-मुल्लाखाँ ने।

इंगलैंड से असफल होकर वापस हिन्दुस्तान आते हुए अज़ीमुल्लाखाँ योरोप के अनेक देशों में गये। इस समय उनके हृदय में, अंग्रेज़ों के विरुद्ध अत्यन्त प्रबल रूप से द्वेषाग्नि जल रही थी। उन्होंने कई देशों के राजनीतिज्ञों से वार्तालाप किया और यह जानने का प्रयत्न किया कि अगर हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह होता है तो कहाँ-कहाँ से सहायता प्राप्त हो सकती है। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों ने उन्हें वचन दिया कि फ्रांस के भारत-स्थित उपनिवेश चन्द्रनगर से उनको सहा-यता प्राप्त होगी। तुर्किस्तान के खलीफा से भी वे मिले। लार्ड

राबर्ट्स ने अज़ीमुल्लाखाँ द्वारा खलीफा को लिखा हुआ पत्र देखा था। इस पत्र में उन्होंने खलीफा का ध्यान हिन्दुस्तान के असन्तोष की ओर आकर्षित किया था तथा उनसे प्रार्थना की थी कि वे अंग्रेज़ी सत्ता को हिन्दुस्तान से उखाड़ फेंकने में सहायता करें। जब अज़ीमुल्लाखाँ भूमध्यसागर से क्रीट पहुँचे तो उन्हें समाचार मिला कि अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसियों की संयुक्त सेना रूसियों द्वारा बुरी तरह हराई जा रही है। वे स्वतः युद्ध के मोरचों पर गये और उन्होंने अत्यंत सन्तोष के साथ अंग्रेज़ों की हार अपनी आँखों से देखी। उन्होंने अनुभव किया कि अंग्रेज़ों की शक्ति अजेय नहीं है।

ब्रह्मावर्त आकर अज़ीमुल्लाखाँ ने अपनी असफलता की कहानी नानासाहब से कही। नानासाहब को विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ों से न्याय प्राप्त करने की आशा व्यर्थ है। पेन्शन मिलने की उनकी रही-सही आशा जाती रही।

अज़ीमुल्लाखाँ ने नानासाहब को वे सब बातें बतलाईं जो इंग्लैण्ड में उनके तथा रंगोबापू गुप्ते के बीच हुई थीं। अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति के संगठन का सुझाव उन्होंने नानासाहब के सामने रखा। इस समय नानासाहब के दरबार में तात्या टोपे, बाबा भट्ट, ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्लाखाँ, रावसाहब आदि अनेक देशाभिमानी तथा पराक्रमी व्यक्ति उपस्थित थे। नानासाहब ने अपने इन विश्वसनीय साथियों की एक बैठक की। भविष्य में क्या किया जाय, इसपर विचार किया गया। सभी लोग अंग्रेज़ों के अत्याचारों से ऊब उठे थे। उनके वीर और स्वाभिमानी हृदय अंग्रेज़ों की सत्ता को मिटाने के लिए कुछ न

कुछ करने को व्याकुल थे। अंत में सब लोग इस निर्णय पर पहुँचे कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति करना सब दृष्टियों से अत्यंत आवश्यक है। अंत में इन लोगों ने क्रांति की एक योजना बनाई। इस प्रकार ब्रह्मावर्त के नानासाहब के महल को प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम की योजना की जन्मभूमि बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

नानासाहब तथा उनके साथियों ने बुद्धिमत्ता से एक दूर-दर्शितापूर्ण योजना बनाई। क्रांति के लिए एक नेता, एक झंडा तथा एक कार्यक्रम की आवश्यकता होती है। मुग़ल साम्राज्य भले ही निर्बल हो गया हो तथा भले ही उसका अस्तित्व तक संकट में पड़ गया हो, पर वर्षों की परंपरा से लोगों के हृदयों में उसे अब भी सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। लोग मुग़ल सम्राट की ओर अत्यंत श्रद्धा और भक्ति से देखते थे। अतएव यह निर्णय किया गया कि इस क्रांति का नेता मुग़ल सम्राट ही हो तथा मुग़ल-साम्राज्य का हरा झंडा ही क्रांति का झंडा हो। मुख्य कार्यक्रम यह बनाया गया कि एक निश्चित दिन को सारे देश में एकसाथ विद्रोह कर दिया जाय तथा 'खल्क खुदा का, मुल्क़ बादशाह का, अमल—(जो क्रांति का स्थानीय नेता हो उसका)' की घोषणा, क्रांति का हरा झंडा फहराकर की जाय, कैदखानों पर आक्रमण कर कैदी मुक्त किये जायें, सरकारी ख़ज़ाने लूट लिये जायें तथा स्थानीय ब्रिटिश सत्ता को समाप्त कर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया जाय।

इस क्रांति की योजना को सफल बनाने के लिए एक देश-व्यापी संगठन करने का निश्चय किया गया। इस संगठन को

तीन विभागों में बाँटा गया। उक्त विभागों को सफलतापूर्वक संगठित करने का कार्य विभिन्न लोगों को सौंपा गया। बाबा-भट्ट पढ़े-लिखे तथा विद्वान थे, अतएव उन्हें देश के विभिन्न राजाओं से पत्र-व्यवहार करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। ज्वालाप्रसाद को अंग्रेज़ी सेना में क्रांतिकारी संगठन करने की ज़िम्मेदारी दी गई। जनसाधारण में प्रचार करने तथा जनता की मनोवैज्ञानिक भूमिका तैयार करने के लिये एक विभाग बनाया गया। अज़ीमुल्लाखां इस विभाग के संचालक बनाये गये। नानासाहब इस सम्पूर्ण संगठन के प्रधान थे। उनकी स्वीकृति के बिना कोई काम नहीं किया जाता था। नानासाहब के प्रमुख तथा विश्वसनीय सलाहकार थे—तात्या टोपे। इस प्रकार क्रांति के इस संगठन में तात्या टोपे का प्रमुख हाथ था। सारा काम नानासाहब के नाम से होता था पर वास्तव में तात्या टोपे ही इसके प्रमुख संचालक थे। इस संगठन में तात्या टोपे की व्यवहारकुशलता, बुद्धिमत्ता तथा मौलिक सूझ-बूझ की झलक स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

सबसे पूर्व नानासाहब के नाम से देश के अनेक ऐसे राजाओं तथा नवाबों से पत्र-व्यवहार आरंभ किया गया जो अंग्रेज़ों से किसी न किसी कारण से असंतुष्ट थे। इन पत्रों में लिखा गया था कि फिरंगियों के आक्रमण के कारण उनका देश, उनकी स्वतन्त्रता, उनका धर्म, उनकी संस्कृति संकट में पड़ गई है। अगर हमें इनकी रक्षा करनी है तो यही समय कुछ न कुछ करने का है। अंत मे उन्हें भावी क्रांति में शामिल होने का आमंत्रण दिया जाता। आरंभ में इन पत्रों का कोई विशेष

प्रभाव न पड़ा। पर जब १८५६ ई० में अवध का राज्य भी अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया तो सभी शासक चौंक-से पड़े। संकट की वास्तविकता को उन्होंने अनुभव किया। धीरे-धीरे विभिन्न दरबारों से पत्रों के उत्तर आने लगे। कई नरेशों ने क्रांति में सक्रिय भाग लेने का अपना निश्चय प्रकट किया। दिल्ली के मुग़लसम्राट बहादुरशाह तथा सम्राज्ञी ज़ीनत महल, लखनऊ की बेगम हज़रत महल, झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई, बिहार के कुंवरसिंह आदि ने अपने-अपने क्षेत्रों में क्रांति का संगठन करने के प्रयत्न आरंभ किये। फैज़ाबाद के मौलवी अहमद उल्लाहशाह ने क्रांति के संगठन तथा प्रचार में बहुत काम किया। गाँव-गाँव घूमकर वे सभाएं करते थे। इनकी सभाओं में हज़ारों की भीड़ होती थी। अपने प्रभावशाली भाषण में वे लोगों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध द्वेषाग्नि उत्पन्न करने तथा भावी क्रांति के लिये तैयार रहने का सन्देश देते।

इसके उपरांत नानासाहब के दूत विभिन्न राजाओं के पास जाने लगे। ये दूत बड़ी शान-शौकत के साथ हाथी पर सवार होकर, सशस्त्र सिपाहियों के दलों के साथ विभिन्न राजाओं के यहाँ जाते, वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन करते तथा योग्य अवसर पर उनको क्रांति का सन्देश देते।

क्रांति के प्रचारक विभिन्न वेशों में अंग्रेज़ी सेना की छावनियों में जाते। कोई पंडित बनकर जाता तो कोई मौलवी बनकर। वहां वे भारतीय सिपाहियों को अंग्रेज़ों के विरुद्ध भड़काते तथा उन्हें क्रांति का पाठ पढ़ाते। इस प्रकार अनेक छावनियों में क्रांति के गुप्त केन्द्र स्थापित किये गये। एक केन्द्र

से दूसरे केन्द्र तक समाचारों के आदान-प्रदान के लिये गुप्त रूप से व्यवस्था की गई। अंग्रेज़ अफसर यह देखकर दंग हो जाते थे कि उनके पास किसी घटना का समाचार आने के पूर्व ही छावनी का प्रत्येक सिपाही उस समाचार से परिचित हो जाता था।

सेना में क्रांति के सन्देश पहुँचाने के एक अत्यन्त प्रभावशाली तथा नवीन मार्ग का अवलंबन किया गया। क्रांति के सन्देशवाहक एक छावनी से लाल कमल लेकर पास की छावनी में जाते। वहाँ के भारतीय सैनिक अफसर के हाथों में यह कमल दिया जाता। वह अपनी सेना के सैनिकों को एक पंक्ति में खड़ा करता। लाल कमल एक के हाथों से दूसरे हाथों में जाता। सैनिक बड़ी श्रद्धा से उसे अपने हाथों में गृहण करते। उसके उपरान्त उस छावनी का कोई सैनिक पास की दूसरी छावनी में लाल कमल ले जाता। जिस दिन लाल कमल छावनी में आता उस दिन धूम मच जाती। लाल कमल हाथों में लेने का अर्थ था—भावी क्रांति का सैनिक बनना। इस लाल कमल चक्र ने देश की अनेक छावनियों में पहुँचकर क्रांति की सेना का संगठन किया। क्रांतिकारी सिपाही क्रांति के श्रीगणेश के संकेत की बड़ी उत्सुकता से राह देखने लगे।

जनसाधारण में भी प्रचारकार्य अत्यन्त बुद्धिमत्ता तथा कुशलता से किया जाता। देश में हज़ारों प्रचारक क्रांति के सन्देश देते हुए घूमने लगे। प्रचारकों की यह सेना फकीरों, साधुओं, भिखारियों, यात्रियों, ज्योतिषियों के रूप में सारे देश

में फैल गई। भावी क्रांति के सन्देश देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाये जाने लगे।

इन्हीं दिनों देश में चपातियों का एक चक्र चला। एक गांव का चौकीदार अपने साथ एक चपाती लेकर पास वाले गाँव में जाता। उस गाँव के चौकीदार को वह चपाती देता। सारे गांव में चपाती के आने की खबर फैल जाती। चौकीदार गांव के लोगों को एकत्रित करता। उन्हें उस चपाती का थोड़ा-थोड़ा टुकड़ा देता। लोग बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उसे गृहण करते। इसके बाद उस गांव का चौकीदार नई चपाती बनाकर निकटवर्ती गाँव के चौकीदार को देता। यह चपाती-चक्र इतना देशव्यापी था कि इस ओर अंग्रेज़ अफसरों का ध्यान गये बिना न रह सका। उन्होंने इसकी बहुत जांच की। पर उन्हें इसके वास्तविक उद्देश्य का पता न चल सका। गांव में चपाती के आते ही हलचल मच जाती। हरएक हृदय में भविष्य में होनेवाली घटनाओं की गड़गड़ाहट गूंज उठती। चपाती गृहण करने का अर्थ था—क्रांति में सक्रिय भाग लेने के लिये उद्यत रहना।

इस प्रकार राजाओं के महलों से लेकर किसानों की जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी तक क्रांति का संदेश पहुँचाया गया। देश का प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करने लगा कि शीघ्र ही कुछ होनेवाला है।

नानासाहब, तात्या टोपे, अज़ीमुल्लाखाँ तथा अन्य नेताओं ने इस क्रांति के देशव्यापी संगठन को इतनी कुशलता, बुद्धि-मत्ता तथा गोपनीयता से किया कि अंग्रेज़ी सरकार को इसका कुछ भी पता न चला। वे समझते रहे कि देश में अमन-चैन

है, उनके राज्य में भारतीय संतुष्ट हैं। सर जेकब ने 'वेस्टर्न इण्डिया' नामक पुस्तक में लिखा है : "इस षड्यंत्र का संगठन जितने गुप्त ढंग से हुआ, जितनी दूरदर्शिता से योजना बनाई गई, जिस सतर्कता से षड्यंत्रकारी केन्द्र कार्य करते थे, इन केन्द्रों में सामञ्जस्य स्थापित करनेवाले जिस गुप्त रूप से रहते थे—प्रत्येक को उतनी ही हिदायत दी जाती थी, जितनी उनके लिए आवश्यक थी—इन सबका वर्णन करना अत्यंत कठिन है।"

इस प्रकार देश में क्रांति का एक सुदृढ़ संगठन खड़ा किया गया। स्थान-स्थान पर क्रांतिकेन्द्र स्थापित किये गये। सेनाओं में क्रांति समितियां बनाई गईं। इन समितियों तथा केन्द्रों का निरीक्षण करने तथा उनमें सहयोग और सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये नानासाहब अपने दल के साथ यात्रा के बहाने ब्रह्मावर्त से निकले। तात्या टोपे भी इस यात्रा में उनके साथ थे।

यात्रियों का यह दल नानासाहब के नेतृत्व में उत्तरभारत के प्रायः सभी स्थानों में गया। प्रत्येक स्थान पर नानासाहब स्थानीय अंग्रेज़ अधिकारियों से अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिलते। तात्या टोपे, ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्लाखाँ आदि वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों से मिलते। भावी क्रांति की दृष्टि से सब बातों का निरीक्षण करते। उचित व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करते। जहाँ पहले से ही क्रान्तिकेन्द्र स्थापित हो चुके थे वहां वे उनके संगठनकर्ताओं से मिलते। जहाँ केन्द्र न बन सके थे वहां उनके स्थापित करने का प्रयत्न करते।

यात्रियों का यह दल उत्तर में अम्बाला तक गया था।

दिल्ली में नानासाहब बहादुरशाह और ज़ीनतमहल से मिले। यहीं पर एक गुप्त बैठक में स्वातंत्र्य-संग्राम की योजना को अंतिम रूप दिया गया। इस बैठक में यह निश्चय किया गया कि ३१ मई, सन् १८५७ ई० को एकसाथ सब जगह विद्रोह का शंखनाद किया जाय। जब नानासाहब लखनऊ पहुँचे तो वहां उनका धूमधाम से स्वागत हुआ। उनका विराट् जुलूस निकाला गया। यहीं प्रथम बार इस प्रांत के गवर्नर हेनरी लारेंस को नानासाहब पर संदेह हुआ। उन्होंने कानपुर की छावनी के अफसर जनरल व्हीलर को नानासाहब से होशियार रहने के लिये लिखा। लखनऊ से नानासाहब काल्पी पहुँचे। वहाँ बिहार के कुँवरसिंह नानासाहब से मिले। वहाँ कुंवरसिंह से भावी क्रांति के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। यहाँ से नानासाहब अपने दल के साथ ब्रह्मावर्त वापस आये। यह यात्रा विशुद्ध राजनीतिक यात्रा थी। अंग्रेज़ लेखकों ने इस यात्रा के महत्त्व को माना है। क्रांति की योजना को सफल बनाना ही इसका प्रमुख उद्देश्य था।

ब्रह्मावर्त वापस आकर सभी लोग क्रांति की योजना को सफल बनाने में लग गये। ज्वालाप्रसाद ने कानपुर के भारतीय सैनिकों से सम्पर्क स्थापित किया। इतिहासकार मेलीसन का कहना है कि कानपुर की सेना के भारतीय अफसर नानासाहब तथा तात्या टोपे से गंगा के बीचोंबीच एक नाव में गुप्तरूप से मिले थे।[1] वहीं क्रांति का कार्यक्रम निश्चित किया गया।

---

1. The History of Indian Mutiny. Vol. II, page 231—32.

इस प्रकार देश में क्रांति के लिये उपयुक्त वातावरण तथा सुदृढ़ संगठन का निर्माण किया गया। देश का प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करने लगा कि शीघ्र ही कुछ होनेवाला है।

विस्फोट

डलहौज़ी ने अपने शासनकाल में असंतोष की जो विष-बेल बोई थी, उसमें लार्ड कैनिंग के कार्यकाल में कटुफल लगे। उसके अन्यायपूर्ण कार्यों के घातक परिणाम कैनिंग को भोगने पड़े। कार्यकाल की समाप्ति पर डलहौज़ी के सम्मान में जो भोज हुआ था उसमें उसने कहा था कि हिन्दुस्तान में पूर्ण अमन-चैन है। पर इसके विपरीत दूरदर्शी लार्ड कैनिंग ने कहा था कि भारत के क्षितिज पर एक छोटा-सा काला बादल दिखाई दे रहा है। सम्भव है यह छोटा-सा बादल घनघोर घटा का रूप धारण न करे। इस प्रकार कैनिंग को हिन्दुस्तान का कार्यभार संभालते समय भावी संकट का आभास मिल चुका था।

मंगल पाँडे का प्रथम बलिदान—

मंगलपांडे ने अपनी प्रथम आहुति देकर इस क्रांति-युद्ध की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया। वह १६ नम्बर की पैदल सेना का एक सिपाही था। यह सेना कलकत्ता के निकट बैरक-पुर की छावनी में तैनात थी। इस समय अंग्रेज़ी सेना के भार-

तीय सिपाहियों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार के प्रति घोर अविश्वास और विद्वेष व्याप्त था। उन्हें विश्वास हो गया था कि वह उनके धर्म को नष्ट करके उन्हें ईसाई बनाना चाहती है। यही कारण था कि वे अंग्रेज़ों के प्रत्येक कार्य की ओर अत्यंत संदेह से देखने लगे थे।

अभी तक सेना में ब्राउन बेन नामक बंदूक का प्रयोग किया जाता था। पर अब एनफील्ड नामक बंदूक सिपाहियों को दी गई। इस बंदूक में, जिस कारतूस का प्रयोग किया जाता था उसके ऊपर के कागज़ को दांतों से फाड़ना पड़ता था। एका-एक यह समाचार फैल गया कि इस कागज़ को चिकना करने के लिये गाय तथा सुअर की चर्बी का उपयोग किया गया है। सिपाहियों ने सरकार के इस कार्य को उनका धर्म लेने की एक एक चाल समझी। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही धर्मों के सिपाहियों ने अपने अफसरों से कहा कि वे इस कारतूस का प्रयोग नहीं करना चाहते। पर सरकार ने उनके इस निवेदन को अनुशासनहीनता माना और उसने बल-प्रयोग करने का निश्चय किया। १९ नम्बर की पलटन को, जो इस समय बैरकपुर में थी, इन कारतूसों का उपयोग करने की आज्ञा दी गई। सिपाहियों ने दृढ़तापूर्वक उनका उपयोग करने से इन्कार कर दिया। इस समय वहाँ कोई अंग्रेज़ी सेना न थी। अतएव अंग्रेज़ अफसरों ने चुप रहना ही उचित समझा। पर सरकार ने १९ नंबर की सेना को निःशस्त्र कर उसे भंग कर देने का निश्चय किया। भारतीय सिपाही उनके इस निश्चय से परि-चित हो गये। वे यह भी जान गये थे कि उनको निःशस्त्र करने

के लिये ब्रह्मदेश (बर्मा) से एक अंग्रेज़ी सेना बुलाई गई है। सिपाहियों में व्याकुलता और अशांति बढ़ती ही जा रही थी।

धर्माभिमानी मंगल पांडे के लिये यह स्थिति असहनीय हो गई। २९ मार्च, सन् १८५७ को एक हाथ में तलवार और एक में बन्दूक लेकर वह एकाएक बैरक से निकल पड़ा और उसने भारतीय सिपाहियों का अंग्रेज़ों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने के लिए आह्वान किया। इस घटना की सूचना मिलते ही मेजर जनरल ह्यूसन वहाँ आया। उसने उपस्थित सिपाहियों को आज्ञा दी कि वे मंगल पाँडे को गिरफ्तार कर लें। पर कोई सिपाही उसकी आज्ञा मानने के लिये आगे न बढ़ा। मंगल पांडे ने ह्यूसन की ओर बन्दूक तानी। बन्दूक गरज उठी। ह्यूसन का मृत शरीर लोट-पोट हो गया। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर में एडजूटेण्ट लेफ्टीनेण्ट बाँग तथा हडसन घटनास्थल पर आये। मंगल पाँडे की गोली से बाँग का घोड़ा घायल हो गया। परिणामस्वरूप घोड़ा तथा सवार दोनों भूमि पर गिर पड़े। हडसन तथा मंगल पांडे में द्वंद्वयुद्ध होने लगा। हडसन भी उसकी तलवार के घाट उतर जाता पर शेख पलटू नामक एक सिपाही ने आगे बढ़कर मंगल पाँडे का हाथ पकड़ लिया। मौका मिलते ही बाँग और हडसन अपनी-अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए।

इस घटना को अनेक सिपाही देख रहे थे। उनमें से पलटू के सिवा—किसीने भी अंग्रेज़ अफसरों को बचाने का प्रयत्न नहीं किया। उलटे उन्होंने पलटू को ही बीच में दखल देने पर

डाँटा। साथ ही सिपाहियों ने मंगल पाँडे का भी साथ नहीं दिया। जब जनरल हियरसे घटनास्थल पर आया उस समय तक मंगल पांडे किसी सिपाही द्वारा समर्थन प्राप्त न होने से हताश हो गया था। उसने पिस्तौल से आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। पर वह केवल घायल होकर बेहोश हो गया। उसका कोर्ट-मार्शल हुआ तथा ८ अप्रैल को भारतीय सिपाहियों की उपस्थिति में उसे फाँसी दे दी गई। सन् १८५७ की क्रांति का यह प्रथम बलिदान था।

मेरठ में क्रांति का शंखनाद—

मंगल पाँडे का नाम प्रत्येक छावनी में गूँजने लगा। सेना के प्रत्येक सिपाही के मन में उथल-पुथल मच गई। प्रत्येक अनुभव करने लगा कि धर्म की रक्षा में उसे किसी भी समय विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ सकता है। प्रत्येक सिपाही आतंकित था, पर साथ ही धर्म-रक्षा करने में दृढ़ प्रतिज्ञ भी था।

बंगाल की घटनाओं से अंग्रेज़ी सरकार उचित सबक सीखने को तैयार न थी। वह तो भारतीय सेना की इस अनुशासन-हीनता को नष्ट करना चाहती थी। चरबी लगे कारतूसों का प्रयोग बंद कर देना वह अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझती थी। बंगाल से दूर मेरठ में उसने इन कारतूसों के प्रयोग करने का निश्चय किया। ६ मई, सन् १८५७ ई० को मेरठ के ९० घुड़सवार सैनिकों को आज्ञा दी गई कि वे इन कारतूसों को दाँत से काटकर बंदूक में भरें। ८५ घुड़सवारों ने यह आज्ञा

मानने से इन्कार कर दिया। ये गिरफ्तार कर लिये गये। कोर्ट मार्शल ने इन्हें ६ से लेकर १० वर्ष तक की कठोर कारावास की सज़ा दी। निदान ये ८५ धर्मवीर घुड़सवार मेरठ की जेल में बंद कर दिये गये।

इस घटना से मेरठ की छावनी में तहलका मच गया। अपने साथियों की दुर्दशा देखकर वे दुखी थे। अंग्रेज़ों के अत्याचारों के कारण वे उनसे क्रुद्ध थे, तथा भविष्य में न मालूम क्या हो इस विचार से आतंकित थे। ३१ मई तक क्रांति आरम्भ करने के लिए रुकना उनके लिए कठिन हो गया। सैनिकों का जेल में बन्द किया जाना, प्रत्येक सिपाही अपना अपमान समझता था। उनकी दृष्टि में घुड़सवार धर्म-रक्षक थे तथा अंग्रेज़ी सरकार अत्याचारी थी। मेरठ की छावनी में रातभर गुप्त बैठकें हुई। अन्त में १० मई की प्रातः काल को क्रांति का झंडा खड़ा करने का निश्चय किया गया। इस दिन रविवार था। ज्योंही गिरजाघर में प्रातःकाल की प्रार्थना के लिए घंटियाँ घनघना उठीं, त्योंही छावनी के सिपाही शस्त्र लेकर अपनी बैरकों से निकल पड़े। घुड़सवार सेना शीघ्रतापूर्वक जेलखाने पहुँची। उसने जेल की दीवारें ढहा दीं और उसमें बन्द अपने साथियों को मुक्त किया। क्रांति-कारी सिपाहियों तथा नगर के लोगों ने अंग्रेज़ों पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। अनेक अंग्रेज़ मौत के घाट उतार दिए गए। उनके बंगले जला डाले गए। बहुत दिनों से लोगों के हृदयों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध जो द्वेषाग्नि सुलग रही थी वह उग्र रूप से प्रज्वलित हो उठी। मेरठ में अंग्रेज़ी सत्ता को

समाप्त कर, दो हज़ार सैनिक दिल्ली रवाना हुए। "दिल्ली चलो" का नारा आकाश में गूँजने लगा।

निश्चित तिथि से २१ दिन पूर्व मेरठ में क्रांति का विस्फोट क्रांति की सफलता के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। अंग्रेज़ सतर्क हो गए। भावी संकट की उन्हें कल्पना हो गई तथा उसका सामना करने की तैयारी का उन्हें अवसर मिल गया।

लालकिले पर क्रांति का झंडा—

११ मई को क्रांतिकारी सिपाही दिल्ली पहुँचे। उनके आगमन का समाचार पहिले ही वहाँ पहुँच चुका था। दिल्ली की सेना भी इन क्रांतिकारी सिपाहियों से मिलकर क्रांति का झंडा खड़ा करने के लिए उतावली हो रही थी। मेरठ के सिपाहियों ने तार काट डाले थे। इसी कारण दिल्ली के अंग्रेज़ मेरठ की घटनाओं से अनभिज्ञ थे।

जब ये क्रांतिकारी सिपाही यमुना पार कर, लालकिले के पास पहुँचे तो उन्होंने मुगल बादशाह का जयजयकार किया। ये नारे सुनकर किले का रक्षक डेगलस चौंक पड़ा। पर भावी संकट की गम्भीरता का पता उसे न था। वह किले के बाहर आकर जानना चाहता था कि मामला क्या है। पर बादशाह ने उसे बाहर नहीं जाने दिया। दिल्ली की सेना के अंग्रेज़ अफसरों ने अपनी-अपनी सेना को स्वामिभक्ति के उपदेश दिए। पर सिपाही तो पहले ही क्रांति के पाठ पढ़ चुके थे। इन उपदेशों का उनपर कोई असर न पड़ा। किले के हिन्दुस्तानी पहरेदारों ने क्रांतिकारियों के लिए किले के फाटक खोल दिए।

इन सिपाहियों ने दीवाने-आम में अपने अड्डे जमाये। दिल्ली की जनता ने पूरी तरह से क्रांतिकारियों का साथ दिया।

मुगल-सम्राट बहादुरशाह चाहते थे कि दिल्ली में ३१ मई को ही क्रांति का बिगुल बजाया जाय। पर मेरठ के क्रांतिकारी सिपाहियों के दिल्ली में आने से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई उसमें ऐसा करना असम्भव हो गया। जब क्रांतिकारियों ने उनसे नेतृत्व ग्रहण करने की प्रार्थना की तो उन्हें स्वीकार ही करना पड़ा।

दिल्ली में क्रांति की ज्वाला फैल गई। सहस्रों लोग, जो शस्त्र मिला उसे लेकर बाहर निकल पड़े। अंग्रेज़ों का नामोनिशां मिटा देने के नारों से दिल्ली का वायुमंडल गूंज उठा। प्रतिहिंसा की अग्नि ने सैकड़ों अंग्रेज़ों की बलि ली। दिल्ली का बैंक लूट लिया गया। 'दिल्ली गज़ट' के ईसाई कर्मचारी मार डाले गए। टाइप और मशीनें नष्ट कर दी गई। शस्त्रागार पर अधिकार करने का प्रयत्न किया गया। पर इसके रक्षक वेलोबी ने शस्त्रागार को क्रांतिकारियों से बचाने के लिए उसमें आग लगा दी। एक भयंकर विस्फोट के साथ शस्त्रागार उड़ गया। फिर भी क्रांतिकारियों के हाथ बहुतसे शस्त्र लगे। सिपाहियों और नागरिकों को बंदूकें बांट दी गई। थोड़ेसे ही अंग्रेज़ भागकर अपनी जान बचाने में सफल हो सके।

लालकिले पर फहरानेंवाला यूनियन जैक फाड़कर फेंक दिया गया। उसके स्थान पर क्रांति का हरा झंडा फहराया गया। देश-भर की क्रांति का यह श्रीगणेश था। दिल्ली-विजय का समाचार सारे देश में फैल गया। देश-भर में

आनन्द की लहर दौड़ गई। देश में होनेवाली क्रांति को उत्साह और स्फूर्ति प्राप्त हुई।

कानपुर में क्रांति

ब्रह्मावर्त के नानासाहब के महल से तात्या टोपे की जागरूक और पैनी आँखें देश में होनेवाली घटनाओं पर जमी हुई थीं। अज़ीमुल्लाखाँ का विशाल मस्तिष्क क्रान्ति की योजना को अंतिम रूप देने में लगा हुआ था। ज्वालाप्रसाद कानपुर की सेना में क्रान्ति का संगठन करने में लगे हुए थे। सभी संगठक ३१ मई तक क्रांति के संगठन को सुदृढ़, कार्यक्षम और प्रभावशाली बनाने में लगे हुए थे।

बैरकपुर, मेरठ तथा दिल्ली को घटनाओं ने क्रांति के नेताओं को चिन्ता में डाल दिया था। उन्होंने निश्चय किया था कि एक दिन, एक समय सारे देश में एकसाथ अंग्रेज़ों पर आक्रमण आरंभ किया जाय ताकि यह परिणामकारक सिद्ध हो सके। उनको विश्वास था कि ऐसे अकस्मात् और सुदृढ़ आक्रमण के सामने अंग्रेज़ों का टिकना कठिन हो जायगा। इस दूरदर्शितापूर्ण योजना का आरंभ निश्चित तिथि के पूर्व ही होनेवाली घटनाओं के कारण, जैसाकि क्रान्तिकारी नेता चाहते थे, उस प्रकार परिणामकारक ढंग से न हो सका। इससे क्रांति की सफलता के मार्ग में एक बड़ी बाधा उपस्थित हुई। पर देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने की पूर्ण

तैयारी हो चुकी थी। देश का राजनीतिक वायुमंडल क्रान्ति के अनुकूल बन चुका था। जहाँ भी मेरठ और दिल्ली की क्रान्ति का समाचार पहुंचता वहां क्रान्ति का झंडा खड़ा कर दिया जाता। १६ मई से ३० मई तक अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा, नसीराबाद आदि स्थानों में; निश्चित तिथि ३१ मई को बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद तथा लखनऊ में; १ जून से १४ जून तक बदायूं, आज़मगढ़, सीतापुर, कानपुर, प्रयाग, झांसी, फैजाबाद, सुलतानपुर, जालन्धर, बस्ती, ग्वालियर आदि स्थानों में क्रान्ति का आरंभ हुआ। इनमें से अधिकांश स्थानों में अंग्रेज़ी सत्ता समाप्त हो चुकी थी। उसके स्थान पर क्रान्तिकारी शासन स्थापित हुआ था। उत्तरभारत में विद्रोह अत्यन्त प्रखररूप में प्रकट हुआ था। बिहार से लेकर पंजाब तक क्रान्ति की भीषण लहरें आन्दोलित हो उठीं। खानबहादुरखाँ के नेतृत्व में रुहेलखण्ड, फैज़ाबाद के मौलवी अहमदुल्लाशाह, राना बेनीमाधव आदि के नेतृत्व में अवध, कुंवरसिंह के नेतृत्व में बिहार, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में बुन्देलखण्ड आदि उत्तरभारत के भाग फिरंगियों की सत्ता मिटाने के लिये उठ खड़े हुए थे।

कानपुर में नानासाहब तथा उनके प्रतिभाशाली सहायक तात्या टोपे, अज़ीमुल्लाखां, बाबाभट, ज्वालाप्रसाद आदि क्रांति का संगठन करने में लगे हुए थे। ब्रह्मावर्त अखिल भारतीय क्रान्ति का केन्द्र था तथा कानपुर स्थानीय क्रान्ति का। कानपुर में क्रान्ति की पूरी तैयारी हो चुकी थी। आस-पास के राजाओं तथा ज़मींदारों के पास क्रान्ति में शामिल

होने के निमंत्रण पहुँच चुके थे। कई स्थानों से स्वीकृतियाँ भी आ चुकी थीं। कानपुर की सेना में क्रान्तिकारी केन्द्र स्थापित हो चुके थे। सिपाहियों की गुप्त बैठकें होने लगी थीं। नानासाहब के दूत सेना में घुसकर सिपाहियों तक क्रान्ति का सन्देश पहुंचाने में लगे हुए थे। दूसरे नम्बर की घुड़सवार सेना के सूबेदार टीकासिंह ने क्रान्तिकारी सिपाहियों का नेतृत्व किया था। आरंभ में क्रान्तिकारी सिपाहियों को यह सन्देह था कि नानासाहब कहाँ तक उनका साथ देंगे। उनके इस सन्देह को दूर करने के लिये सिपाहियों के प्रमुख लोग नाना-साहब से मिलाये गये। यह मिलन गंगा की धारा के बीच नाव में अत्यन्त गुप्त रूप से हुआ। इसमें नानासाहब, तात्या टोपे, अज़ीमुल्लाखाँ, ज्वालाप्रसाद तथा सिपाहियों की ओर से सूबेदार टीकासिंह हवलदार मेजर गोपालसिंह, शम्सुद्दीन, शेख बुलाकी आदि उपस्थित थे। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भी इस मिलन के महत्त्व को स्वीकार किया है।

नानासाहब पर अंग्रेजों का पूर्ण विश्वास—

इधर क्रान्ति की तैयारी हो रही थी, उधर नानासाहब कानपुर के अंग्रेज़ों के मित्र ही बने रहे। कानपुर के अंग्रेज़ अफसर प्रायः ब्रह्मावर्त जाते थे। नानासाहब उनका ठाट-बाट से स्वागत करते थे। उनको बहुमूल्य भेंट देते थे। नाच-गाने की पार्टियों की व्यवस्था करते थे। इन सब बातों के परिणामस्वरूप अंग्रेज नानासाहब पर पूर्ण विश्वास करते थे। जब अंग्रेज़ों को नगर में होनेवाली गड़बड़ी का आभास

मिला तो वे सोचते थे कि संकट आने पर वे उनकी सहायता करेंगे। कानपुर के कलक्टर हिलर्संडन की पत्नी ने इंग्लैण्ड में रहनेवाले अपने एक संबंधी को १६ जून, सन् १८५७ को एक पत्र में लिखा था: "अगर कानपुर में अशान्ति हुई तो हमें चिन्ता की कोई बात नहीं। बिठूर के महाराजा नाना-साहब मेरे पति के मित्र हैं। वे बहुत धनी और प्रभावशाली हैं। संकट आने पर मैं उनके महल में आश्रय लूँगी।" नानासाहब की संगठन-कुशलता का इससे अधिक क्या प्रमाण मिल सकता है कि अंग्रेज़ अंत तक उनपर पूर्ण विश्वास करते रहे।

मई मास के आरंभ होते ही अशान्ति के लक्षण प्रकट होने लगे। इसी समय कानपुर के बाज़ारों में ऐसा आटा बिकने आया जिसमें बदबू आती थी। अफवाह उड़ी कि इस आटे में गाय और सुअर की हड्डियाँ पीसकर मिलाई गई हैं। लोगों को विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ उनका धर्म लेने पर उतारू हैं। इसी समय एक गोरे सैनिक ने हिन्दुस्तानी सिपाही पर गोली दाग दी जिससे वह घायल हो गया। वह गोरा पकड़ लिया गया तथा उसका कोर्ट-मार्शल हुआ। वह यह कहकर छोड़ दिया गया कि शराब के नशे में उससे धोखे से बन्दूक चल गई। इससे हिन्दुस्तानी सिपाहियों में क्रोध की लहर दौड़ गई। वे खुले-आम कहने लगे कि उनको भी बन्दूकें धोखे से चलनेवाली हैं। साथ ही यह खबर चारों ओर फैल गई कि अंग्रेज़ अब हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर विश्वास नहीं करते। उन्होंने सभी सिपाहियों को एकसाथ उड़ा देने के लिये कवायद के मैदान के नीचे बारूद बिछा दी है। इन अफवाहों से कानपुर

के लोगों और सिपाहियों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रोध बढ़ता जा रहा था। अब सिपाही अपने अफसरों से उद्दंडता का व्यवहार करने लगे। उनकी आज्ञाओं की अवहेलना करने लगे।

इस समय कानपुर की छावनी में ५६ अंग्रेज़ गोलन्दाज़ तथा १०५ अंग्रेज़ घुड़सवार थे। हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संख्या तीन हज़ार के लगभग थी। कानपुर में अशान्ति के लक्षण प्रकट होते ही वहाँ का कलक्टर हिलर्सडन घबड़ा गया। सरकारी खज़ाने तथा शस्त्रागार की उसे विशेष चिन्ता थी। ये दोनों छावनी से ५ मील दूर नवाबगंज में थे। खज़ाना तथा शस्त्रों को वहाँ से हटाना संकट से खाली न था। इस विकट परिस्थिति से चिन्तित होकर हिलर्सडन ने २६ मई को नानासाहब के नाम एक पत्र लिखा तथा उनसे प्रार्थना की कि वे खज़ाने तथा शस्त्रागार की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लें। इस समय नानासाहब के पास ५०० सशस्त्र अनुयायी तथा ५ तोपें थीं। वे ३०० अनुयायी और २ तोपें लेकर कानपुर आये। उन्होंने तात्या टोपे को शस्त्रालय तथा खज़ाने की रक्षा का भार सौंपा। इन दोनों स्थानों पर तात्या ने अपने विश्वसनीय पहरेदारों को नियुक्त किया। इस प्रकार तात्या ने योजनाक्षेत्र से निकलकर कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया।

निराशा का दुर्ग—

कानपुर का सैनिक अफसर-जनरल व्हीलर एक वृद्ध, अनुभवी तथा चतुर व्यक्ति था। सिपाही उसका बड़ा आदर

करते थे। कानपुर के तत्कालीन वातावरण से वे समझ गये कि यहाँ की अशान्ति भी अब दूर नहीं। अतः उसने संकट-काल में अंग्रेज़ों की रक्षा करने की व्यवस्था करना आरंभ किया। छावनी में पुराने अस्पतालों की दो बैरकें खाली पड़ी थीं। इसीके चारों ओर चार फुट ऊँची कच्ची दीवार का घेरा बनाया गया। इसमें शीघ्रता से एक महीने की भोजन-सामग्री एकत्रित की गई। खज़ाने से एक लाख रुपये यहाँ लाकर रखे गये। तोपें, बन्दूकें तथा बारूद भी यहाँ एकत्रित किया गया। अज़ीमुल्लाखाँ ने व्यंग्यपूर्वक एक अंग्रेज़ अफसर से पूछा कि इस घेरे का क्या नाम होगा। अफसर ने कहा कि इसपर अभी विचार नहीं किया गया है। अज़ीमुल्ला ने सुझाव देते हुए कहा कि इसका नाम 'निराशा का दुर्ग'[1] होना चाहिए। अफसर ने व्यंग्य पहिचाना और उत्तर दिया, "नहीं, इसका नाम 'विजय दुर्ग'[2] होगा।"

क्रान्ति का शंखनाद—

४ जून को कानपुर में क्रान्ति का बिगुल बज उठा। दूसरे नम्बर की घुड़सवार सेना ने क्रान्ति का नारा बुलन्द किया। पूर्व-संकेतानुसार पिस्तौल से तीन फायर किये गये तथा एक अंग्रेज़ अफसर के बँगले में आग लगा दी गई। दो नम्बर की सेना सशस्त्र होकर बाहर निकल पड़ी। उसके सिपाहियों ने अन्य सेनाओं को क्रान्ति में शामिल होने का निमंत्रण दिया।

---

1. Castle of despair
2. Castle of victory

इसी समय सेना का अफसर इवार्ट वहाँ पहुँचा। उसने सिपाहियों से कहा कि वे विद्रोह न करें। पर उसकी किसीने न सुनी। क्रान्ति के नारे लगाते हुए सिपाही बैरकों के बाहर निकल पड़े तथा उन्होंने कई गोरे अफसरों के बँगलों में आग लगा दी। शीघ्र ही ये सिपाही नवाबगंज की ओर रवाना हुए। ५३ तथा ५६ नम्बर की सेना विद्रोह करने में हिचक रही थी। इन सेनाओं के सिपाही मैदान में एकत्रित हुए। जनरल व्हीलर ने समझा कि ये भी विद्रोही हैं। उसने उनपर तोपों से गोले बरसाये। ये सिपाही भी भाग खड़े हुए और नवाबगंज जाकर अन्य विद्रोही सिपाहियों से जा मिले।

विद्रोही सिपाही नानासाहब के यहाँ, जो इस समय नवाब गंज में थे, पहुंचे। इन्होंने नानासाहब के नाम का जय-जयकार किया। उन्होंने नाना से प्रार्थना की कि वे उनका नेतृत्व ग्रहण करें। नानासाहब ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। जब सिपाही खज़ाने के पास पहुँचे तो खज़ाने से एक लाख रुपये निकालकर सिपाहियों में बाँट दिये गये। इसके उपरान्त ये विद्रोही सिपाही जेल के सामने पहुंचे। उन्होंने जेल की दीवार तोड़ डाली तथा कैदियों को मुक्त किया। कचहरियों में आग लगा दी गई। गंगा का पुल तोड़ डाला गया। अंग्रेज़ों के बँगले लूट लिये गये तथा उनमें आग लगा दी गई। इस प्रकार कानपुर में क्रान्ति का आरंभ हुआ। विशेष बात यह थी कि इस समय किसी भी अंग्रेज़ की हत्या नहीं की गई।

सभी विद्रोही सिपाही एक स्थान पर एकत्रित हुए और सब दिल्ली की ओर रवाना हुए। उनके साथ नानासाहब,

तात्या टोपे, अज़ीमुल्लाखाँ आदि भी थे। तात्या तथा अज़ीमुल्लाखां अनुभव करते थे कि कानपुर छोड़ना क्रान्ति के लिये हानिकारक होगा। कानपुर की भौगोलिक स्थिति बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। कलकत्ता-दिल्ली का राजमार्ग—ग्राण्ड ट्रंक रोड—यहीं से जाता था। कानपुर के गंगा के पुल से ही अवध के लिये भी मार्ग जाता था। अतएव कानपुर पर अधिकार बनाये न रखना हानिकारक था। दूसरा कारण यह भी था कि एक स्थान पर क्रान्ति की शक्ति को एकत्रित करना तथा अन्य स्थानों को छोड़ देना बुद्धिमत्तापूर्ण नीति न थी। दिल्ली में सारे देश की सेना एकत्रित करना तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों तथा आवागमन के मार्गों को अंग्रेज़ों के लिये सुरक्षित बना देना क्रान्ति के लिये घातक था। इससे चारों ओर से दिल्ली पर आक्रमण कर क्रान्ति की शक्ति को कुचल देना अंग्रेज़ों के लिये सरल हो जाता।

इन्हीं सब कारणों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर तात्या ने नानासाहब को समझाया कि वे सिपाहियों को समझाकर कानपुर वापस लाएँ तथा इसी नगर को अपने कार्यों का केन्द्र बनाएँ। नानासाहब सिपाहियों को पुनः कानपुर ले आये और यहीं अंग्रेज़ों का सामना करने का निश्चय किया गया। कानपुर आते ही नानासाहब ने व्हीलर को पत्र भेजा कि वे उनके घेरे पर शीघ्र ही आक्रमण करनेवाले हैं।

क्रान्तिकारी शासन—

इस समय नगर में अराजकता फैली हुई थी। कुछ विद्रोही सिपाही और नगर के गुण्डे लोगों के घरों में घुसकर लूट रहे

थे। नगर के लोग अपने को असुरक्षित समझने लगे थे। ७ जून, १८५७ ई० को नगर में नानासाहब के नाम से हिन्दी और उर्दू में घोषणापत्र वितरित किया गया। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों से प्रार्थना की गई थी कि वे शहर में पूरी शान्ति बनाये रखें। नगर के प्रभावशाली व्यक्तियों की नाना-साहब ने एक सभा बुलवाई तथा उसमें उन्होंने इन लोगों से प्रार्थना की कि वे धर्म की रक्षा करने के लिये क्रान्ति में भाग लें।

नाना ने नगर में न्याय-विभाग का निर्माण किया। हुलास-राय मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये। इन्हें आज्ञा दी गई कि लोगों के प्राणों तथा उनकी सम्पत्ति की सतर्कता से रक्षा की जाय। यदि सिपाही लूटमार करें तो उन्हें भी कठोर दंड दिया जाय। ज्वालाप्रसाद तथा अज़ीमुल्लाखाँ न्यायाधीश बनाये गये। बाबा भट न्याय-विभाग के अध्यक्ष बनाये गये।

सेना का संगठन—

सेना के संगठन का उत्तरदायित्व तात्या टोपे को सौंपा गया। टीकासिंह जनरल बनाये गये। दलगंजनसिंह तथा गंगा-दीन को कर्नल के पद प्रदान किये गये।

सेना के संगठन में तात्या ने जिस कुशलता का परिचय दिया वह वास्तव में बहुत प्रशंसनीय था। उन्होंने आसपास के जमींदारों, ठाकुरों तथा चन्देल राजपूतों से सहायता प्राप्त की। नानामऊ के मोतीसिंह, शिवराजपुर के राजा सतीप्रसाद, संचेडी के राजा दुर्गाप्रसाद, नार के दरियावचन्द आदि प्रभाव-

शाली व्यक्ति क्रान्ति में भाग लेने के लिये कानपुर आ गये थे। इनकी तथा विद्रोही सिपाहियों की तात्या ने एक सुविशाल सेना संगठित की। सेना में तात्या ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को उच्चपद प्रदान कर इन दोनों का विश्वास प्राप्त किया। तात्या ने अपनी सेना को विभिन्न टुकड़ियों में बाँटा तथा प्रत्येक टुकड़ी पर योग्य अफसर नियुक्त किये। ज्वालाप्रसाद को ब्रिगेडियर का पद प्रदान कर उन्हें सेनापति बनाया गया। इस समय तात्या के पास न शस्त्रों की कमी थी, न बारुद की और न धन की। अंग्रेज़ों का खज़ाना तथा शस्त्रालय हाथ लग ही चुके थे। इन साधनों का उपयोग कर तात्या ने एक बड़ी सेना तैयार की।

घेरे पर आक्रमण—

जनरल व्हीलर ने समझा था कि विद्रोही सिपाही खज़ाना लूटकर दिल्ली की ओर रवाना हो जायेंगे। आरम्भ में हुआ भी ऐसा ही। पर जब विद्रोही सिपाही कल्यानपुर से कानपुर वापस आये तो वह चिन्तित हो उठा। जब उसे ६ जून, सन् १८५७ को नानासाहब का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि वे अंग्रेज़ों पर शीघ्र ही आक्रमण करनेवाले हैं तो उसकी परेशानी की कोई सीमा ही न रही। सर्वनाश के दृश्य अपनी भयंकरता के साथ उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। व्हीलर आक्रमण का सामना करने की तैयारियाँ करने लगा। उसने घेरे के चारों ओर तोपें लगा दीं। १५-१५ कदमों पर अंग्रेज़ सैनिकों के पहरे बैठाये गए। इस समय

घेरे में कोई १ हज़ार अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष और बच्चे थे। इनमें से आधे से भी अधिक महिलाएँ और बच्चे थे। युद्ध करने योग्य कोई २०० पुरुष ही थे। रक्षा का पूरा भार इन्हींपर था। कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही भी उनके साथ घेरे में थे जो अंग्रेज़ों के प्रति स्वामिभक्त बने रहे।

६ जून की सायंकाल को ही अंग्रेज़ों के आश्रयस्थान को चारों ओर से घेर लिया गया। उसके चारों ओर तोपें लगा दी गईं। दूसरे दिन १० बजे प्रातःकाल आक्रमण आरम्भ हुआ। बन्दूकें गरज उठीं तथा तोपें आग उगलने लगीं। बड़ी वीरता से अंग्रेज़ों ने इस हमले का सामना किया। उनकी तोपों और बन्दूकों की गोलबारी के कारण क्रांतिकारी आगे न बढ़ सके। २० दिनों तक घेरे पर लगातार आक्रमण होता रहा। टीकासिंह तोपखाने का संचालन कर रहे थे। क्रान्तिकारियों की घुड़सवार तथा पैदल सेना ने घेरे को नष्ट कर उसमें घुसने के अनेक प्रयत्न किए। पर अंग्रेज़ तोपखाने ने इन्हें हर बार पीछे ढकेल दिया। तात्या तथा उनके साथी व्यर्थ में बलिदान नहीं चढ़ाना चाहते थे। अतः उन्होंने दूर से ही तोपों तथा बन्दूकों से आक्रमण जारी रखा। घेरे के भीतर के अंग्रेज़ क्रान्तिकारियों की गोलियों के शिकार होते जा रहे थे। उनकी संख्या घटती जा रही थी। घेरे में एक ही कुआँ था। क्रान्तिकारियों की नज़र इस कुएँ पर लगी हुई थी। जब कोई कुएँ से पानी निकालने का प्रयत्न करता था तो कुएँ पर गोलियों की बौछार होती। पानी भरनेवाला या तो मर जाता अथवा भाग जाता। पानी के अभाव से अंग्रेज़ों को बड़ा कष्ट

हुआ। एक कमरे की छत ही जल गई। जून मास होने के कारण आकाश से आग बरसती थी। अनेक अंग्रेज़ लू के शिकार हो गये। भयंकर धूप से बचने के लिए छायादार जगह बहुत कम रह गई थी। बीमार और घायलों की संख्या बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे अंग्रेज़ों के सभी गोलन्दाज़ मार डाले गये।

प्लासी की शताब्दी—

२३ जून, सन् १८५७ को प्लासी के युद्ध की शताब्दो थी। इस दिन क्रांतिकारियों ने अंग्रेज़ों पर प्रबल आक्रमण किया। १०० वर्ष पूर्व के प्लासी के रणक्षेत्र की पराजय का क्रांतिकारियों ने बदला लेने का निश्चय किया था। पर अंग्रेज़ों ने इस भयंकर आक्रमण का बड़ी वीरता से सामना किया। क्रान्तिकारियों के सभी हमले विफल हुए। दिनभर दोनों ओर से तोपें और बन्दूकें आग उगलती रहीं।

आत्मसमर्पण—

अंग्रेज़ों का अधिक दिन टिकना कठिन हो गया। बाहर से सहायता प्राप्त करने की भी आशा उन्हें नहीं रह गई थी। अंग्रेज़ों की प्रायः सभी तोपें बेकाम हो गई थीं। बारूद भी समाप्ति पर थी। भोजन-सामग्री भी समाप्त थी। २५० अंग्रेज़ गोलियों के शिकार हो चुके थे। ऐसी स्थिति में आत्म-रक्षा का युद्ध जारी रखना संभव न था। अन्त में व्हीलर ने घेरे पर सुलह का सफेद झंडा फहराया। नानासाहब ने युद्ध

रोकने की तत्काल आज्ञा दी। नानासाहब की ओर से अज़ीमुल्ला ने अंग्रेज़ों को एक पत्र लिखा : "रानी विक्टोरिया के उन प्रजाजनों को जिनका डलहौज़ी की नीति से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो आत्मसमर्पण करने को तैयार हों, उन्हें सुरक्षापूर्वक प्रयाग पहुँचाया जायेगा।" सुलहनामे की शर्तों को निश्चित करने के लिए दोनों पक्षों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए। अंग्रेज़ों की ओर से मूर, व्हिटलिंग और रोशे तथा नानासाहब की ओर से ज्वालाप्रसाद और अज़ीमुल्लाखां ने मिलकर निश्चय किया कि अंग्रेज़ अपने शस्त्र और धन नानासाहब को सौंप दें। प्रत्येक अंग्रेज़ केवल एक बन्दूक और ६० कारतूस रख सकेगा। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि नानासाहब अंग्रेज़ों को सुरक्षापूर्वक प्रयाग पहुँचाने की व्यवस्था करेंगे। कानपुर की तत्कालीन स्थिति को ध्यान में रखकर नानासाहब ने अँग्रेजों को सलाह दी कि वे रात में ही नावों से रवाना हो जाएँ। अगर नानासाहब की यह सलाह मान ली गई होती तो बहुत संभव था कि दूसरे दिन होनेवाला हत्याकाण्ड घटित न होता। पर अंग्रेज़ों ने रात को रवाना होना स्वीकार नहीं किया।

रातभर में यह समाचार चारों ओर फैल गया कि अंग्रेज़ प्रातःकाल प्रयाग रवाना होनेवाले हैं। इस समय कानपुर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध द्वेष और क्रोध की भावना प्रबल हो उठी थी। काशी और प्रयाग के अनेक क्रांतिकारी सिपाही कानपुर आ गये थे। प्रयाग की क्रांति के नेता लियाकत अली यहीं आ गये थे। प्रयाग तथा उसके आसपास के गांवों पर अंग्रेज़ी

सेना ने जो रोंगटे खड़े करनेवाले अत्याचार किये थे, उनके समाचार नगर में फैल चुके थे। कानपुर के लोगों की अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी।

सत्तीचौरा हत्याकाण्ड—

नानासाहब ने अंग्रेज़ों को प्रयाग भेजने की व्यवस्था करने की आज्ञा तात्या टोपे को दी। उन्होंने ४० नावें तैयार कराईं। नावों पर धूप से बचने के लिए छप्पर भी छाये गये। खाने-पीने की सामग्री भी नावों में रख दी गई। दूसरे दिन प्रातःकाल सभी अंग्रेज़ पालकी, हाथी आदि द्वारा सत्तीचौरा घाट पहुंचाये गए। जब सब नावों में बैठ गये तो तात्या ने हाथ हिलाकर नावों को रवाना होने का संकेत किया। इसी समय किसीने बिगुल बजा दिया। मल्लाह घबड़ाकर नावों से कूद पड़े तथा भागने लगे। जिस नाव पर कर्नल टामसन बैठा हुआ था उस नाव के अंग्रेज़ों ने इन भागते हुए मल्लाहों पर गोलियाँ चला दीं। इस समय घाट पर बहुत भीड़ हो गई थी। क्रान्तिकारी सिपाही तथा नगर के लोग अंग्रेज़ों का प्रस्थान देखने के लिए घाट पर एकत्रित हुए थे। गोलियों की आवाज़ ने सिपाहियों के संयम और अनुशासन को समाप्त कर दिया। प्रतिहिंसा की आग धधक उठी। घुड़सवारों ने आगे बढ़कर नावों में बैठे हुए अंग्रेज़ों पर आक्रमण कर दिया। बन्दूकें गरज उठीं। अनेक अंग्रेज़ मार डाले गये।

सवादा की कोठी में नानासाहब को गोलियों की आवाज़ सुनाई दी। वे चिन्तित हो उठे। इतने में एक सवार ने आकर सूचना दी कि घाट पर अंग्रेज़ों की हत्याएं की जा रही हैं। उसी सवार के द्वारा नाना ने आज्ञा भेजी कि हत्याकांड बन्द कर दिया जाय तथा अंग्रेज़ महिलाओं तथा बच्चों को न मारा जाय। उनकी इस आज्ञा के फलस्वरूप १२५ अंग्रेज़ महिलाओं की रक्षा की गई।

इस हत्याकाण्ड में एक नाव बच गई थी। इसमें कर्नल टामस मूर, डेलीफास आदि थे। वह नाव प्रवाह में पड़ गई थी। अतएव आगे निकल गई थी। इसका भी पीछा किया गया। अन्त में यह नाव पकड़ ली गई तथा इसके अंग्रेज़ मार डाले गये। इस नाव के ४ अंग्रेज़, जिनमें कर्नल भाब्रे टामसन भी था, किसी प्रकार बच गये। बलरामपुर के तालुकेदार दिग्विजय-सिंह ने इन्हें आश्रय दिया।

स्वतन्त्र कानपुर—

कानपुर में अंग्रेज़ी राज्य की समाप्ति हो गई। २८ जून, १८५७ ई० को कानपुर में एक दरबार हुआ। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा सेना के अफसरों ने इसमें भाग लिया। आरम्भ में क्रान्ति के नेता मुगल-सम्राट बहादुरशाह के सम्मान में १०१ तोपों की सलामी दी गई। नानासाहब के नाम से ५१, तथा तात्याटोपे और टीकासिंह के नाम से ११-११ तोपों की सलामी दी गई। नगर में पेशवा का भगवा झंडा तथा क्रांति का हरा झंडा दोनों फहराये गए।

१ जुलाई, १८५७ ई० को ब्रह्मावर्त में नानासाहब के महल में वैदिक विधि से उनका राज्याभिषेक किया गया। उनके मस्तक पर राजमुकुट रखा गया। कानपुर तथा ब्रह्मावर्त में रोशनी की गई। आतशबाज़ी भी छुड़ाई गई। नानासाहब का पेशवाई को पुनरुज्जीवित करने का स्वप्न पूरा हुआ। इस खुशी में नानासाहब ने सिपाहियों को एक लाख रुपयों का पारितोषिक देने की घोषणा की।

सत्तीचौरा घाट के हत्याकाण्ड के लिये अंग्रेज़ लेखकों ने नानासाहब और तात्या टोपे को उत्तरदायी माना है। कुछ लेखकों ने तो यहाँ तक लिखा है कि तात्या ने ही इस हत्या-काण्ड करने की आज्ञा दी थी। पर इस प्रकार के कथन घटनाक्रम देखते हुए निराधार मालूम होते हैं। भाब्रे टामसन ने 'कानपुर की कहानी'[१] नामक अपनी पुस्तक में इस बात को स्पष्टरूप से स्वीकार किया है कि सत्तीचौरा घाट पर अंग्रेज़ों ने ही पहिले गोलियाँ चलाई। इससे स्पष्ट है कि क्रान्तिकारी नेताओं पर, शरण आये हुए अंग्रेज़ों की हत्या कराने के जो लांछन लगाये जाते हैं वे सब निराधार हैं।

नानासाहब के पेशवा घोषित होते ही कानपुर के मुसलमान कुछ असन्तुष्ट दिखाई देने लगे। नानासाहब ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से मुसलमान-समाज के असन्तोष को दूर किया। उन्होंने इस समाज के प्रमुख नन्हे नवाब को कानपुर का शासक बनाया।

---

1. Story of Cawnpore.

देशव्यापी ज्वाला

सन् १८५७ ई० की क्रान्ति हमारे राष्ट्र के इतिहास का एक गौरवमय अध्याय है। फिरंगियों की सत्ता को मिटाने का यह देशव्यापी और संगठित प्रयत्न था। इस क्रान्ति में दो लाख से भी अधिक भारतीयों ने अपने प्राणों की बलि चढ़ाई; इनमें एक लाख तो सिपाही थे तथा एक लाख देश के अन्य नागरिक। इस क्रान्ति के अवसर पर दिल्ली, अवध, रुहेलखंड, कानपुर, झाँसी, ग्वालियर आदि भागों में अंग्रेज़ी सत्ता समाप्त हो चुकी थी। मध्यप्रदेश, मध्यभारत, पश्चिमी बिहार में भी क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी थी। हमारे राष्ट्र की यह क्रान्ति कितनी व्यापक और कितनी विशाल थी, इसकी कल्पना इस बात से की जा सकती है कि क्रान्ति-काल में एक लाख से भी अधिक वर्गमील भूमि पर क्रान्ति का झंडा लहराने लगा था तथा ३ करोड़ ८० लाख हिन्दुस्तानी फिरंगियों की सत्ता से मुक्त स्वतन्त्रता के वातावरण में श्वास ले रहे थे। क्रान्ति की प्रबल शक्ति के सामने अँग्रेज़ी सत्ता डगमगाने लगी थी। हिन्दुस्तान के अपने नवीन साम्राज्य की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार चिंतित हो उठी। उसने दिल्ली, मेरठ, रुहेलखण्ड, आगरा, बनारस, प्रयाग, उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) के कई ज़िलों में फौजी कानून की घोषणा कर दी थी। पंजाब में कानूनी रूप से भले ही सैनिक शासन न घोषित किया गया हो पर व्यवहार में वहाँ के अधिकारी फौजी कानून से भी अधिक कड़ाई से शासन कर रहे थे।

मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, रुहेलखण्ड, राजस्थान, उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेश से अंग्रेज़ों की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता को समाचार पहुँचना बंद हो गया था। यहाँ के समाचार या तो लाहौर या बम्बई होकर कलकत्ता पहुँचते थे। पंजाब के चीफ कमिश्नर का सेक्रेटरी सर रिचार्ड टेम्पिल बम्बई बन्दरगाह में उतरा, पर वह पंजाब न जा सका। इसी प्रकार जनरल हेवेलॉक बम्बई से दिल्ली जाना चाहता था। स्थलमार्ग उसको सुरक्षित नहीं प्रतीत हुआ अतएव वह जल-मार्ग से कलकत्ता पहुँचा।

निःसंदेह इस क्रान्ति में सैनिकों ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इस समय देश की अंग्रेज़ी सेना तीन भागों में बँटी थी जो क्रमशः बम्बई, मद्रास और बंगाल की सेना कहलाती थी। इस विद्रोह में बंगाल की सेना ने ही प्रमुख भाग लिया था। बम्बई और मद्रास की सेना प्रायः राजभक्त ही बनी रही। बंगाल की सेना में अधिकतर अवध के सिपाही थे। अवध राज्य को अन्यायपूर्वक हड़पने के कारण प्रत्येक अवध-निवासी अंग्रेज़ों से असंतुष्ट था। बंगाल की सेना जहाँ-जहाँ थी उसने विद्रोह कर दिया। केवल इसी आधार पर अंग्रेज़-लेखकों ने इस क्रान्ति को 'सिपाही-विद्रोह' कहा है। पर वास्तव में क्रान्ति की योजना को बनाने में सिपाहियों का कोई हाथ न था और न इस क्रान्ति के नेता—बहादुरशाह, झाँसीवाली रानी, नानासाहब, तात्या टोपे, मौलवी अहमदशाह, कुंवरसिंह—आदि कभी अंग्रेज़ी सेना के सिपाही रहे! क्रान्ति की योजना बनानेवालों ने सिपाहियों के असन्तोष का क्रान्ति में बल लाने के लिए उपयोग किया।

के कई स्थानों पर लोगों ने स्वतः क्रान्ति का झंडा खड़ा किया। इनमें सैनिकों का कोई हाथ नहीं था। लोगों की केवल सहानुभूति ही क्रान्तिकारियों के साथ नहीं रही वरन् उन्होंने खुलकर क्रान्ति में भाग लिया। "ग्रामीण लोगों के माथे पर घृणा का लाल चिह्न लगा रहता था। बिहार में निश्चित योजना के अनुसार लोग उन्हें (अंग्रेज़ों को) गलत खबरें देते थे। अवध में विद्रोही बिना रसद-विभाग के चल सकते थे क्योंकि लोग उनको खिलाते-पिलाते थे। ये (विद्रोही) बिना पहरे के अपना सामान छोड़ जाते थे क्योंकि उनके सामान को कोई छूता न था। अपनी और अंग्रेज़ों की स्थिति की उन्हें पूर्ण जानकारी रहती थी क्योंकि लोग हर घण्टे उनके पास समाचार पहुँचाया करते थे। उनसे कोई योजना छिपी नहीं रहती थी क्योंकि उनके गुप्त सहायक भोजनालयों की प्रत्येक टेबिल पर खड़े रहते थे। जादू की घटना के सिवा लोग किसी समाचार से आश्चर्य-चकित नहीं होते थे क्योंकि प्रत्येक समाचार मौखिक रूप से इतनी तीव्र गति से फैल जाता था कि घुड़सवार सेना भी इतनी तेज़ नहीं दौड़ सकती थी।"[१] क्रान्ति का शंखनाद होते ही लोग सशस्त्र होकर अपने घरों से निकल पड़ते थे। इसलिए इसे जनयुद्ध कहना उचित होगा।

इस क्रान्ति की आधार-शिला राष्ट्रीय एकता थी। इस क्रान्ति में समाज के सभी तत्त्वों, वर्गों अथवा जातियों ने भाग लिया था। हिन्दू-मुस्लिम एकता तो इस क्रान्ति का प्रमुख लक्षण

---

1. Charles Ball—History of Indian Mutiny. P.P. ii 572.

था। हिन्दू और मुसलमान दोनों कंधे से कंधा भिड़ाकर फिरंगियों की सत्ता को मिटाने में एक-दूसरे का साथ दे रहे थे। अंग्रेज़ों ने हिन्दू और मुसलमानों में फूट के बीज बोने के खूब प्रयत्न किये। दिल्ली तथा लखनऊ के मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध उभारा गया। पर उनके ये सारे प्रयत्न असफल ही रहे। रुहेलखण्ड में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा करा देने के लिये एक लाख रुपये का पारितोषिक देने की घोषणा की गई थी। बहादुरशाह ने अपनी घोषणा में कहा था कि हिन्दू मेरी एक आँख है तो मुसलमान दूसरी। उन्होंने दिल्ली में गौकुशी भी बन्द कर दी थी। बरेली के खानबहादुर ने घोषणा की थी, "मुसलमान सरदारों ने यह तय किया है कि अगर हिन्दू लोग अंग्रेज़ों का नाश करने में उनका साथ देंगे तो वे गोहत्या बन्द कर देंगे।" जब रुहेलखण्ड के ठाकुर लोग खानबहादुर खान का साथ देने को तैयार न हुए तो स्वतः नानासाहब बरेली गये तथा उन्होंने वहां के हिन्दुओं को भारत के राष्ट्रीय युद्ध में मुसलमानों का साथ देने के लिये तैयार किया।

राजपूताना और मध्यभारत—

राजपुताना में अजमेर एक प्रमुख सैनिक अड्डा था। जहाँ बहुत बड़ा शस्त्रागार था। इस छावनी का सैनिक अधिकारी था जनरल जार्ज लारेन्स। ज्योंही उसे यह पता चला कि वहाँ भी विद्रोह के लक्षण प्रकट होने लगे हैं तो उसने सबसे पूर्व शस्त्रास्त्रों को वहां से हटाकर नसीराबाद भेज दिया तथा अपने विश्वसनीय पहरेदारों को उनपर नियुक्त किया।

राजपूताने की दूसरी छावनी थी नसीराबाद की। राजपूताने में इस समय कोई गोरी सेना न थी। नसीराबाद के सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। अपने कई अंग्रेज़ अफसरों को गोली से मारकर वहाँ की सभी तोपें साथ में लेकर यहाँ के सिपाही दिल्ली के लिये रवाना हो गये।

नसीराबाद से १२० मील की दूरी पर तीसरी छावनी थी नीमच की। जब यहाँ की छावनी में नसीराबाद के विद्रोह का समाचार पहुँचा तो यहां के सिपाहियों ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। यहाँ के योरोपियन अफसरों को पता लगते ही वे अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। सैनिकों ने यहाँ का बाज़ार और खज़ाना लूट लिया। फिर सिपाही आगरे पर आक्रमण करने के लिये बढ़े। अंग्रेज़ों ने नीमच के अंग्रेज़ों की सहायता के लिये कोटा की घुड़सवार सेना भेजी थी। यह सेना भी आकर विद्रोही सिपाहियों से मिल गई। इस समय विद्रोहियों की सेना में चार हज़ार पैदल, पन्द्रह सौ घुड़सवार और ११ तोपें थी। जब यह सेना आगरे के निकट पहुँची तो ब्रिगेडियर पावेल एक सेना लेकर इसका सामना करने के लिये आगे बढ़ा। विद्रोही सैनिकों ने इस सेना को मार भगाया। पावेल ने आगरे के किले में घुसकर अपनी जान बचाई। क्रान्तिकारी सैनिकों ने आगरे के किले को कई दिनों तक घेरे रखा पर विजय न प्राप्त कर सके।

इन्दौर और ग्वालियर की सहायक सेना ने भी विद्रोह कर दिया था। इन दोनों राज्यों के महाराजा अंग्रेज़ों के पक्षपाती थे। अतः विद्रोही सेनाओं को कोई स्थानीय सहायता प्राप्त न

हो सकी । ग्वालियर की सहायक सेना ने विद्रोह करने के बाद महाराजा जयाजीराव शिंदे पर दबाव डाला कि वे उनका नेतृत्व ग्रहण कर अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ें । पर जयाजीराव इसके लिये राज़ी न हुए । वास्तव में यह सेना बड़ी प्रबल और अजेय मानी जाती थी । अंग्रेज़ों ने जयाजीराव को यही सलाह दी कि इस सेना को वे कहीं बाहर न जाने दें । जयाजीराव ने इसे अपने पास से वेतन देना आरंभ किया । परिणाम-स्वरूप निष्क्रिय होकर यह सेना मुरार की छावनी में ही पड़ी रही । अगर यह सेना दिल्ली की ओर जाती तो इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेज़ों के लिये दिल्ली पर विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता ।

रुहेलखण्ड—

रुहेलखण्ड वीर रुहेलों की भूमि थी । इस राज्य को भी अंग्रेज़ों ने समाप्त कर दिया था । अतएव रुहेले अंग्रेज़ों से रुष्ट थे । यहाँ की क्रान्ति का नेता खानबहादुर खान था । यह प्रतिभा-वान व्यक्ति था । इसके नेतृत्व में रुहेलखण्ड ने अंग्रेज़ी राज्य को समाप्त कर क्रांतिकारी राज्य स्थापित किया । रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली थी । जब दिल्ली-विजय का समाचार यहाँ आया तो बरेली के सैनिक क्रांति का बिगुल बजाने के लिये व्याकुल हो रहे थे । पर उनके नेताओं ने उन्होंने निश्चित दिन ही विद्रोह का झंडा खड़ा करने का आदेश दिया । ३१ मई को सारे रुहेलखण्ड के सभी ज़िलों में एकसाथ क्रांति का शंख-नाद हुआ । बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, बदायूँ और

बिजनौर रुहेलखण्ड के ज़िले थे। इन सभी स्थानों के सैनिक इसी दिन अपनी बैरकों से निकल आये। उन्होंने अपने अंग्रेज़ अफसरों के बँगले जला दिये। अंग्रेज़ों पर आक्रमण आरम्भ हो गया। कई सैनिक अधिकारी मार डाले गये। बरेली से कुछ अंग्रेज़ भागकर नैनीताल पहुँच गये।

इस प्रकार सारे रुहेलखण्ड में एक ही दिन में अंग्रेज़ी सत्ता समाप्त हो गयी। रुहेलों ने खानबहादुर खाँ को नवाब घोषित किया। जब दिल्ली के बादशाह ने खानबहादुर खाँ को सेना के साथ दिल्ली आने का संदेश भेजा तो उसने अपने योग्य सेनापति बख्तखाँ के अधिनायकत्व में एक बड़ी सेना रवाना की। बख्तखाँ दिल्ली में पहुँचकर अपनी योग्यता और संगठन-कुशलता के कारण वहाँ की क्रांतिकारी सेना का सेनापति बनाया गया। दिल्ली के रक्षा-युद्ध में इसने अपनी वीरता, साहस और युद्ध-पटुता का परिचय दिया।

पंजाब—

पंजाब के अधिकारियों ने अत्यन्त सतर्कता एवं कठोरता से काम लिया। देश में विद्रोह की फैलती हुई आग से पंजाब की रक्षा करने का उन्होंने निश्चय किया। उनके सौभाग्य से इस समय पंजाब में दस हज़ार गोरे सैनिक थे। पंजाब में भी बंगाल सेना की कुछ टुकड़ियाँ थीं। इनमें विद्रोह की आग धीरे-धीरे सुलगती जा रही थी। अन्य सेनाओं में भी इनके सम्पर्क से क्रांति के विचार फैल रहे थे। क्रांतिकारियों द्वारा दिल्ली विजय किये जाने का समाचार ज्योंही पंजाब में आया त्योंही

यहाँ की सेना में विद्रोह की भावना प्रबल हो उठी। सैनिक योग्य अवसर की राह देखने लगे।

पंजाब के चीफ कमीश्नर सर जान लारेन्स तथा यहां की सेना के अधिकारी राबर्ट माण्टगोमरी दोनों ही अत्यन्त चालाक और कड़े व्यक्ति थे। दोनों ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा। उन्होंने उन सेनाओं के शस्त्र रखवा लेने का निश्चय किया जिनपर उन्हें संदेह हो गया था। मियाँमीर और लाहौर की सेना के शस्त्र धोखा देकर रखवा लिये गये। बंगाल की ८ नंबर की घुड़सवार सेना मैदान में जब परेड कर रही थी तो उसने एकाएक अनुभव किया कि वह भरे हुए तोपखाने के सामने अत्यन्त चालाकी से लाकर खड़ी कर दी गई है। इसी समय उन्हें शस्त्र रखने की आज्ञा दी गई। शस्त्र रखने में थोड़ी भी हिचकिचाहट करने का अर्थ था सर्वनाश को आमंत्रित करना। इस सेना को अपने शस्त्र रख देने पड़े।

२० मई को नौशेरा के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और विद्रोही सैनिक होतीमरदान पहुँचे। पेशावर के सैनिक अधिकारियों ने नौशेरा के विद्रोह का समाचार पाते ही अपने यहाँ की संदेहात्मक सेना के शस्त्र रखवा लिये और बाकी की सेना लेकर होतीमरदान के विद्रोही सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। जब तक एक भी विद्रोही जीवित था तब तक बराबर लड़ाई चलती रही।

फिरोज़पुर की सेना के व्यवहार से अंग्रेज़ पूर्णरूप से संतुष्ट थे। पर इसी सेना ने १३ मई को विद्रोह कर दिया। इन्होंने अंग्रेज़ों के बँगलों में आग लगा दी। यहाँ के शस्त्रागार पर अधि-

कार करने का इन्होंने प्रयत्न किया। पर अंग्रेज रक्षकों ने शस्त्रागार में आग लगाकर उसे उड़ा दिया ताकि उनके शस्त्र विद्रोहियों के हाथों में न पड़ जाएँ। विद्रोही यहाँ से दिल्ली की ओर रवाना हुए। अंग्रेज़ी सेना ने इनका पीछा किया पर वे इन्हें न पा सके।

मरदान की सेना के अफसर स्पाटिश वुड का अपनी सेना पर विश्वास था। जब इस सेना को निःशस्त्र करने की आज्ञा दी गई तो उसे इतना दुःख हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली। अपने लोकप्रिय अफसर की मृत्यु का समाचार पाते ही सैनिकों ने विद्रोह का भंडा खड़ा कर दिया। उन्होंने वहाँ का खज़ाना लूट लिया और वे दिल्ली की ओर रवाना हुए। निकलसन ने अपनी सेना के साथ उनका पीछा किया। विद्रोही सिपाहियों ने इसका डटकर सामना किया। पर अंग्रेज़ी तोपखाने के आते ही सैकड़ों विद्रोही मार डाले गये। बाकी के गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें अत्यन्त निर्दयता से फाँसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार मर्दान के विद्रोही सैनिकों का खात्मा किया गया।

झेलम में बंगाल सेना की १४ नंबर की पैदल पलटन थी। यह सेना भी निःशस्त्र की जानेवाली थी। पर इस सेना ने शस्त्र रखने के बजाय लड़ते-लड़ते मर जाना अधिक पसंद किया। ज्योंही अंग्रेजी सेना इनके शस्त्र रखाने के लिये आगे बढ़ी, त्योंही उसने इसपर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ी सेना भाग खड़ी हुई और पैदल सेना दिल्ली के लिये रवाना हो गई।

७ जून को जालंधर की सेना ने विद्रोह कर दिया। वह भी दिल्ली की ओर रवाना हुई। रास्ते में फिलौर के सैनिक भी उनके साथ हो लिये। ये विद्रोही सैनिक लुधियाना पर अधिकार कर लेना चाहते थे। लुधियाने के सैनिक अधिकारियों ने इन विद्रोहियों के लुधियाने की ओर बढ़ने का समाचार मिलते ही रावी नदी का पुल तोड़ डाला। ताकि वे लुधियाना न आ सके। पर विद्रोही सेना ने नावों द्वारा नदी पार की। यहाँ अंग्रेज़ी तथा सिख सेना ने इनपर आक्रमण किया। दो घंटे की लड़ाई के बाद अंग्रेजी सेना मार भगाई गई। केवल दुर्भाग्य के कारण ही विद्रोही सेना लुधियाने पर अधिकार करने में असफल रही। इस सेना ने गलती से अपनी गाड़ियों में गोली वाले कारतूसों के बजाय छूछे कारतूस ही भर लिये थे। तिसपर भी अंग्रेज़ी सेना के विरोध की परवाह किये बिना ये सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हुए।

लाहौर की २६ नम्बर की पलटन की कहानी बड़ी करुणाजनक है। इस सेना ने विद्रोह कर अपने अफसर स्पेन्सर की हत्या कर डाली। इन विद्रोही सैनिकों पर अंग्रेज़ी और सिख सेना ने आक्रमण कर दिया। सिपाही जान लेकर भागे। अंग्रेज़ उनके पीछे पड़ गये। कई सिपाही नदी में कूद पड़े। इन में से अनेक डूब गये। मध्यरात्रि तक २८२ विद्रोही सैनिक गिरफ्तार कर लिये गये तथा वे अजनाले के थाने लाये गये। इनमें से ६६ विद्रोही तहसीली की इमारत के गुम्बद में बन्द कर दिये गये। प्रातः सिख सिपाही इन्हें गोली से उड़ाने के लिये पहुँचे। दरवाज़ा खोलने पर उन्होंने देखा कि सिपाहियों

की ४५ लाशें पड़ी हुई है। कूपर लिखता है, "अजनाले में हालवेल के ब्लैक होल का हत्याकण्ड दोहराया गया।" ये लाशें एक कुएँ में डाल दी गईं। उसपर मिट्टी का एक टीला बनाया गया। कूपर पुनः लिखता है, "एक कुआं कानपुर में है लेकिन एक अजनाले में भी है।"

पंजाब का विद्रोह अत्यन्त कठोरता से दबा दिया गया। वास्तव में पंजाब ने ही हिंदुस्तान के अंग्रेज़ी साम्राज्य की रक्षा की। लारेन्स और माण्टगोमरी ने पंजाब जैसे युद्धप्रिय लोगों के प्रान्त को अंग्रेज़ों के लिये सुरक्षित बनाये रक्खा। पंजाब से अगर अंग्रेज़ी सत्ता उठ जाती और यह क्रांतिकारियों का केन्द्र बन जाता तो फिर इस देश में अंग्रेज़ी सरकार का बना रहना अत्यन्त कठिन हो जाता। पर इस प्रांत में क्रांति की असफलता के कारण पंजाब दिल्ली पर होनेवाले अंग्रेज़ी आक्रमण का केन्द्र बन गया।

अंग्रेजों द्वारा प्रत्याक्रमण

ब्रिगेडियर नील को गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने उत्तर-पूर्वी भाग के विद्रोह को दबाने के लिए एक बड़ी सेना के साथ कलकत्ते से रवाना किया। मार्ग में वह अत्यन्त कठोरता से लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार करता हुआ आगे बढ़ने लगा। काशी नगरी को विद्रोह करने के अक्षम्य अपराध को उसने अत्यन्त कठोरता से दंड दिया। छोटी आयु के बच्चों को

भी फाँसी लटकाने में भी वह ज़रा भी नहीं हिचकिचाया। सैकड़ों लोग मौत के घाट उतारे गए। विद्रोहियों को शरण देने के अपराध में अनेक गांव जला डाले गए। प्रयाग पहुंच-कर यहां भी अत्यन्त निर्दयता से उसने विद्रोह का दमन किया। सैकड़ों निरपराध लोग भी फाँसी पर चढ़ा दिए गए। गांव के गाँव जलाकर राख कर दिए गए। उसने प्रयाग के लोगों पर अनेक अत्याचार कर अपनी प्रतिहिंसा की अग्नि को शान्त करने में अनेक दिन बिता दिए। परिणामस्वरूप वह जनरल व्हीलर की सहायता करने के लिए समय पर न पहुँच सका।

आरम्भ में जब नील के पास यह समाचार पहुँचा कि कानपुर का पतन हो गया है तो उसे इस बात का विश्वास ही नहीं हुआ। पर कुछ दिनों बाद उसने कानपुर की स्थिति की गंभीरता को अनुभव किया। अतः उसने कानपुर के अंग्रेज़ों की सहायता के लिए मेजर रेनाड को ४०० गोरे सिपाहियों, ३०० सिख सिपाहियों, १०० घुड़सवारों और ५ तोपों के साथ रवाना किया। साथ ही कैप्टन स्पार्जिन के नेतृत्व में गंगा द्वारा स्टीमर में अंग्रेज़ सिपाहियों का एक दल भेजा। इन दोनों को यह आज्ञा दी गई थी कि वे शीघ्र से शीघ्र कानपुर पहुँचकर घिरे हुए अंग्रेज़ों को मुक्त करें।

इसी समय प्रयाग में जनरल हेवलाक आ पहुँचा। आते ही उसने सेना की कमान संभाली। यह अत्यन्त चतुर, दूरदर्शी और अनुभवी सेनानायक था। ज्योंही उसे पता चला कि जनरल व्हीलर ने कानपुर में आत्मसमर्पण कर दिया है, त्योंही वह रेनाड की सैनिक टुकड़ी की सुरक्षा के लिए चिन्तित

हो उठा। उसने सोचा कि कानपुर की सभी क्रान्तिकारी सेना खाली हो चुकी है। अगर क्रान्तिकारियों की बड़ी सेना के सामने रेनाड की टुकड़ी पड़ जायगी तो इस टुकड़ी का नाश निश्चित है। अतः उसने तुरन्त रेनाड के पास आज्ञा भेजी कि वह जहाँ है वहीं रुक जाय। किसी भी दशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न न करे। साथ ही वह स्वतः १४०० अंग्रेज़ सिपाहियों, ६०० हिन्दुस्तानी सिपाहियों तथा ८ तोपों के साथ प्रयाग से रवाना हुआ तथा फतेहपुर के पूर्व ही रेनाड की सेना से जा मिला।

इधर नानासाहब और उनके साथी ब्रह्मावर्त में विजयोत्सव मना रहे थे। वहीं उन्हें समाचार मिला कि अंग्रेज़ी सेना प्रयाग की ओर से कानपुर की ओर बढ़ रही है। उसी समय सारे उत्सव समाप्त कर दिये गए और नानासाहब युद्ध की तैयारी करने के लिए कानपुर पहुँचे। तात्या टोपे पर युद्ध की व्यवस्था करने का भार नाना की ओर से सौंपा गया। नाना ने अपने साथियों से परामर्श किया तथा ज्वालाप्रसाद को तीन हज़ार सिपाही तथा गोलन्दाज, ५०० घुड़सवार तथा १२ तोपों के साथ अंग्रेज़ों का मुकाबला करने के लिए फतहपुर की ओर रवाना किया गया। इनके साथ टीकासिंह, बाबाभट, प्रयाग की क्रान्ति के नेता लियाकतअली भी थे। ६ जुलाई को यह सेना बड़े उत्साह से रवाना हुई।

जब कानपुर में यह समाचार आया कि अंग्रेज़ी सेना बड़ी तेज़ी से कानपुर की ओर बढ़ रही है तो नगर के लोग घबड़ा उठे। बहुत-से लोग गाँवों की ओर भागने लगे। भगदड़-सी

मच गई। लोगों की घबड़ाहट दूर करने के लिए नाना के नाम से एक घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। इसमें कहा गया था कि अंग्रेज़ी सेना को मार भगाने के लिए एक बड़ी सेना रवाना की गई है। लोगों को ज़रा भी परेशान न होना चाहिए।

फतेहपुर का युद्ध—

ज्वालाप्रसाद ने ज्योंही अंग्रेज़ों की विशाल सेना देखी त्योंही वह चौंक पड़ा। उसे तो यह समाचार मिला था कि रेनाड की एक छोटी-सी टुकड़ी ही आगे बढ़ रही है। इस टुकड़ी को सरलतापूर्वक नष्ट कर देने की पूर्ण आशा से वह आगे बढ़ रहा था। सेना के लिए उपयुक्त स्थान चुनने और मोरचे बनाने की उसने आवश्यकता न समझी। दोनों सेनाएं एक-दूसरे के सामने आईं और युद्ध आरम्भ हुआ। यह तोपों और बन्दूकों का युद्ध था। दोनों सेनाएं दूर से एक-दूसरे पर तोपों के गोले बरसाती रहीं और बन्दूकों से गोलियाँ दागती रहीं। अंग्रेज़ों की तोपें और बन्दूकें लम्बी मार की थीं। क्रान्तिकारियों की तोपें और बन्दूकें उतनी दूर तक गोले और गोलियाँ नहीं फेंक सकती थीं। गोलाबारी में टिकना कठिन समझकर ज्वालाप्रसाद ने अपने घुड़सवारों को आक्रमण करने की आज्ञा दी। हेवलाक ने भी अपने घुड़सवार आगे बढ़ाये। घुड़सवारों के अफसर पालिशर को क्रान्तिकारी घुड़सवारों ने घेर लिया। पर अंग्रेज़ी सेना के रिसालदार नजीबखाँ ने अपने प्राण देकर उसको घेरे से बाहर निकाला। क्रान्तिकारी सेना

बड़ी वीरता से लड़ी। पर अंग्रेजों की लम्बी गोलाबारी के सामने वह न टिक सकी। अन्त में ज्वालाप्रसाद की सेना भाग खड़ी हुई। अंग्रेज़ों की विजय हुई। ज्वालाप्रसाद को अपनी ११ तोपों से हाथ धोना पड़ा। हेवलाक को साथ के कुछ हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर शक हो गया। उसने युद्ध के समाप्त होते ही उनके हथियार रखवा लिये। फतेहपुर पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

औंग का युद्ध—

फतेहपुर की हार के समाचार से कानपुर के क्रान्तिकारी क्षेत्र में निराशा छा गई। नानासाहब ने अपने भाई बाला-साहब के अधिनायकत्व में अंग्रेज़ों के विरुद्ध एक सेना भेजी। फतेहपुर की पराजय से शिक्षा लेकर, बालासाहब ने औंग नामक गाँव के निकट एक ऐसे स्थान पर अपनी सेना का पड़ाव डाला जो युद्ध की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त था। पड़ाव के सामने एक खाई थी। इस खाई पर दो तोपें लगा दी गईं। दोनों ओर बगीचों की ऊँची दीवालें थीं जो सेना की दोनों बाज़ुओं की रक्षा करती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना अत्यन्त बुद्धिमत्ता का परिचय था।

१५ जुलाई को बालासाहब की सेना पर अंग्रेज़ी सेना के घुड़सवारों ने आक्रमण किया। उन्होंने भी अंग्रेज़ी सेना पर गोले बरसाये। साथ ही आसपास के बगीचों में छिपे हुए क्रान्तिकारी सिपाहियों ने अंग्रेज़ी सेना पर गोलियाँ चलाना आरम्भ किया। इस युद्ध में मेजर रेनाड मार डाला गया।

क्रान्तिकारी घुड़सवारों ने सहसा अंग्रेज़ी सेना के पिछले भाग पर हमला कर दिया। उनका उद्देश्य अंग्रेज़ों की रसद की गाड़ियों को लूटना था। पर गोरे सिपाहियों ने बन्दूकें दागकर उनके प्रयत्न को असफल कर दिया। बहुत देर तक घमासान युद्ध होता रहा। अंग्रेज़ी सेना ने क्रान्तिकारी सेना पर संगीनों से आक्रमण कर दिया। पहले तो सिपाहियों ने इस आक्रमण का बड़ी वीरता से सामना किया पर बाद में पाण्डु नदी के मोरचे तक पीछे हटना पड़ा।

इस स्थान पर जो युद्ध हुआ उसे पाण्डु नदी के पुल का युद्ध कहना उचित होगा। बालासाहब इस पुल की रक्षा करना चाहते थे। पर अंग्रेज़ी सेना द्वारा उसपर अधिकार होने की सम्भावना होने पर पुल को नष्ट करने की भी उन्होंने तैयारी कर ली थी। हेवलाक भी इस पुल के महत्त्व को जानता था। इस समय तक वर्षा हो चुकी थी। नदी में गहरा पानी भरा हुआ था। पुल के उड़ जाने पर हेवलाक की सेना नदी पार नहीं कर सकती थी। पुल बनाने के साधन उसके पास न थे। आसपास के लोग अंग्रेज़ों के विरुद्ध थे। अतएव नावें प्राप्त करने की भी कोई संभावना न थी। इसीलिए हेवलाक अपनी पूरी शक्ति से पुल की रक्षा करना चाहता था। उसने पुल के दोनों ओर तोपें लगा दीं। नदी के किनारे बन्दूक-धारियों को नियुक्त किया ताकि पुल तोड़ने का प्रयत्न करने वालों पर गोलियां बरसाकर उन्हें भगाया जा सके।

क्रान्तिकारी गोलन्दाज़ बराबर तोपें दागते जा रहे थे। पर इसी समय उनकी तोपें बेकार हो गईं। तोपों के बिना

पुल की रक्षा करना सम्भव न था, अतः बालासाहब ने पुल को नष्ट करने की आज्ञा दी। इसी समय एक गोली बालासाहब को लगी और वे घायल हो गए। पुल को उड़ाने के लिए जो सुरंगें लगाई गई थीं उनपर बत्ती लगाई गई। एक ज़ोरदार धड़ाका हुआ। पर पुल की केवल दीवाल ही उड़ी। बाकी का पुल सुरक्षित रह गया। इस समय पुल का नष्ट न होना क्रान्तिकारियों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। अगर पुल उड़ जाता तो अंग्रेज़ी सेना शीघ्रता से आगे न बढ़ पाती।

पाण्डु नदी के युद्ध की पराजय का समाचार मिलते ही उन्होंने अपने साथियों से सलाह की। कुछ लोगों की राय थी कि कानपुर के बजाय ब्रह्मावर्त में जाकर वहीं अंग्रेज़ो सेना का सामना किया जाय। कुछ लोगों की राय थी कि सारी सेना को लेकर फतेहगढ़ जाकर वहाँ के क्रान्तिकारियों से मिलकर क्रान्ति-युद्ध जारी रखना उचित होगा। पर ये दोनों सुझाव पसन्द नहीं किये गए। यही निश्चित हुआ कि कानपुर में ही अंग्रेज़ी सेना का मुकाबला किया जाए।

अहिखाँ का युद्ध—

अहिखाँ का युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण था। कानपुर की क्रांति की सफलता या असफलता इसी युद्ध पर निर्भर थी। नानासाहब ने इस युद्ध का सेनापतित्व स्वतः ग्रहण किया। पैदल, घुड़सवारों तथा गोलन्दाज़ों की ५ हज़ार सेना लेकर नानासाहब अंग्रेज़ी सेना का सामना करने के लिये आगे बढ़े।

कानपुर से चार मील की दूरी पर अहिरवाँ नामक गाँव के निकट मोरचे बनाये गये। जिस स्थान पर ग्रैण्ड ट्रंक रोड तथा छावनी से आनेवाली सड़क मिलती है वहाँ से एक मील पीछे, उन्होंने अपनी सेना को रोका। तात्या टोपे, टीकासिंह और ज्वालाप्रसाद ने इन दोनों सड़कों को काटता हुआ एक अर्ध-चंद्राकार व्यूह रचा। दोनों सड़कों को खोदकर खाइयाँ बनाई गईं। व्यूह के दोनों सिरों पर तथा मध्य में बड़ी-बड़ी तोपें लगाई गई। घुड़सवार सेना सबसे पीछे रखी गई। नाना-साहब को आशा थी कि अंग्रेज़ी सेना सड़क पर सीधी बढ़ती रहेगी। व्यूह इस प्रकार रचा गया था कि इस बढ़ती हुई सेना को सहज ही घेरा जा सकता था। पर हेवलाक भी कम चतुर सेनापति न था। इस व्यूह को देखकर वह चकित हो गया। युद्धशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त दूरदर्शिता तथा कुशलता से रचे गये इस व्यूह को देखकर उसका यह भ्रम दूर हो गया कि क्रांतिकारियों में कुशल सेनानियों का अभाव है। इस व्यूह को रचने का प्रमुख श्रेय तात्या टोपे को ही था। सर जान के ने इस व्यूह की बड़ी प्रशंसा की है : "राष्ट्रीय सेना का व्यूह इस चतुरता से बनाया गया था कि अंग्रेज़ी सेनानी को, जिसने आजीवन युद्धशास्त्र का अध्ययन किया था, अपनी पूरी बुद्धि-मत्ता और शक्ति लगाना पड़ी!" हेवलाक को निश्चय हो गया कि नानासाहब से भिड़ना सहज काम नहीं है।

पानी बरसने के कारण जुते हुए खेतों में कीचड़ हो गई थी। इस कीचड़ से भारी तोपों का खींचना बैलों के लिये कठिन काम हो गया था। नानासाहब की सेना ने इस बढ़ती

हुई सेना पर गोले बरसाना आरम्भ किया। अंग्रेज़ी तोपखाने इस गोलाबारी का जवाब न दे सका। हेवेलाक की सेना का विध्वंस होने लगा। वह अत्यन्त संकट में पड़ गई। अगर नानासाहब के तोपखाने की यह गोलाबारी इसी तरह कुछ समय और जारी रहती तो निःसन्देह अंग्रेज़ी सेना का विध्वंस हो जाता। हेवलाक के लिये कोई निर्णायक कदम उठाना आवश्यक हो गया। हेवलाक ने अपनी सेना की एक टुकड़ी को आज्ञा दी कि वह आग उगलनेवाली तोपों पर संगीनों से सीधा आक्रमण कर उन तोपों पर अधिकार कर ले। यह टुकड़ी बड़ी वीरता से आगे बढ़ी। अनेक गोरे सैनिकों के बलि चढ़ जाने के बाद भी वह केवल दो तोपों पर अधिकार कर सकी। क्रांतिकारी सेना थोड़ा पीछे हटी तथा अंग्रेज़ी सेना तेज़ी से आगे बढ़ी।

सहसा हेवलाक ने अनुभव किया कि उसकी सेना व्यूह में चारों ओर से घिर गई है। उसने आत्मरक्षा के लिये कोई बलवान कदम उठाने की आवश्यकता का अनुभव किया। उसने क्रांतिकारी सेना के बाईं ओर ज़ोरदार आक्रमण कर दिया। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षण था। अगर नाना के घुड़सवार इस आक्रमण का दृढ़तापूर्वक सामना थोड़ी देर भी करते तो अंग्रेज़ी सेना के पैर उखड़ जाते। पर इस आन-बान के समय क्रांतिकारी सेना ने साहस और वीरता के अभाव तथा अनुशासनहीनता का जो परिचय दिया उसके कारण जीती बाज़ी हाथ से जाती रही। इस आक्रमण में हेवलाक ने अपनी शक्ति लगा दी थी। इस आक्रमण का दृढ़तापूर्वक सामना करने के

बजाय क्रांतिकारी सेना भाग खड़ी हुई । नानासाहब का व्यूह भंग हो गया । मैदान अंग्रेज़ों के हाथ रहा ।

पराजित होकर नानासाहब ब्रह्मावर्त की ओर भागे । वे अब निराश हो चुके थे । अब उनमें अंग्रेज़ी सेना का सामना करने की शक्ति नहीं रह गई थी । ब्रह्मावर्त में रहना भी अब उनके लिये सुरक्षित न था । वे अपने कुटुम्ब की स्त्रियों और पुरुषों के साथ रात में ही गंगा पार कर अवध के राज्य में पहुंचे । यहाँ वे फतेहपुर चौरासी के तालुकेदार चौधरी भूपाल-सिंह की गढ़ी में रहने लगे । इस समय उनके साथ तात्या टोपे, बालासाहब राव, नानासाहब की तथा उनके दो भाइयों की पत्नियाँ तथा उनकी दो मातायें थीं । नानासाहब की बहिन कुसुमावती उनके साथ थी । अवध की बेगम हज़रतमहल को जब पता लगा कि नानासाहब अवध में आ गये हैं तो उन्होंने इनका स्वागत करने राजा जयमल को भेजा । वे नानासाहब को आदर के साथ लखनऊ ले गये । लखनऊ में इनके सम्मान में ११ तोपों की सलामी दी गई । वे शीघ्र ही फतेहपुर चौरासी लौट आये । इसी स्थान को इन्होंने अपने भावी कार्यों का केन्द्र बनाया ।

बीबीघर का हत्याकाण्ड—

अहिखाँ के युद्ध में नानासाहब की खबर कानपुर में बिजली की तरह फैल गई । सभी लोग भयभीत और आतंकित हो उठे । शासन-व्यवस्था समाप्त हो गई । अराजकता का पूर्ण साम्राज्य स्थापित हुआ ।

कानपुर-प्रयाग मार्ग पर अंग्रेज़ों ने जो नृशंस अत्याचार किये थे वे रोंगटे खड़े करनेवाले थे। कानपुर की ओर बढ़नेवाले अंग्रेज़ सैनिकों ने आसपास बसे हुए गाँवों को जला डाला। आग से बचने के लिये जो गाँव से बाहर निकलते-फिरते चाहे पुरुष हों, स्त्रियाँ हों अथवा बच्चे हों, वे सब या तो पुनः आग में झोंक दिये जाते या संगीनों से मार डाले जाते। हज़ारों निरपराध पेड़ों पर फाँसी चढ़ा दिये गये। कानपुर में जब अंग्रेज़ सैनिकों द्वारा किये गये इन अत्याचारों के समाचार आये तो लोगों के हृदयों में प्रतिहिंसा की आग जल उठी।

बीबीघर नामक मकान में इस समय कोई २१० अंग्रेज़ स्त्रियाँ और बच्चे बन्द थे। यह छोटा-सा घर एक अंग्रेज़ ने अपनी हिन्दुस्तानी रखैल के लिये बनवाया था। कानपुर की अराजकता तथा अंग्रेज़-विरोधी भावना के कारण कुछ लोगों की क्रूर आँखें इन निरीह स्त्रियों और बच्चों की ओर घूमीं। इनकी हत्या कर उन्होंने अंग्रेज़ जाति से बदला लेने का निश्चय किया। कुछ लोगों ने आकर बीबीघर के पहरेदारों से कहा कि वे उन सब को मार डालें। पर पहरेदारों ने यह पैशाचिक कार्य करने से इन्कार कर दिया। थोड़ी देर बाद बेगम हुसेनी खानून चार कसाइयों को लेकर वहाँ आई। वे कसाई बेगम की आज्ञा से बीबीघर में हाथों में नंगी तलवारें लेकर घुस पड़े और उन्होंने सभी अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों को मार डाला। दूसरे दिन प्रातःकाल उनके मृत देह पास के कुएँ में डाला दिये गये। यहीं पर बाद में अंग्रेज़ों ने इस हत्याकाण्ड का

स्मारक 'मेमोरियल वेल' का निर्माण किया।[1]

इस हत्याकण्ड के लिये अंग्रेज़ लेखकों ने नानासाहब को दोषी माना है। पर इस हत्याकाण्ड के समय नानासाहब, अहिखाँ के युद्ध में पराजित होकर, ब्रह्मावर्त की राह पर थे। इसके पूर्व वे रणक्षेत्र में थे। ऐसी स्थिति में नानासाहब इस हत्याकाण्ड के लिये कैसे दोषी माने जा सकते हैं। मुहम्मदअली, ज्वालाप्रसाद आदि क्रांतिकारियों ने अपने बयानों में स्पष्टरूप से कहा है कि नाना का इस हत्याकाण्ड से कोई सम्बन्ध न था। सर जान कैम्पवेल ने अपने संस्मरण में लिखा है : "अगर नानासाहब पकड़े जाते तो उनपर हत्याकाण्डों का उत्तरदायित्व सिद्ध किया जा सकता था, इसमें मुझे सन्देह है।"

पैशाचिक बदला—

हेवलाक ने शीघ्र ही आगे बढ़कर कानपुर पर अधिकार कर लिया। उनका विरोध करनेवाला वहाँ कोई नहीं रह गया था। बीबीघर के हत्याकाण्ड के समाचार से अंग्रेज़ क्रोध से पागल हो उठे। जो कोई अभागा हिन्दुस्तानी उनके सामने पड़ता वह उनकी प्रतिहिंसा का शिकार बन जाता। इस समय अंग्रेज़ सैनिकों ने बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर कानपुर के निर्दोष लोगों पर जो अत्याचार किये वे पैशाचिकता में कम न थे। इस समय प्रत्येक हिन्दुस्तानी 'नाना का साथी' था। हज़ारों निरपराध या तो गोली से उड़ा दिये गये या फाँसी

---

१. १८५७ की क्रांति की शताब्दी के अवसर पर इस स्थान पर स्वातंत्र्यवीर तात्या टोपे की मूर्ति खड़ी की गई है।

लटका दिये गये। गोरे सैनिकों ने घरों में घुसकर लोगों को लूटा।

जब नील कानपुर आया तो उसने प्रतिहिंसा के कार्यों की गति और भी तेज़ की। जो कोई हिन्दुस्तानी गोरे सैनिकों को मिलता वह पकड़कर बीबीघर पहुँचाया जाता। उसे अंग्रेज़ महिलाओं और बच्चों से सने फर्श को साफ़ करने की आज्ञा दी जाती। कुछ लोगों को जीभ से चाटकर फर्श साफ करने की आज्ञा दी गई। जो इस आज्ञा को मानने से इन्कार करता उसपर कोड़े बरसने लगते। अन्त में उसे इस पैशाचिक आज्ञा का पालन करना पड़ता। इसके बाद भी वह मौत के घाट उतार दिया जाता। फाँसी लटकाने के पूर्व हिन्दुओं के मुंह में गोमांस तथा मुसलमानों के मुंह में सुअर का माँस डालकर उनकी धार्मिक भावना पर आघात किया जाता। तात्पर्य यह कि मृत्यु जितनी भयंकर तथा कष्टप्रद बनायी जा सकती थी उतनी बनाने में अंग्रेज़ सैनिक एक-दूसरे से होड़ लगाते थे।

मेजर स्टीवेन्सन एक सेना के साथ ब्रह्मावर्त पहुँचा और उसने वहाँ अंग्रेज़ी शासन स्थापित किया। वहाँ के लोगों विशेषकर गंगापुत्रों और अंग्रेज़ी सेना ने नानासाहब का महल लूट लिया। यहाँ स्टीवेन्सन को किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। कुछ दिनों तक तो ब्रह्मावर्त में शांति रही। पर कुछ ही दिनों बाद नील को पता चला कि कुछ विद्रोही सेना के कुछ सिपाही ब्रह्मावर्त में एकत्रित होकर अंग्रेज़ों के सहायकों के मकान लूट रहे हैं। बाजीराव के पूर्व दीवान तथा अब स्वामी-द्रोह कर अंग्रेज़ों के भक्त बने हुए नारायणराव सूबेदार ने नील से मिलकर कहा कि विद्रोहियों

ने ब्रह्मावर्त की उनकी कोठी को लूट लिया है तथा उनकी दो लड़कियों को पकड़ लिया है। पर इसमें सत्यता केवल इतनी थी कि वह स्वत: ब्रह्मावर्त जाने से डरता था। उसकी कोठी लूटी जाने अथवा लड़कियों के पकड़े जाने की बात मनगढ़न्त थी। नील ने नारायणराव की सहायता करने के लिये स्टीमर द्वारा कुछ सैनिक उसके साथ ब्रह्मावर्त भेजे। उसी स्टीमर द्वारा वह अपने कुटुम्बियों तथा अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को कानपुर ले आया। यह स्टीमर कैप्टन गार्डन के अधिनायकत्व में तीन बार ब्रह्मावर्त गया तथा नगर के किनारे के भागों पर गोले बरसाये।

ब्रह्मावर्त का युद्ध—

कानपुर की सुरक्षा का भार ब्रिगेडियर नील को सौंपकर हेवलाक लखनऊ की रेजीडेन्सी में घिरे हुए अंग्रेज़ों को मुक्त करने के लिए कानपुर से रवाना हुआ। पर मार्ग में क्रांतिकारियों ने उनका इतनी दृढ़ता से सामना किया कि वह आगे न बढ़ सका। दो बार उसे वापस आना पड़ा।

इसी समय सागर की ४२ नम्बर की सेना विद्रोह कर कानपुर के लिए रवाना हुई। काल्पी के निकट से यमुना पार कर यह अकबरपुर पहुंची। यह सेना बड़ी वीर और साहसी थी। पर इसमें कोई योग्य नेता न था। इस सेना ने फतेहपुर चौरासी में नानासाहब के पास दूत भेजकर यह प्रार्थना की कि वे उनका नेतृत्व ग्रहण करें। नाना ने तात्या टोपे को इनके पास भेजा। तात्या ने आकर इन वीर सैनिकों की कमान

संभाली। तात्या के जीवन का यह प्रथम ही अवसर था जब तात्या को किसी सेना का स्वतंत्र रूप से अधिनायकत्व प्राप्त हुआ था। इस सेना के साथ तात्या आगे बढ़े तथा उन्होंने संचेड़ी और शिवराजपुर पर अधिकार कर लिया। वहाँ के थानेदार मार डाले गये। फिर यह सेना ब्रह्मावर्त आई। यहाँ कई क्रांतिकारी पुनः वापस आकर तात्या से मिले। तात्या ने पुनः एक सुदृढ़ सेना तैयार कर ली।

जब नील को ब्रह्मावर्त की सेना का समाचार मिला तो वह परेशान हो उठा। उसने ११ अगस्त को हेवलाक के नाम पत्र भेजा कि "ब्रह्मावर्त में ५ तोपों के साथ चार हज़ार सेना एकत्रित हो चुकी है। मैं इसका सामना नहीं कर सकता। अगर मुझे शीघ्र ही सहायता न मिली तो यह सेना कानपुर में घुस आयेगी तथा हमारे यातायात के मार्ग बन्द हो जायँगे।" यह समाचार सुनकर हेवलाक लखनऊ के मार्ग से पुनः वापस लौटा। १३ अगस्त को उसने नील के साथ एक सेना तात्या का सामना करने ब्रह्मावर्त रवाना की।

पहिली मुठ्भेड़ कानपुर के पास ही हुई। तात्या की सेना पीछे हटकर ब्रह्मावर्त के मोरचे पर डट गई। १६ अगस्त को हेवलाक स्वतः एक हज़ार सैनिकों, २५० सिखों तथा तोपों के साथ ब्रह्मावर्त आ पहुँचा। उसने आते ही तात्या की मोरचे-बन्दी पर गोले बरसाना आरम्भ किया। तात्या की तोपें भी जवाब में गरज उठीं। क्रांतिकारी सेना की कुशल गोलाबारी देखकर हेवलाक भी चौंक पड़ा। उसने कहा, "(प्रथम सिख-युद्ध के) फीरोज़पुर रणसंग्राम के बाद आज मैं प्रथम बार

प्रशंसनीय गोलाबारी देख रहा हूँ।" तात्या की तोपें इस भयंकरता से अंग्रेज़ी सेना पर गोले फेंक रही थीं कि उसके सामने अंग्रेज़ी सेना का टिकना कठिन हो गया। उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे आगे बढ़कर तात्या की तोपों पर अधिकार कर लें। सैकड़ों बलिदान चढ़ाने के बाद अंग्रेज़ी सैनिक दो तोपों पर अधिकार करने में सफल हुए। तात्या को पीछे हटना पड़ा। अब उनकी सेना नगर में घुस आई। अंग्रेज़ सैनिक भी पीछा कर रहे थे। नगर में एक-एक घर के लिए युद्ध हुआ। इस लड़ाई में अंग्रेज़ी सेना के बहुत सैनिक मारे गए। अन्त में तात्या की सेना को ब्रह्मावर्त से भागना पड़ी। इस युद्ध में क्रांतिसेना जिस वीरता से लड़ी उसकी हेवलाक तक ने प्रशंसा की है।

कानपुर और ब्रह्मावर्त पर अंग्रेज़ों की सत्ता स्थापित हुई। पर यह सत्ता नगरों तक ही सीमित थी। इनकी सीमाओं के बाहर अब भी क्रान्तिकारियों का ही प्रभाव था। आसपास के गाँवों में अनेक प्रयत्न करने पर भी अंग्रेज़ गाँवों में अपनी सत्ता स्थापित करने में बहुत काल तक असमर्थ रहे।

तात्या का उदय

पराजय के कारण—

कानपुर की पराजय और नानासाहब के ब्रह्मावर्त से अवध को पलायन के समय तक उत्तरभारत की क्रान्ति का

एक अध्याय समाप्त हुआ। क्रान्ति के इस दौर में देश को परतन्त्र रखनेवाली शक्तियों की विजय हुई। देश को फिरंगियों की सत्ता से मुक्त करने में प्रयत्नशील शक्तियों की पराजय हुई।

इस क्रान्ति की सबसे निर्बलता यह थी कि भिन्न-भिन्न स्थानों में अंग्रेज़ी सरकार को उलट देनेवाली शक्तियों के के कार्य समान उद्देश्य से प्रेरित होने पर भी व्यवहार में एक-दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र और असम्बद्ध थे। नानासाहब ने देश के विभिन्न भागों के क्रान्तिकारियों से विचार-विमर्श कर एक योजना तथा एक कार्यक्रम निश्चित किया था। उनके उद्देश्यों तथा कार्य-प्रणालियों में कोई विशेष अंतर न था। पर प्रत्येक स्थान के क्रान्ति-कार्यों में एकसूत्रता तथा परस्पर सहयोग की कमी थी। प्रत्येक स्थान के कार्य अगर एक विशाल योजना के अंगों की तरह परस्पर सहायता और सहयोग से सम्पादित होते तो अंग्रेज़ों के लिए, इस विशाल क्रान्ति पर, इतनी सरलता से विजय प्राप्त कर लेना सम्भव न था। कानपुर और लखनऊ की रक्षा की दृष्टि से कानपुर यातायात का केन्द्र होने तथा उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान था। कानपुर पर विजय प्राप्त किये बिना अंग्रेज़ी सेना के लिये लखनऊ की ओर बढ़ना असम्भव-सा था। अगर लखनऊ की रेज़ीडेन्सी का घेरा जारी रखने का कार्य कुछ सैनिकों को सौंपकर, बाकी सैनिक शक्ति कानपुर आकर नानासाहब की सेना से मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध संयुक्त मोरचा स्थापित करती तब इस विशाल तथा सर्व-

साधनों से सम्पन्न सेना के लिए अंग्रेज़ी सेना को परास्त करना कुछ कठिन काम न था। इस प्रकार कानपुर तथा लखनऊ दोनों स्थानों की रक्षा का युद्ध अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रयाग-कानपुर के बीच ग्रैण्ड ट्रंक रोड पर लड़ा जा सकता था। पर सर्वमान्य नेता के तथा विभिन्न क्रान्ति-केन्द्रों में एक-सूत्रता न होने के कारण अंग्रेज़ी सेना को प्रत्येक स्थान की क्रान्ति से अलग-अलग निपटने के अवसर मिले।

विद्रोही सेना के अफसर स्वतन्त्र रूप से काम करने के आदी न थे। वे तो अंग्रेज़ अफसरों की आज्ञा पालन ही करना जानते थे। युद्ध की योजना, दांवपेंच संगठन का काम तो अफसरों का था। इन बातों का न तो कोई ज्ञान हो था और न अनुभव ही। विद्रोह करने के बाद वे स्वतन्त्र रूप से रणक्षेत्र में उतरे। पर विद्रोह के जोश में प्रत्येक सैनिक अपने को सेना-सम्बन्धी बातों का विज्ञ मानता था। वह नानासाहब, तात्या टोपे, ज्वालाप्रसाद आदि प्रतिभाशाली नेताओं को सेना-सम्बन्धी प्रश्नों में अनुभवहीन और अज्ञानी समझता था। वह उनकी आज्ञा पूर्णरूप से मानने को तैयार न था। इस अनुशासनहीनता तथा कार्यक्षमता के अभाव के कारण क्रांतिकारी सेना निर्बल और साहसहीन बन गई थी। इसी कारण यह सेना सुसंगठित तथा अनुशासित अंग्रेज़ी सेना का सामना करने में असफल रही।

निःसन्देह कानपुर की क्रान्तिकारी सेना का अधिनायकत्व तात्या जैसे कुशल, चतुर और दूरदर्शी व्यक्तियों को सौंपा गया था। सैनिक संगठन की प्रतिभा होते हुए भी वे पूर्णरूप से स्वतंत्र

न थे। आवश्यक साधनों पर उनका नियन्त्रण न था। साथ ही तात्या को संगठन करने का अवसर ही न मिल सका। कानपुर में क्रान्ति आरम्भ होते ही, विद्रोही सिपाहियों, आसपास के ज़मींदारों के अनुयायियों एवं नगर तथा गांवों के उत्साह पर अनुभवहीन नौजवानों की संगठित और अनुशासित सेना तैयार करने के लिए तात्या को केवल तीन सप्ताह का समय मिला। इतने बड़े काम के लिए यह समय अत्यन्त अल्प था। परिणाम यह हुआ कि सेना का सुदृढ़ संगठन बनने के पूर्व ही उसे रणक्षेत्र में उतरना पड़ा।

तात्या का व्यक्तित्व—

कानपुर की पराजय तक तात्या नानासाहब के सेवकमात्र थे। नाना की आज्ञा मानना उनका धर्म था। क्रान्तिकाल के प्रारंभिक काल में उन्होंने जो कुछ किया वह नानासाहब के नाम से किया। इस समय कानपुर की क्रांति के सम्बन्ध में जितने महत्त्वपूर्ण काम हुए उनपर तात्या की योग्यता की छाप स्पष्ट रूप से अंकित दिखाई देती थी। प्रत्यक्ष रूप से भले ही उनका नाम लोगों के सामने न आया हो, पर उनकी कार्यक्षमता की झलक सर्वत्र दिखाई देती थी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार के और मालिसन को इस महान् व्यक्तित्व का आभास मिला था। पर वे उन्हें निश्चित रूप से पहचाने में असमर्थ रहे। वे लिखते हैं : "बिठूर के महल में उर्वरा बुद्धि वालों, दृढ़निश्चयी तथा ठोस कार्य करनेवालों की कमी न थी। अक्सर हम लोग उस पराक्रमी व्यक्ति के

सम्बन्ध में बहुत कम जान पाते हैं जो हमारे भारतीय शत्रुओं के कैम्प में बैठकर घटनाओं का निर्माण किया करता है। यह आवश्यक नहीं कि यह प्रमुख पात्र सदा उच्चवंशीय ही हो और न यह आवश्यक है कि उसके ही नाम से वे कार्य किये जाएँ जो इतिहास का निर्माण करते हैं।"[1] कानपुर की पराजय के बाद क्रान्ति के आकाश में एक ऐसे प्रभावशाली तथा पराक्रमी नेता का उदय हुआ जिसके साहस, वीरता तथा रण-कुशलता के गीतों से हिन्दुस्तान का वातावरण दो वर्षों तक निनादित होता रहा। यह पराक्रमी वीर घटनाओं की बागडोर स्वतन्त्र रूप से अपने हाथों में लेकर क्रान्ति के रणांगण में अवतरित हुआ। यह वीर तात्या टोपे ही था।

काल्पी का स्वतंत्र राज्य

कानपुर की पराजय क्रान्ति की दृष्टि से बड़ी घातक सिद्ध हुई। क्रान्ति के इस महत्त्वपूर्ण केन्द्र का सारा संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। क्रान्तिकारी सेना तितर-बितर हो गई। कुछ सिपाही कानपुर से भागकर लखनऊ पहुँचे और वहाँ क्रान्तिकारी सैनिकों से मिलकर रेज़ीडेन्सी के घेरे के युद्ध में भाग लेने लगे। कई सिपाही जो माल हाथ लगा था उसे लेकर अपने-अपने घरों की ओर रवाना हुए। कुछ सैनिक निराश्रित होकर

---

1. History of Indian Mutiny, vol. II, page 236.

इधर-उधर मारे-मारे घूमने लगे। नानासाहब और तात्या टोपे की सारी योजनाएँ मिट्टी में मिल गईं। युद्ध के आवश्यक साधन भी नष्ट हो चुके थे। तोपें छिन चुकी थीं। शस्त्र-भण्डार भी उनके हाथों से निकल चुका था। इस समय वास्तव में कानपुर के क्रान्तिकारी नेता अपने को असहाय और निर्बल अनुभव करने लगे। उनके सामने निराशा का गहन अंधकार व्याप्त था।

ऐसे आड़े समय में भी तात्या ने हार मानने से इन्कार कर दिया। परिस्थितियों की कठिनता ने उनकी कल्पनाशक्ति और नेतृत्व के सुप्त गुणों को जागृत किया। इस निराशा तथा अंधकारमय परिस्थितियों में क्रांति के जिस आशापूर्ण उज्ज्वल भविष्य का तात्या ने निर्माण किया वह उनकी असाधारण प्रतिभा का द्योतक है।

नानासाहब ने फतेहपुर चौरासी में अपने साथियों को एकत्रित किया तथा भविष्य के कार्यक्रम पर आपस में विचार-विमर्श किया। इसमें अवध के कुछ क्रान्तिकारी नेता भी उपस्थित थे। सभी लोग यह अनुभव करते थे कि कानपुर के पतन के कारण लखनऊ का संकट बढ़ गया है। अब अंग्रेज़ी सेना के लखनऊ पर आक्रमण करने के मार्ग में बाधा नहीं रह गई थी। जब तक अंग्रेज़ों को कानपुर के मोरचे पर लड़ना पड़ता रहा था, तब तक लखनऊ सुरक्षित था। पर अब कानपुर के क्रान्ति-केन्द्र का पतन हो चुका था। लखनऊ पर शीघ्रता से आक्रमण करने की अंग्रेज़ों ने तैयारी आरम्भ कर दी थी। इस विकट परिस्थिति से पार लगने की योजना कोई

उपस्थित न कर सका। सबकी आँखें तात्या की ओर लगी हुई थीं। सभी तात्या के मौलिक सूझ-बूझ के कायल थे। तात्या की प्रखर बुद्धि इस निराशाजनक स्थिति से मार्ग निकालने में व्यस्त थी। अंत में तात्या ने बुद्धिमत्ता और साहस-पूर्ण एक योजना उपस्थित की। कानपुर के मोरचे को पुनः जीवित करने का कठिन काम उन्होंने अपने ज़िम्मे लिया तथा नानासाहब, ज्वालाप्रसाद आदि क्रांति के नेताओं को लखनऊ-विजय के लिए बढ़नेवाली अंग्रेज़ी सेना को मार्ग में ही रोकने का काम सौंपा।

तात्या टोपे अपनी योजना को पूर्ण करने के उद्देश्य से बुन्देलखण्ड की ओर बढ़े। वे एक ऐसे स्थान की खोज में थे जहाँ बैठकर वे शक्ति का संगठन कर सकें। उनकी आँखें काल्पी पर केन्द्रित हुईं। निःसंदेह यह स्थान उनकी योजनाओं की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त था।

काल्पी यमुना के दक्षिण तट पर बसी हुई है। यह नगरी झाँसी से १०२ मील तथा कानपुर से ४६ मील की दूरी पर है। यहाँ का किला अपनी दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध था। यह किला तीन ओर से मज़बूत कोट से घिरा हुआ था। चौथी ओर से गहरी यमुना इसकी रक्षा कर रही थी। मुस्लिम काल में किले के पास ही एक भयंकर युद्ध हुआ था। इस युद्ध में अनेक मुस्लिम सरदार मारे गए थे। वे इसी मैदान में गाड़े गए थे। उनकी गुम्बजदार कबरें यहाँ बनी हुई हैं। इसी कारण यह मैदान चौरासी गुम्बज का मैदान कहलाता था।

प्राचीन काल में काल्पी कागज़ तथा शक्कर के उद्योग के

लिए प्रसिद्ध था। इस नगरी में अनेक सम्पन्न व्यापारी रहते थे। यह उत्तरभारत का एक प्रमुख व्यापारी-केन्द्र था। आरम्भ में काल्पी महाराजा छत्रसाल के राज्य में थी। बाद में जब उन्होंने अपने राज्य को अपने पुत्रों तथा अपने सहायक बाजीराव पेशवा में बाँटा तो काल्पी बाजीराव के हिस्से में आई। सन् १८०६ ई० में जालौन के ज़मींदार और अंग्रेज़ों में जो संधि हुई उसके अनुसार काल्पी अंग्रेज़ों को मिल गई। १८२५ ई० में नाना पंडित ने विद्रोह कर काल्पी पर अपना अधिकार जमा लिया। पर अंग्रेज़ों ने झाँसी के सूबेदार गंगाधर-राव की सहायता से नाना पंडित को परास्त कर उसपर पुनः अपना अधिकार कर लिया। सन् १८५७ में जब झाँसी आदि स्थानों के विद्रोह के समाचार काल्पी पहुँचे तो किले में रहने वाली हिन्दुस्तानी सेना ने भी विद्रोह कर दिया और वहाँ अपनी सत्ता स्थापित की।

तात्या ने काल्पी को अपने भावी कार्यक्रम का केन्द्र बनाया। यहाँ उन्होंने ऐसी शक्ति का संगठन करना आरम्भ किया जो पुनः फिरंगियों की सत्ता को ललकार सके। सबसे पूर्व तात्या ने कानपुर तथा उसके पास के क्रांति-केन्द्रों की पराजय के बाद इधर-उधर घूमनेवाले सैनिकों को एकत्रित किया। प्रयाग, फतेहपुर, काशी आदि स्थानों के विद्रोही सिपाही यहां आकर एकत्रित हुए। तात्या ने आसपास के राजाओं, ज़मींदारों तथा नवाबों को पत्र लिखकर आमंत्रित किया कि वे अपने अनुयायियों के साथ काल्पी आकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने में तात्या की सहायता करें। इस प्रकार थोड़े

समय में ही उन्होंने काल्पी को सुदृढ़ क्रांति-केन्द्र बना लिया। फरुखाबाद तथा बाँदा के नवाब और अनेक ज़मींदार अपनी सेनाएं लेकर काल्पी आ पहुँचे। शीघ्र ही यहां विशाल सेना संगठित हो गई। अनुभवी अफसरों द्वारा इस सेना को प्रतिदिन कवायद कराई जाती थी।

छापेबाज़ी—

इस प्रकार कानपुर की दो दिशाओं में दो नवीन क्रांति-केन्द्र स्थापित हुए—गंगा के पार उत्तर-पूर्व में फतेहपुर चौरासी तथा यमुना पार दक्षिण-पश्चिम में काल्पी। इन दोनों केन्द्रों में छापेमार दलों का संगठन किया गया। वे कानपुर के आस-पास के भागों पर समय-समय पर आक्रमण कर अंग्रेज़ अधिकारियों को परेशान करते रहते थे। फतेहपुर चौरासी के छापेमार दस्ते गंगा पार कर शिवराजपुर, अकबरपुर, बिल्हौर, ब्रह्मावर्त, जाजमऊ आदि स्थानों पर छापे मारते। उसी प्रकार फतेहपुर चौरासी के दस्ते यमुना पार कर सिकंदरा, भोगिनीपुर, घाटमपुर, शिवली आदि स्थानों पर सहसा आक्रमण कर देते। इन हमलों से अंग्रेज़ अधिकारी सदा आतंकित रहते थे। इन हमलों को रोकने के लिए अंग्रेज़ों ने अनेक प्रयत्न किए। साधरण पुलिस के असफल होने पर अनेक स्थानों पर सैनिक नियुक्त किए गए, पर उन्हें भी कोई सफलता न मिली।

क्रांतिकारियों का गुप्तचर-विभाग अत्यन्त संगठित था। अंग्रेज़ी सेना के दस्ते कहाँ हैं, उनमें कितने सैनिक हैं, वे किस ओर बढ़ रहे हैं आदि बातों की पूरी जानकारी क्रांतिकारियों

को मिलती रहती थी। इसी जानकारी के आधार पर ये छापेमार अपने आक्रमण के स्थानों को निश्चित करते। वे गंगा या यमुना पार के किसी स्थान पर एकाएक आक्रमण कर देते। सरकारी कचहरियाँ और थाने नष्ट कर दिए जाते। उनकी इमारतों में आग लगा दी जाती। जिन लोगों ने क्रांति का विरोध किया था उनके घरों को लूट लिया जाता। जो सामना करने का प्रयत्न करते उन्हें तलवार के घाट उतार दिया जाता। जब अंग्रेज़ी सेना से दस्ते आ जाते तो ये आक्रमणकारी पुनः अपने अड्डों पर पहुंच जाते। अंग्रेज़ी सैनिकों से सामने मैदान की लड़ाई लड़ना सदा टालते थे। परिणामस्वरूप गोरे सैनिक इनका कुछ भी न बिगाड़ पाते।

ब्रह्मावर्त—

इस नगरी पर तो अंग्रेज़ों का विशेष कोप था क्योंकि यह नाना और तात्या की नगरी थी। अंग्रेज़ी सत्ता स्थापित करने के लिए यहाँ एक थाना बनाया गया। प्रसिद्ध नारायण नामक एक निष्ठुर व्यक्ति यहां का थानेदार बनाया गया। यहाँ के लोगों की धार्मिक और सामाजिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए इस थाने के सभी सिपाही भंगी जाति के बनाए गए। थानेदार ने अपनी राजभक्ति सिद्ध करने के लिए २ अक्टूबर, सन् १८५७ को ब्रह्मावर्त में एक विजयोत्सव का आयोजन किया। सारी नगरी को रात को रोशनी करने के लिए बाध्य किया गया। रात को थाने में नाच-गाने की महफिल हुई खूब शराब ढली। सभी राग-रंग में मस्त हो गए।

जब क्रांतिकारियों के क्षेत्र में इस विजयोत्सव का समाचार पहुँचा तो उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। कुछ न कुछ करने के लिए वे तैयार हो गए। ढलती रात में जब सब वारांगनाओं के नाच में व्यस्त थे तभी क्रांतिवीर राजा सती-प्रसाद के नेतृत्व में छापेमारों के एक दस्ते ने गंगा पार की और एकाएक थाने पर आक्रमण कर दिया। थानेदार तलवार के घाट उतार दिया गया। अनेक उत्सव मनानेवाले या तो मार डाले गए या घायल होकर भाग खड़े हुए। इस प्रकार रंग में भंग हो गया।

शिवराजपुर—

शिवराजपुर क्रांतिवीर राजा सतीप्रसाद का कार्यकेन्द्र था। यहाँ के लोग अंग्रेज़ी सत्ता के अब भी विरोधी थे। अधि-कारियों ने यहाँ भी एक थाना स्थापित किया। इस थाने की पुलिस को आज्ञा थी कि वह क्रांतिकारियों और उनके सहायकों को खोजकर उन्हें कठोर दंड दे। २८ सितम्बर, सन् १८५७ को क्रांतिकारी दस्ते ने शिवराजपुर पर आक्रमण किया। थाना नष्ट कर दिया गया। थाने से सिपाही भाग खड़े हुए।

यमुना के उस पार काल्पी के छापेमार दलों ने स्थान-स्थान पर अपने अड्डे स्थापित किए थे। कभी-कभी यमुना के एक तट पर अंग्रेज़ी सेना के गोरे सिपाही पहुँचते और उस पार क्रांतिकारी सैनिक। दोनों एक-दूसरे पर गोलियाँ बरसाते।

घाटमपुर—

हमीरपुर के पास से यमुना पार कर एक छापेमार दल ने २९ मार्च, सन् १८५८ को घाटमपुर पर आक्रमण किया। समाचार पाते ही कैप्टन क्रिस्टी तथा मैक्सवेल अपने सैनिकों के साथ घाटमपुर के थाने की रक्षा करने आ पहुँचे। पर उनके वहां पहुँचने के पूर्व ही थाना नष्ट किया जा चुका था तथा क्रांतिकारी दल यमुना के उस पार पहुँच चुका था। २ मई को पुनः छापेमार दल ने घाटमपुर पर हमला किया। तहसीली अथवा नवनिर्मित थाना पुनः जला दिया गया। तहसील-दार घायल हो गया। इस समय तहसीली के खज़ाने में १५०० रुपये थे। वे क्रांतिकारियों के हाथ लगे। इस स्थान पर पुनः तहसीली अथवा थाना स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया।[1]

सिकंदरा—

१० जनवरी, सन् १८५८ को सिकंदरा के राजाभाऊ तथा भोगनीपुर के कानूनगो माधवसिंह के नेतृत्व में छापेमारों के एक दल ने सिकंदरा पर छापा मारा। थानेदार तथा १५ बर-कन्दाज़ मार डाले गये। तहसीली पर भी हमला किया गया। अंग्रेज़ी सत्ता के सभी चिह्नों को नष्ट करता हुआ यह दल मंगलपुर की ओर बढ़ने लगा। इस दल के आने का समाचार ज्योंही मंगलपुर पहुँचा, त्योंही वहां के सभी सरकारी

---

1. Freedom Struggle in U.P., vol. iv, page 559.

कर्मचारी भाग खड़े हुए। शीघ्र ही ब्रिगेडियर कारथू वहां पहुँचा, पर तब छापेमार दल यमुना के पार हो चुका था। इसी दल ने कुछ समय बाद यमुना-तट के मूसानगर पर आक्रमण किया तथा वहां का थाना नष्ट कर डाला।

यमुना-तट के भागों पर होनेवाले लगातार हमलों से अंग्रेज़ अधिकारी परेशान हो गये। अंत में उन्होंने भोगनीपुर से लेकर चिल्लातारा तक के प्रत्येक घाट पर गोरे सैनिकों के पहरे बैठा दिये ताकि छापेमार यमुना पार न कर सकें। पर इससे भी छापे न रुक सके।

इस प्रकार कानपुर के आसपास के भागों पर अनेक प्रयत्न करने पर भी अंग्रेज़ अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल न हो सके।

तात्या ने आश्चर्यजनक अल्पकाल में अपने परिश्रम, साहस और व्यवहारकुशलता से एक नवीन क्रांतिकारी राज्य की स्थापना की। इस राज्य का प्रमुख केन्द्र था काल्पी तथा दूसरा था जलालपुर।"......काल्पी के पास बेतवा नदी के तट पर जलालपुर में क्रान्तिकारी नेताओं ने सार्वभौम सत्ता स्थापित की। यमुना नदी के पूर्व ज़मींदारों से पेशवा के प्रतिनिधि के लिये धन वसूल किया जाता था तथा उनके द्वारा क्रान्तिकारी सेना के लिये रंगरूट भर्ती किये जाते थे।..."[१]

इस राज्य का विस्तार यमुना नदी के दाहिने तट से लेकर ग्वालियर राज्य की सीमा तक था। स्थान-स्थान पर चौकियां

---

1. **The History of Indian Mutiny, vol. iv, page 314.**

स्थापित की गईं। इन चौकियों पर तात्या ने अपने विश्वसनीय अधिकारियों को नियुक्त किया था। यमुना नदी के प्रत्येक घाट पर पहरेदार सैनिकों की नियुक्तियां की गई थीं। लगान वसूल करने के लिये भी अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

सामरिक तैयारियां करने में भी तात्या ने अपनी संगठन-शक्ति का परिचय दिया। काल्पी में तोपें ढालने, बारूद तैयार करने, तोपों के गोले तथा बन्दूकों की गोलियां बनाने के कार-खाने खोले गये। सारा किला युद्ध-सामग्री तैयार करने का एक वृहद् कारखाना बन गया। अंग्रेज़ लेखकों ने अपनी 'सेण्ट्रल इण्डिया' नामक पुस्तक में, काल्पी में इस समय किस दक्षता के साथ युद्ध-सामग्री तैयार की जा रही थी, इसका इन शब्दों में वर्णन किया है : "शत्रुओं के किले में, मकानों में तथा खड़े किये गये तम्बुओं में लुहार और बढ़ई काम कर रहे थे। गोले तथा गोलियाँ बनाने के कारखाने पूरी शक्ति, सफ़ाई तथा कुशलता से चलाये जा रहे थे। इनमें पीतल की जो गोलियां बनाई जा रही थीं वे बनावट में निर्दोष थीं। इस समय बारूद-भण्डार में ६०० पौण्ड बारूद तैयार थी। बाहर की ओर गोलियों के ढेर लगे हुए थे। जिस प्रकार हमारे (अंग्रेज़ों के) यहां आकार के अनुसार गोलियां क्रम में रखी जाती हैं उसी क्रम में वे यहां रखी गई थीं। ऐसा मालूम होता था कि शत्रु लम्बी लड़ाई की तैयारी कर रहा है।"

तात्या ने अपना गुप्तचर-विभाग भी बड़ी कुशलता से संगठित किया था। उत्तरभारत में उन्होंने गुप्तचरों का एक जाल-सा फैला दिया था। इनके गुप्तचर अंग्रेज़ों की छावनी

में रहते थे। वे गोरी सेना की गतिविधियों की पूरी ख़बरें तात्या को देते थे। किस छावनी में कितने अंग्रेज़ सैनिक हैं, उनके पास कितनी तोपें हैं, कितने और किस प्रकार के शस्त्रास्त्र हैं आदि बातों के समाचार तात्या के पास बराबर आया करते थे। अंग्रेज़ अधिकारी क्या योजनाएं बना रहे हैं तथा वे किस ओर बढ़ने वाले हैं आदि बातों की जानकारी तात्या को रहती थी।

तात्या ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा चतुरता से काल्पी में एक क्रांतिकारी राज्य की स्थापना की। यहां के सब काम नाना-साहब पेशवा के नाम से होते थे। फतेहपुर चौरासी से नाना-साहब अवध तथा रुहेलखण्ड के क्रांतिकारियों के साथ मिल-कर कार्य कर रहे थे। काल्पी का कार्यभार उन्होंने तात्या के कुशल और सुदृढ़ हाथों में सौंप दिया था। पर लोग इससे सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होते थे। वे राज्य के अधिपति को अपने बीच चाहते थे। उसकी अनुपस्थिति उनके तत्कालीन राज्य की कल्पना के विपरीत थी। तात्या की सूक्ष्म दृष्टि में लोगों का यह असंतोष आये बिना न रह सका। उन्होंने नानासाहब के पास सन्देश भेजा कि या तो वे स्वत: काल्पी आयें या अपने किसी प्रतिनिधि को भेजें। नाना ने अपने भतीजे रावसाहब को अपने प्रतिनिधि के रूप में काल्पी भेजा। अभी तक तात्या पूर्ण स्वतंत्रता के साथ कार्य करते थे। पर रावसाहब के आ जाने पर उन्हें कोई कार्य करने के पूर्व उनकी स्वीकृति लेनी पड़ती थी। काल्पी का शासन अब रावसाहब के नाम से होने लगा था।

ग्वालियर की सेना रणाङ्गण में

इस प्रकार तात्या ने काल्पी में एक महान शक्तिशाली केन्द्र का संगठन किया। कानपुर की पराजय के बाद क्रांतिकारियों में असहायता और निराशा की जो भावना उत्पन्न हो गई थी उसे तात्या ने अल्पकाल में ही दूर किया तथा उनमें पुनः आत्मविश्वास और साहस का संचार किया। तात्या की दृष्टि पुनः कानपुर की ओर उठी। वे जानते थे कि कानपुर पर पुनः विजय प्राप्त करने में उन्हें अंग्रेज़ों की सुशिक्षित, सुसज्जित और अनुशासित सेना का सामना करना पड़ेगा। इस समय काल्पी में दो हज़ार सेना थी। पर यह अर्धशिक्षित और अनुभवहीन क्रांतिकारी सेना थी। केवल उसीके बल पर कानपुर जीतना सम्भव न था। तात्या की कुशल और खोजपूर्ण आँखें आसपास घूमकर ग्वालियर पर स्थिर हुईं। वहाँ की परिस्थिति इन्हें अनुकूल दिखाई दी। अब उनकी सारी कूटनीति तथा चतुरता ग्वालियर पर केन्द्रित हुई।

ग्वालियर-नरेश जयाजीराव शिन्दे अल्पवयस्क थे। राज्य का सारा काम उनके चतुर दीवान दिनकरराव राजवाड़े देखते थे। वैसे तो जयाजीराव पूर्णरूप से दीवान के कथनानुसार ही चलते थे तथापि उनके तरुण और महत्त्वाकांक्षी हृदय को कभी-कभी दीवान का अत्यधिक नियन्त्रण असह्य हो उठता था। जब देश में चारों ओर क्रांति की ज्वाला फैलने लगी तो जयाजीराव का चित्त भी चल-विचल हो उठा। उनकी नौजवानी की उमंग उन्हें क्रांतिकारियों की ओर आकर्षित करती थी।

उनके पास ऐसे अनेक लोग विद्यमान थे जो उन्हें क्रांति का पक्षपाती बनाना चाहते थे। उनपर दबाव डाला जा रहा था कि वे नानासाहब पेशवा तथा झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से मिलकर ग्वालियर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति का झंडा खड़ा कर दें और ग्वालियर की दस हज़ार सेना साथ लेकर आगरा, झांसी और कानपुर जाकर अंग्रेज़ों की सत्ता मिटाने में क्रांतिकारियों की सहायता करें। पर उनके दीवान तो पूर्णरूप से अंग्रेज़ों के पक्षपाती थे। वे जयाजीराव को समझाते थे कि अंग्रेज़ों की शक्ति के सामने विद्रोही अधिक दिन न टिक सकेंगे और अन्तिम विजय अंग्रेज़ों की ही होगी। उस समय जयाजीराव की मानसिक उलझन का दिनकरराव के चरित्रकार ने इन शब्दों में वर्णन किया है : "कभी उन्हें दिखाई देता कि विद्रोह की शक्ति बढ़ रही है और उन्हें अंग्रेज़ चिन्ताक्रांत दिखाई देते। कभी उनके हृदय में यह भय उत्पन्न होता कि क्रांति अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती। कभी मन में सोचते कि अगर सारा देश ही उनके विरुद्ध हो जायेगा तो अंग्रेज़ कर ही क्या सकते हैं? अगर वे अंग्रेज़ों का पक्ष लेते हैं तो सारे देश से उन्हें शत्रुता मोल लेनी पड़ेगी। अगर विद्रोहियों से मिलते हैं तो राज्य और प्राण दोनों से हाथ धोने की सम्भावना है।"[1] ग्वालियर के रेज़ीडेण्ट मेकफर्सन ने भी ग्वालियर की घटनाओं की रिपोर्ट देते समय लिखा है : "सिन्धिया दीवान की सलाह

---

१. 'रावराजे सर दिनकरराव राजवाडे याचे चरित्र' (मराठी,) लेखक —विनायक कोंडदेव ओक (१८९७ ई.) पृष्ठ १२७।

श्रौर रावसाहब के पक्षपाती अपने कुटुम्बियों श्रौर अंगरक्षक सेना के अफसरों की सलाह के बीच हिलोरें ले रहे हैं।"[१]

ग्वालियर-नरेश की इस डगमगाती हुई मनोदशा में उन्हें अंग्रेज़ों का पक्षपाती बनाया दिनकरराव राजवाड़े ने। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उनपर दीवान दिनकरराव का प्रभाव न पड़ता तो बहुत सम्भव था कि जयाजीराव की तरुणाई और महत्त्वाकांक्षा उन्हें क्रांति का पक्षपाती बना देती। अगर कहीं ऐसा होता तो बहुत सम्भव है कि क्रांति का इतिहास कुछ दूसरा ही होता। इतिहासकार के श्रौर मालिसन के शब्दों में "चार मास तक अंग्रेज़ों का भाग्य सिंधिया के हाथों में रहा।"

इस समय ग्वालियर में दो प्रकार की सेनाएं थीं। एक थी ग्वालियर-नरेश की। इसमें एक हज़ार सैनिक थे। यह सेना जयाजीराव के पूर्ण नियन्त्रण में थी। दूसरी थी सहायक सेना। ग्वालियर राज्य और अंग्रेज़ों में जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार एक अंग्रेज़ी सेना ग्वालियर में राज्य की रक्षा के लिये रखी गई थी। इस सेना में चार तोपखाने, घुड़सवार सेना की दो टुकड़ियाँ, पैदल सेना के चार दस्ते तथा घेरा डालने का पूरा सामान था। इस सेना में ४,३०० सैनिक थे। यह सेना बड़ी वीर समझी जाती थी। इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि यह सेना युद्ध में कभी पराजित नहीं हुई थी। यह सहायक सेना बंगाल सेना का भाग थी। इसके अधिकतर सिपाही अवध के रहने वाले थे। अंग्रेज़ों ने अन्यायपूर्वक

---

1. Freedom struggle in U. P. vol. III, page 450.

अवध के राज्य को समाप्त कर अपने राज्य का विस्तार किया था। अतः यह सेना अंग्रेज़ों से बहुत असन्तुष्ट थी।

ग्वालियर की सेना तथा यहाँ की सहायक सेना में विद्रोह की भावना दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। जब यहाँ मेरठ, दिल्ली, कानपुर, झांसी, आदि स्थानों में घटित होने वाली क्रांतिकारी घटनाओं के समाचार आये तो इन दोनों सेनाओं की क्षुब्धता अपनी चरमसीमा पर पहुँच गई।

जब सेना ने देखा कि जयाजीराव क्रांति का साथ देने को तैयार नहीं हैं तो इसके लिये उसने दिनकरराव को ही दोषी माना। सिपाही उनसे क्रोधित हो उठे। एक बार दिनकरराव ग्वालियर के रेज़ीडेंट से मिलने के लिये छावनी गये तो सहायक सेना के सिपाहियों ने उन्हें अपमानित कर छावनी के बाहर खदेड़ दिया। बड़ी कठिनाई से एक गली से भागकर दिनकरराव अपनी जान बचाने में सफल हो सके।[1] इस घटना से अंग्रेज़ अधिकारी चौंक-से पड़े। वे समझ गये कि यह ग्वालियर में शीघ्र ही होने वाले विद्रोह का पूर्वरूप है।

४ जून को ग्वालियर में विद्रोह की आग भड़क उठी। सहायक सेना ने अपने अफ़सरों पर आक्रमण कर उनमें से अनेक को मार डाला। कोई बीस अंग्रेज़ों ने अपने प्राण खोये। बचे हुए अंग्रेज़ भाग खड़े हुए और उन्होंने रेज़ीडेंसी

---

1. Letter from Brigadier Ramsay to Agent to Governor-General for Central India dated Gwalior, May 30, 1857. —Freedom Struggle in U. P., vol. III, page 128.

तथा महाराजा के महल में शरण ली। ग्वालियर-नरेश ने अंग्रेज़ स्त्री, पुरुषों और बच्चों को सुरक्षित आगरा भेजने की व्यवस्था की। रेज़ीडेंट ग्वालियर छोड़ना नहीं चाहता था क्योंकि उसे भय था कि उसके हटते ही सम्भव है कि जयाजी-राव दबाव में आकर क्रांतिकारियों का साथ देने लगें। पर जयाजीराव ने उसे समझाया कि अगर वह ग्वालियर में रहेगा तो विद्रोही सेना और भड़केगी। अन्त में वह आगरे के लिए रवाना हो गया। वहां से वह जयाजीराव तथा दिनकरराव से पत्र-व्यवहार किया करता था। जयाजीराव चाहते थे कि विद्रोही सेना किसी प्रकार ग्वालियर से चली जाय ताकि ग्वालियर सुरक्षित रहे। पर रेज़ीडेंट ने इन्हें लिखा कि वे विद्रोही सेना को ग्वालियर से बाहर न जाने दें। उसे डर था कि कहीं यह सेना आगरे पर न चढ़ आये, क्योंकि इस बात में सन्देह ही था कि इस आक्रमण से अंग्रेज़ आगरे की रक्षा कर सकेंगे। अतएव उसने महाराजा से कहा कि वे विद्रोही सिपाहियों को उनके वेतन बराबर देते रहें ताकि वह सेना मुरार की छावनी छोड़कर अन्यत्र जाने की बात न सोचे।

तात्या के दूत सेना में सक्रिय थे। महाराजा तथा सहायक सेना को क्रांतिपक्ष में मिलाने के लिये वे प्रयत्न कर रहे थे। जब तात्या को विश्वास हो गया कि इन सेनाओं को अपने पक्ष में कर लेने का अवसर आ गया है तो वे स्वतः कालपी से ग्वालियर पहुँचे। उन्होंने इन सेनाओं के प्रतिनिधियों से गुप्त मंत्रणाएँ कीं। अन्त में सहायक सेना उनका साथ देने को तैयार हो गई।

विष्णुभट गोडसे इस समय ग्वालियर में ही उपस्थित थे। 'मासा प्रवास' नामक अपनी (मराठी) पुस्तक में इस घटना का इन शब्दों में वर्णन किया है : "भादों के महीने में एक दिन ग्वालियर में हमें बड़ी हलचल दिखाई दी। रास्ते में स्थान-स्थान पर एकत्रित लोग रहस्यमय ढंग से धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। घुड़सवार सैनिक इधर-उधर दौड़ रहे थे। बहुत-सी दूकानें बन्द थीं। यह देखकर हमने सोचा कि ग्वालियर में विद्रोह की गड़बड़ी मची हुई है। यह समझकर हम घर के बाहर निकले। हमें पता चला कि नानासाहब की ओर से तात्या टोपी शिन्दे सरकार से सैनिक सहायता मांगने आये हैं।

"हमने तात्या टोपी को बाज़ार में देखा। उन्होंने मुरार की चार पलटनों को अपने अनुकूल बना लिया है और शिन्दे सरकार के पास खबर भेजी कि हम इतने दिन यहाँ रहे, पर हमने आपके शहर अथवा राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचाई। अतः आपको चाहिये कि आप हमारे लिये गाड़ियों, घोड़ों, ऊँटों आदि की व्यवस्था कर दें। जब जयाजीराव और दिनकरराव ने उनकी इच्छा को जाना तो वे तात्या टोपी से मिलने मुरार की छावनी में गये। यह छावनी शहर से तीन कोस की दूरी पर है। वहां जाकर सबसे मिलकर यह निश्चय किया गया कि जिस सामान की आवश्यकता होगी वह हम (जयाजीराव) देंगे। पर हमारे राज्य को किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाये बिना तुमको बाहर चला जाना चाहिये। इसके उपरान्त (तात्या के) सम्मान में पान सुपारी, इत्र-गुलाब आदि बांटा

गया। दूसरे दिन शिन्दे ने गाड़ियाँ, घोड़े, ऊँट, हाथी, बैल, खच्चर आदि देकर तात्या टोपी को रवाना किया तथा (इस प्रकार) ग्वालियर की संकट से रक्षा की।"

ग्वालियर की सहायक सेना लेकर तात्या काल्पी की ओर रवाना हुए। मार्ग में तात्या ने गुरसराय के राजा केशवराव से तीन लाख रुपये मांगे। पर उन्होंने धन देने से इन्कार कर दिया। इस अपमान से क्षुब्ध होकर तात्या ने उनके किले पर तोपों से गोले बरसाये तथा उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। उनका खज़ाना लूटकर वे आगे बढ़े।

इस सहायक सेना को क्रांतिपक्ष में कर लेना वास्तव में बड़ी चतुरता और दूरदर्शिता का कार्य था। तात्या जैसा कल्पनाशील व्यक्ति ही इस कार्य को करने की क्षमता रखता था। इस सेना के मिल जाने से कानपुर और बुन्देलखण्ड की बुझती हुई क्रांति-अग्नि एक बार पुनः ज्वलन्त हो उठी। अंग्रेज़ी सरकार इस सहायक सेना की शक्ति से परिचित थी। ज्योंही उसे समाचार मिला कि यह सेना उसके विरुद्ध हो गई है तथा शीघ्र ही रणक्षेत्र में उतरने वाली है तो वह थर्रा उठी।

कानपुर की विजय तथा पराजय

ग्वालियर की विशाल और सुशिक्षित सेना को लेकर तात्या काल्पी पहुँचे। अब तात्या ने कानपुर आक्रमण करने की ज़ोर-

दार ढंग से तैयारियां आरंभ कर दीं। इस समय बिहार के क्रान्तिकारी नेता कुंवरसिंह बान्दा में थे। तात्या ने उन्हें कानपुर पर आक्रमण करने में सहायता देने का निमंत्रण दिया। इस रण-निमंत्रण को स्वीकार कर कुँवरसिंह अपनी सेना के साथ काल्पी आ पहुँचे। गुप्तचरों ने तात्या को समाचार दिया था कि अंग्रेज़ी सेना शीघ्र ही कानपुर से लखनऊ के लिये रवाना होने वाली है। तात्या ने इसी अवसर को आक्रमण के लिये उपयुक्त समझा।

कानपुर की रक्षा का भार विंडहम पर छोड़कर सेनापति कैम्पवेल एक बड़ी सेना के साथ लखनऊ के लिये रवाना हुआ। उसने विंडहम को यह आदेश दिया था कि कानपुर की ओर गंगातट पर, नावों के पुल के पास जो घेरा बनाया गया है उसीमें रहकर आक्रमण होने पर अपनी रक्षा करे। यह घेरा ७ फुट ऊँची तथा १२ फुट चौड़ी मिट्टी की दीवार से घिरा था। आजकल जिस स्थान पर 'हार्नेस और सैडलरी फैक्टरी' बनी हुई है उसी स्थान पर यह घेरा बना हुआ था। यही कारण है कि आज भी लोग इस हार्नेस फैक्टरी को किले के नाम से पुकारते हैं।

विंडहम की पराजय—

इस समय विंडहम के पास कानपुर में केवल ५०० अंग्रेज सैनिक तथा कुछ सिख थे। तात्या को इस बात का पूरा पता था। अतः जब ९ नवंबर, सन् १८५७ को सेनापति कैम्पवेल ने लखनऊ जाने के लिये गंगा पार की तो ठीक दूसरे दिन तात्या

ने कानपुर की ओर बढ़ने के लिये यमुना पार की। उन्होंने स्थान-स्थान पर मोरचे बनाये। भोगनीपुर में १२८० सिपाहियों का तथा चार तोपों का मोरचा स्थापित किया गया। शिवली के मोरचे पर दो हज़ार सिपाही तथा ६ तोपें और शिवराजपुर के मोरचे पर एक हज़ार सिपाही तथा ४ तोपें लगाई गईं। साथ ही तात्या ने अंग्रेज़ी सेना के रसद का मार्ग भी काट डाला। इसके उपरान्त तात्या कानपुर की ओर बढ़े। अंग्रेज़ों के सौभाग्य से इसी समय कानपुर में ढाई हज़ार सेना आ गई। विंडहम ने सोचा कि इस सेना के बल पर वह तात्या की सेना को मार भगा सकता है। अतएव उसे ज्योंही यह समाचार मिला कि तात्या अपनी सेना के साथ आगे बढ़ रहे हैं, त्योंही वह सेनापति कैम्पवेल के आदेश की अवहेलना कर घेरे से बाहर निकल आया और तात्या का सामना करने के लिये आगे बढ़ने लगा। कानपुर से ७ मील दूर पाण्डु नदी के किनारे तात्या ने ढाई हज़ार पैदल सिपाहियों, ५०० घुड़सवारों तथा ६ तोपों से व्यूह की रचना की। विंडहम ने आगे बढ़कर तात्या की सेना पर आक्रमण कर दिया। अपनी सेना को थोड़ा दाहिनी ओर हटाकर तात्या ने तोपों की गोलाबारी आरंभ की। अंग्रेज़ी सेना की तोपें भी गरज उठीं। इस लड़ाई में तात्या की तीन तोपें बेकार हो गईं। इसके उपरान्त दोनों ओर से बन्दूकें दगने लगीं। थोड़ी देर के बाद विंडहम के सैनिक अपनी जगह पर टिक न सके। उन्हें पीछे हटना पड़ा। कानपुर के निकट के एक मैदान में विंडहम ने अपना नया मोरचा बनाया। तात्या ने अपने आक्रमण को और अधिक प्रभावशाली बनाने

के लिये शिवली और शिवराजपुर की सेना बुलवा ली। उन्होंने सेना को दो भागों में बांटी। एक भाग अंग्रेज़ी सेना के दाहिने भाग पर और दूसरा भाग बायें भाग पर हमला करने लगा। अंग्रेज़ी तोपखाने भी गोले बरसाने लगे। सहसा विंडहम ने अनुभव किया कि उसकी सेना घिरती जा रही है। वह घबड़ा उठा। उसने सेना को आज्ञा दी कि वह पीछे हटकर घेरे में पहुँच जाय। अंग्रेज़ी सेना ने क़तारें तोड़कर भागना शुरू किया। पर उनके लिये भागना भी कठिन हो गया।

अंग्रेज़ सैनिक मालखाने में घुसे। शराब की बोतलों को हाथों में लेकर शराब पीते हुए भागने लगे। इस युद्ध में ३०० अंग्रेज़ मारे गये। अगर वे भाग खड़े न होते तो अंग्रेज़ी सेना तात्या द्वारा घेर ली जाती तथा नष्ट हो जाती। किले के फाटक पर पहरा देनेवाले सिख सिपाही अंग्रेज़ी सेना की भगदड़ देखकर आश्चर्य में पड़ गये। पादरी मूर ने अंग्रेज़ सैनिकों के इस समय की घबराहट का इन शब्दों में वर्णन किया है: "अंग्रेज़ सैनिक नियंत्रण से बाहर हो गये थे और अव्य-वस्थित ढंग से किले की ओर भागने लगे थे। फाटक पर एक सिख सरदार ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया ताकि वे क़तार बनाकर किले में घुसें। पर वे उसे धक्का देकर आगे बढ़ गये।" उसने (सरदार ने) हाथ उठाकर कहा: "तुम लोग उन लोगों के भाई नहीं हो जिन्होंने खालसा फौज पर विजय पाकर पंजाब को जीता था।"

कानपुर पर तात्या का अधिकार हो गया। बहुत-सी युद्ध-

सामग्री तात्या के हाथ लगी। ग्यारह हज़ार कारतूस, ५०० तम्बू, घोड़ों की ज़ीनें आदि पांच लाख रुपयों के मूल्य का सामान तात्या को मिला। यह सामान लखनऊ पर आक्रमण करनेवाली गोरी सेना के लिये भेजा जानेवाला था। पर इस महान् विजय के बाद तात्या ने एक ऐसी भूल की जिसके कारण उनकी यह विजय अल्पकालीन ही सिद्ध हुई। वे कानपुर पर अपनी सत्ता स्थापित करने में इतने व्यस्त हो गये कि उन्होंने लखनऊ-कानपुर मार्ग का पुल नष्ट नहीं किया। अगर यह पुल नष्ट हो जाता तो सेनापति कैम्पवेल इतनी शीघ्रता से कानपुर न पहुँच पाता।

कैम्पवेल का आक्रमण—

१७ नवम्बर को सेनापति कैम्पवेल ने लखनऊ पर विजय प्राप्त की। रेज़ीडेन्सी में घिरे हुए अंग्रेज़ों को उसने मुक्त किया। इसी समय कैम्पवेल को समाचार मिला कि तात्या ने कानपुर पर आक्रमण कर दिया है। जनरल आउट्रम को लखनऊ की व्यवस्था करने का भार सौंपकर रेज़ीडेन्सी की अंग्रेज़ स्त्रियों, बच्चों तथा घायलों को साथ लेकर ३ हज़ार सेना के साथ उसने कानपुर की ओर कूच किया। २६ नवम्बर को वह कानपुर के सामने नाव के पुल के पास पहुँचा। पुल को सुरक्षित देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

ज्योंही तात्या ने लखनऊ से अंग्रेज़ी सेना के आने का समाचार सुना, त्योंही उन्होंने पुल के सामने तोपें लगा दीं ताकि अगर अंग्रेज़ी सेना पुल को पार करने का प्रयत्न करे तो उस

पर गोले बरसाये जा सकें। कप्तान पील ने गंगा के पार से इन तोपों पर गोले बरसाना आरंभ किया। उसकी तोपों का निशाना इतना अचूक तथा प्रभावशाली था कि तात्या की तोपें बेकार हो गईं। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी सेना पुल पार कर कानपुर आ पहुँची। कैम्पवेल ने अपनी सेना का पड़ाव छावनी में डाला। सबसे पूर्व उसने एक सुदृढ़ सैनिक टुकड़ी की संरक्षकता में लखनऊ की अंग्रेज़ महिलाओं, बच्चों तथा घायलों को प्रयाग रवाना किया।

कानपुर नगर पर तात्या का अधिकार हो चुका था। गंगा के तट पर क्रांतिकारी चौकियां स्थापित की गई थीं। इस समय तात्या के पास चौदह हज़ार सेना थी। इस सेना ने अभी कुछ दिनों पूर्व ही विंडहम पर विजय प्राप्त की थी। अतः उसके हौसले बढ़े हुए थे। अंग्रेज़ी सेना का नेतृत्व जनरल कैम्पवेल, होपग्राण्ट, वालपोल तथा विंडहम जैसे अनुभवी सेनानी कर रहे थे। ग्वालियर सेना के पांच हज़ार सिपाही तथा दस हज़ार क्रांतिकारी मैदान में आकर डट गये थे।

नहर किनारे के मैदान में दोनों सेनाओं ने अपने-अपने मोरचे स्थापित किये। कैम्पवेल ने आक्रमण आरंभ किया। तात्या की तोपों ने अंग्रेज़ी सेना पर आग उगलना आरम्भ किया। चतुर कैम्पवेल ने देखा कि तात्या की सेना का मध्य और बायाँ भाग अत्यन्त सुदृढ़ है। क्रांतिकारी सेना के दाहिनी ओर मैदान था। बीच में केवल नहर पड़ती थी। इसी भाग को सबसे निर्बल समझकर उसने इसपर आक्रमण किया। वह चाहता था कि ग्वालियर की सेना को क्रांतिकारियों की

सेना से अलग कर दिया जाय ताकि अर्धशिक्षित क्रांतिकारी सेना से पहिले निपटा जा सके। दिन भर भयंकर युद्ध हुआ। तात्या की सेना अत्यन्त वीरता से लड़ी। इस युद्ध में पील के तोपखाने ने महत्त्वपूर्ण काम किया। उसके भयंकर आक्रमण के सामने क्रान्तिकारी सेना के पैर उखड़ गये। वह सेना तितर-बितर हो गई। तात्या की भागती हुई सेना का अंग्रेज़ी सेना ने १४ मील तक पीछा किया। इस युद्ध में तात्या को बहुत बड़ी मात्रा में युद्ध-सामग्री से हाथ धोना पड़ा। तात्या अपनी सेना के साथ शिवराजपुर के निकट से गंगा पार कर अवध में जाना चाहते थे। होपग्राण्ट उनका पीछा कर रहा था। सरैंय्या घाट से ज्योंही क्रांतिकारी सेना गंगा पार कर रही थी त्योंही होप-ग्राण्ट वहां आ पहुँचा। वहाँ भी युद्ध हुआ। १५ तोपें छोड़कर तात्या को यहां से भागना पड़ा। अपनी सेना एकत्रित कर तात्या पुनः काल्पी पहुँचे। इस समय नानासाहब ब्रह्मावर्त में आ गये थे। पर तात्या की पराजय का समाचार पाकर वे पुनः गंगा पार कर अवध चले गये।

ब्रह्मावर्त का विध्वंस—

सरैंय्या घाट से होपग्राण्ट सीधा ब्रह्मावर्त पहुँचा। अंग्रेज़ों के हृदयों में नानासाहब और तात्या टोपे के विरुद्ध प्रतिहिंसा की जो आग धधक रही थी उसकी प्रखरता ब्रह्मावर्त नगरी को सहनी पड़ी। यहाँ तीन दिनों तक लगातार हत्याकाण्ड होता रहा। जो कोई रास्ते में दिखाई देता वह गोली का शिकार बन जाता। गंगा से स्टीमर द्वारा भी गोलियाँ बरसाई

गईं। अनेक स्त्रियों ने घबड़ाकर गंगा में कूदकर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार हज़ारों व्यक्ति मार डाले गए। नाना-साहब तथा तात्या से सम्बन्धित जितनी इमारतें थीं, वे नष्ट कर दी गईं। नानासाहब के महल को तोपों से ढहा दिया गया और उसमें आग लगा दी गई। उनका गंगा-मन्दिर जो काँच का बना था, तोपों से नष्ट कर दिया गया। पास ही तात्या टोपे का मकान था। वह भी जलाकर राख का ढेर बना दिया गया। अपनी प्रतिहिंसा की क्रूर भावना से प्रेरित होकर अंग्रेज़ों ने प्रयत्न किया कि नाना और तात्या का ब्रह्मावर्त में कोई चिह्न शेष न रहे।

एक सप्ताह तक यहाँ गोरे सैनिक लूटमार करते रहे। नानासाहब का महल तो सम्पत्ति से भरा हुआ था। उसे पूरी तरह से लूट लिया गया। नानासाहब के महल के कुएँ में चाँदी-सोने की थालियाँ, जवाहरात, मोहरें आदि तीस लाख की सम्पत्ति मिली। ब्रह्मावर्त के लोगों के घर-घर में सैनिक घुस जाते और जो कुछ मिलता उसे लूट लेते। इस प्रकार ब्रह्मावर्त को नाना और तात्या की नगरी होने का कठोर मूल्य चुकाना पड़ा।

तात्या टोपे ने कानपुर को जीतकर उसे पुनः क्रान्ति का सुदृढ़ केन्द्र बनाने का जो स्वप्न देखा था वह अपूर्ण ही रह गया। इस प्रयत्न में उन्होंने अपनी पूरी चातुरी तथा शक्ति लगा दी थी। पर परिस्थितियों ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। अजेय समझी जाने वाली ग्वालियर की सहायक सेना कानपुर के युद्ध में पराजित हुई। इस पराजय के बाद भी अपनी सेना

को बचाकर पुनः काल्पी वापस लाने में तात्या ने जिस कुशलता का परिचय दिया वह वास्तव में प्रशंसनीय था।

इसी समय उत्तर के कई क्रान्ति-केन्द्रों पर अंग्रेज़ों ने विजय प्राप्त कर ली थी। दिल्ली, लखनऊ, कानपुर आदि स्थान क्रान्ति के प्रबल अड्डे माने जाते थे। पर इन सभी स्थानों पर अंग्रेज़ों के झंडे फहरने लगे थे। इनको जीतने के लिए जो अंग्रेज़ी सेनाएं लगी हुई थीं वे अब खाली हो चुकी थीं। ये सेनाएं अब अन्य स्थानों की क्रान्तियों को दबाने के लिए रवाना की जा रही थीं। इस समय क्रान्तिकारियों में घोर निराशा छायी हुई थी। सभी हताश-से हो गए थे। इस निराशा-जनक परिस्थिति में भी तात्या निराश नहीं हुए। जय-पराजय की चिन्ता किए बिना यह कर्मयोगी क्रान्तिवीर मैदान में डटा रहा।

चरखारी पर विजय—

बुन्देलखण्ड में चरखारी नामक एक छोटी-सी रियासत थी। यह झाँसी से ९५ मील की दूरी पर थी। उस समय यहाँ रतनसिंह नामक राजा राज्य करता था। जब देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध गड़बड़ी आरंभ हुई, राजा रतनसिंह इस बात का निर्णय न कर सका कि वह किसका पक्ष ले—अंग्रेज़ों का अथवा क्रान्तिकारियों का। जब हमीरपुर में वहां की क्रान्ति के नेता सूबेदार अलीबख्श ने अंग्रेज़ी शासन को समाप्त कर अपने को दिल्ली के बादशाह का प्रतिनिधि घोषित किया तो रतनसिंह कुछ आतंकित हुआ और उसने अलीबख्श को पत्र

लिखकर उसकी अधीनता स्वीकार की तथा उससे प्रार्थना की कि वह उसे उस सारे राज्य की सनद प्रदान करे जिसपर उसके पूर्वज महाराजा छत्रसाल राज्य करते थे। साथ ही उसने हमीरपुर के कलक्टर लायड की प्रार्थना पर उसकी सहायता के लिए १०० सिपाही भेजे। जब मोहबे में अशान्ति के लक्षण प्रकट हुए तो वहाँ के कलक्टर कार्नी ने राजा से सहायता माँगी। पर राजा ने यह कहकर टाल दिया कि वह १५ दिनों में निश्चित उत्तर देगा। पर जब अशान्ति आरंभ हुई तो कार्नी ने भागकर राजा के महल में शरण ली। इस समय राजा ने उसके साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया तथा उसे गुप्त रूप से अपने यहाँ छिपा रखा। इसी प्रकार जब सारे बुन्देलखण्ड में क्रान्ति की आग फैली और अंग्रेज़ी शासन समाप्त हुआ तो अंग्रेजों की प्रार्थना पर राजा ने राठ, जैतपुर, पनवारी आदि इलाकों से अंग्रेज़ी सरकार की ओर से लगान वसूल किया। जब जैतपुर की पूर्व रानी ने दीवान देशपत की सहायता से जैतपुर पर अधिकार कर लिया तो राजा रतनसिंह ने अपनी सेना भेजकर रानी और देशपत को जैतपुर से भगा दिया था।

काल्पी में तात्या की सत्ता स्थापित होते ही चरखारी का राजा घबड़ा उठा। उसने तात्या को एक पत्र लिखा जिसमें उसने उन्हें आश्वासन दिया कि वह उनके साथ है। पर तात्या ने उसके व्यवहार से समझ लिया कि वह अंग्रेज़ों का पक्षपाती है। इस समय बुन्देलखण्ड में तात्या का प्रभाव बढ़ रहा था। विरोधी राज्य का बुन्देलखण्ड में रहना तात्या ने क्रान्ति के

लिए चुनौती माना। अतः उन्होंने चरखारी राज्य को समाप्त करने का निश्चय किया। चरखारी पर आक्रमण करने की तैयारियाँ होने लगीं। आसपास के राजाओं तथा ज़मींदारों ने चरखारी पर किए जाने वाले आक्रमण में तात्या की सहायता की। बाँदा और जैतपुर के नवाबों ने अपनी घुड़सवार सेना को तात्या की मदद में भेजा।

तात्या द्वारा की जाने वाली तैयारियों का समाचार चरखारी के राजा के पास पहुँचा। वह भयभीत हो उठा। उसने गवर्नर-जनरल तथा अंग्रेज़ी सेना के प्रधान सेनापति से रक्षा करने की प्रार्थना की। इन दोनों ने झांसी पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़नेवाले जनरल ह्यू रोज़ को लिखा कि वह चरखारी की रक्षा के लिए अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचे। पर ह्यू रोज़ ने चरखारी की रक्षा करने से झांसी पर अधिकार करना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा। अतः उसने गवर्नर-जनरल तथा प्रधान सेनापति की आज्ञा की अवहेलना कर झांसी पर आक्रमण करना आरंभ किया।

निदान चरखारी से १० मील की दूरी पर तात्या की सेना और चरखारी के राजा की सेना में मुठभेड़ हुई। तात्या की सेना में ६०० सिपाही, २०० घुड़सवार तथा चार तोपें थीं। ११ दिनों तक युद्ध होता रहा। अंत में राजा की सेना भाग खड़ी हुई। अब तात्या ने नगर पर आक्रमण आरंभ किया। नगर की रक्षा के लिए अनेक मोरचे बनाये गए थे। एक मोरचे पर ठाकुर जुझारसिंह था। यह तात्या से मिल गया था। अतः ज्योंही तात्या की सेना उसके मोरचे के सामने आई

त्योंही वह भी आक्रमणकारियों के साथ हो गया। इसी मोरचे से क्रान्तिकारी सेना नगर में घुसी तथा उसपर अधिकार कर लिया। राजा का महल लूट लिया गया। थोड़े सिपाहियों के साथ राजा किले में घुस गया।

चरखारी के युद्ध का वर्णन वहाँ के सहायक मजिस्ट्रेट जे० एच० कार्नी ने, जो उस समय राजा की शरण में छिपा हुआ था, इन शब्दों में किया है : "(क्रान्तिकारी) सेना अपना काम अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से करती थी। वे सहायक जत्थों को संगठित कर सकते थे। जब कुछ सैनिक लड़ते थे तो दूसरे आराम करते थे। युद्ध के समय भी एक जत्था जाता हुआ दिखाई देता तो दूसरा आता हुआ। इस शानदार आक्रमण में बिगुल द्वारा संकेत दिए जाते थे। बन्दूकधारियों का प्रत्येक दल अपना निश्चित काम करता था। वे दक्ष सिपाही इनका नेतृत्व करते थे जिन्हें हमने ही युद्धकला की शिक्षा दी थी। (घायलों को ले जाने के लिए) अस्पतालों की डोलियों की भी व्यवस्था थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके अपने सुनियंत्रित बाज़ार भी थे जिनमें सभी वस्तुएँ काफी मात्रा में मिलती थीं। संक्षेप में, उनके द्वारा युद्धक्षेत्र की पूर्ण योग्यता प्रकट होती थी।"[१]

किले के अन्दर राजा के साथ जो सिपाही थे वे युद्ध करना नहीं चाहते थे। उसके अनेक कर्मचारियों की भी सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी। राजा को सदा इस बात का

---

1. Freedom struggle in U. P., vol. III, page 242.

डर लगा रहता था कि वे किसी भी समय किले का फाटक न खोल दें। राजा को अब बाहर से सहायता आने की कोई आशा न रह गई थी। अशान्ति के आरंभ होते ही अंग्रेज़ों ने छतरपुर, बिजावर, पन्ना, टेहरी, दतिया आदि बुन्देलखण्ड की रियासतों के शासकों से कहा था कि वे अंग्रेज़ों की सहायता के लिए अपनी-अपनी सेनाएं तैयार रखें। अनेक बार प्रार्थना किए जाने पर भी इनमें से कोई चरखारी के राजा की सहायता को नहीं आया। इस प्रकार वह इस समय चारों ओर से निराश हो गया था। अब उसने देखा कि किले पर शीघ्र ही आक्रमण होने वाला है तो उसने किले पर सुलह का सफेद झंडा फहराया। पर तात्या ने राजा के पास सन्देश भेजा कि जब तक वह किले में छिपे हुए सहायक मजिस्ट्रेट कार्नी को सौंपते नहीं तब तक सुलह की कोई वार्ता नहीं हो सकती। राजा ने तात्या से शपथ-पूर्वक कहा कि किले में कोई अंग्रेज़ नहीं है। पर इस समय कार्नी महल के उस भाग में रहता था जहाँ राजा के कुटु-म्बियों के सिवा किसी की पहुँच नहीं हो सकती थी।

अन्त में तात्या ने किले पर भी अधिकार कर लिया। राजा क़ैद कर लिया गया। उससे ३ लाख रुपयों का दण्ड वसूल किया गया। जीत की खुशी में २२ तोपों की सलामी दी गई। जालौन की ताईबाई और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को पत्र लिखे गए कि वे भी इस खुशी में अपने यहाँ तोपों की सलामी दें।

कार्नी किसी प्रकार भागकर बच गया। शान्ति होने पर चरखारी में विशेष ड्यूटी पर नियुक्त किया गया। उसने ४

मार्च, सन् १८५८ को गवर्नर-जनरल के सेक्रेटरी के पास भेजी गई अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि चरखारी के राजा की जितनी हानि हुई है उसके लिए उसे पूरा हर्जाना दिया जाय। हर्जाने की रकम बुन्देलखण्ड के उन शासकों से वसूल की जाय जिन्होंने चरखारी के राजा की सहायता नहीं की।

चरखारी की विजय से बुन्देलखण्ड में अंग्रेज़ों की प्रतिष्ठा को धक्का लगे बिना न रह सका।

इसी समय झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र राव-साहब के नाम से आया कि अंग्रेज़ों ने झांसी पर आक्रमण कर दिया है। अतः वे शीघ्र से शीघ्र उसकी सहायता करें। राव-साहब ने उसी समय तात्या को आदेश दिया कि वे रानी की सहायता करने झाँसी के लिए रवाना हो जाएँ।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

उत्तरभारत का केन्द्र-बिन्दु होने के कारण झाँसी भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। आरंभ में यह महाराजा छत्रसाल के राज्य का भाग था। जब मालवा के सूबेदार तथा इलाहबाद के नवाब मुहम्मद बंगश ने छत्रसाल पर आक्रमण किया तो वृद्ध छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा (प्रथम) से सहायता माँगी। बाजीराव शीघ्र ही सेना के साथ उसकी सहयता को आ पहुँचे। मराठों की सेना ने बंगश की सेना को मार भगाया। इस युद्ध में गोविन्द पंत खेर ने बड़ी

वीरता का परिचय दिया। बाजीराव उसपर बहुत प्रसन्न हुए। जब छत्रसाल ने अपने राज्य का एक तृतीयांश भाग कृतज्ञतापूर्वक बाजीराव को भेंट किया तो बाजीराव ने उस भाग के तीन हिस्से किए तथा उनपर शासन करने के लिए तीन अलग-अलग सूबेदार नियुक्त किए। सागर, गुलसराय, जालौन आदि भाग के गोविन्द पंत खेर सूबेदार बनाए गए। बुन्देलखण्ड के सूबेदार होने के कारण ये गोविन्द पंत बुन्देले के नाम से पुकारे जाने लगे। बाँदा तथा काल्पी के सूबेदार बाजी-राव की प्रेयसी मस्तानी के पुत्र शमशेरबहादुर बनाए गए। तीसरे भाग झाँसी के नारोशंकर मोतीवाले सूबेदार नियुक्त किए गए। इस प्रकार झाँसी राज्य की नींव रखी गई।

सन् १७५६ ई० में गुसाईं राजा ने विद्रोह कर झाँसी पर अधिकार कर लिया। पेशवा को ज्योंही यह समाचार मिला त्योंही उन्होंने अपने वीर सरदार रघुनाथ हरिनेवालकर को झाँसी भेजा। रघुनाथहरि ने गुसाईं राजा को मार भगाया। पेशवा ने प्रसन्न होकर उन्हें ही झांसी की सूबेदारी सौंपी। तब से झाँसी राज्य की समाप्ति तक यहाँ की सूबेदारी इसी वंश के पास बनी रही। ४६ वर्षों तक सूबेदारी करने के बाद रघुनाथ हरि ने अपने छोटे भाई शिवराम भाऊ को सूबेदार बनाया तथा स्वतः ब्रह्मावर्त जाकर अपने जीवन के शेष दिन ईश्वराराधना में बिताने लगे।

पेशवा तथा अंग्रेज़ों में वसई की जो संधि हुई थी उससे पेशवा का महत्त्व प्रायः समाप्त हो गया था तथा अंग्रेज़ों को मराठा साम्राज्य में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हुआ। पेशवा के

अधीन जो राज्य थे उनसे अंग्रेज़ों ने अलग-अलग संधियाँ कीं। सन् १८०४ में शिवराम भाऊ को भी अंग्रेज़ों से सन्धि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार झाँसी का सार्वभौमत्व पेशवा के स्थान पर अंग्रेज़ों को प्राप्त हुआ। सन् १८१४ में शिवराम भाऊ अपने नाती रामचन्द्र को सूबेदार बनाकर अपने बड़े भाई की तरह ब्रह्मावर्त जाकर ईश्वर-चिन्तन में मग्न हो गए।

रामचन्द्र अल्पवयस्क था। अतः राज्य का सारा कार्य उसकी माता सखूबाई तथा पुराने दीवान गोपालराव भाऊ देखा करते थे। सन् १८१७ में अंग्रेज़ों ने रामचन्द्रराव से पुनः सन्धि की। इस सन्धि द्वारा रामचन्द्र वंशपरम्परागत झाँसी के अधिपति माने गये। सन् १८२५ ई० में मध्यभारत के पिंडारियों के कारण जो गड़बड़ी फैल गई थी उसका फायदा उठाकर नाना पंडित ने काल्पी पर अपना अधिकार जमा लिया। अंग्रेज़ों ने रामचन्द्रराव से सहायता माँगी। उनकी मदद से अंग्रेज़ पुनः काल्पी पर अधिकार कर सके। इस सहायता के बदले अंग्रेज़ों ने रामचन्द्रराव को 'महाराजाधिराज' तथा 'फिदवी बादशाह जानुजा इंग्लिस्तान' की पदवी प्रदान की। सन् १८३५ में रामचन्द्र की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ने सागर के मोरेश्वरराव खेर के पुत्र कृष्णराव को गोद लिया। पर गोद लेने का संस्कार शास्त्र-सम्मत न था क्योंकि शास्त्रानुसार केवल पुरुष को ही गोद लेने का अधिकार होता है। अतएव कृष्णराव को अंग्रेज़ों ने गद्दी पर बैठाना स्वीकार नहीं किया। रामचन्द्रराव के चाचा रघुनाथराव गद्दी पर बैठाये गये। रघुनाथराव चरित्र-

हीन था। वह सदा रंगरेलियों में मग्न रहता था। राज्य का कार्य इसने अत्यन्त अयोग्य और दुश्चरित्र लोगों के हाथों में सौंप रखा था। परिणामस्वरूप राज्य में अव्यवस्था फैल गई। राज्य पर बहुत बड़े कर्ज़ का बोझ लद गया। सरकार ने उसे गद्दी से अलग किया। इसका कोई औरस पुत्र न था। पर गजरा नामक रखैल से इसे अलीबहादुर तथा शमशेर बहादुर नामक दो पुत्र हुए। पर वे गद्दी पर नहीं बैठ सकते थे। सन् १८३८ से १८४२ तक राज्य को अंग्रेज़ों ने अपने हाथों में ले लिया। जब राज्य पर लदे कर्ज़ का अधिकांश भाग चुका दिया गया तो गंगाधरराव को झांसी की गद्दी पर बैठाया गया। इस अवसर पर अंग्रेज़ी सरकार ने गंगाधरराव से सन्धि की। इसके अनुसार उसपर सहायक सेना लादी गई। इस सेना के खर्च के लिये २ लाख, २७ हज़ार, ४ सौ ५८ रुपये की वार्षिक आमदनी वाला भाग भी अंग्रेज़ों ने ले लिया।

प्रारम्भिक जीवन—

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म एक अत्यन्त साधारण और निर्धन कुटुम्ब में हुआ था। इनके पिता का नाम मोरोपन्त ताम्बे था तथा इनकी माता का नाम भागीरथोबाई था। द्वितीय बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी अप्पा की मोरोपन्त पर विशेष कृपा थी। पेशवाई समाप्त होने पर अंग्रेज़ी सरकार ने चिमाजी को भी पेंशन देकर काशी में रहने की आज्ञा दी थी। मोरोपन्त ने चिमाजी का साथ न छोड़ा। वे भी काशी में आकर रहने लगे। चिमाजी इन्हें ५० रुपये मासिक सहायता

देते थे। १९ नवम्बर, सन् १८३५ को भागीरथीबाई को एक कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्या का नाम मणिकर्णिका रखा गया। पर सब लोग इसे मनू के नाम से ही पुकारते थे। कुछ दिनों बाद चिमाजी की मृत्यु हो गई। यह परिवार निराश्रित होकर आश्रय की खोज में ब्रह्मावर्त आया। बाजीराव ने इन्हें अपना आश्रय प्रदान किया। इस समय मनू की आयु कोई तीन वर्ष की थी। शीघ्र ही उसकी माता की मृत्यु हो गई। मोरोपन्त पर इस नन्ही-सी बालिका के भरण-पोषण का भार आ पड़ा। बाजीराव भी इस सुन्दर और चंचल बालिका की ओर आकर्षित हुए। वे इससे बड़ा स्नेह करते थे तथा इसे 'छबीली' नाम से पुकारते थे। इस समय बाजीराव द्वारा गोद लिये हुए नाना तथा उनके अन्य भाई बालक ही थे। मनू का अधिकतर समय इन्हींके साथ खेलने, व्यायाम करने तथा विद्याभ्यास करने में व्यतीत होता-था। घोड़े की सवारी, गंगा में तैरना तथा शस्त्र चलाने का अभ्यास करना उसके मुख्य व्यवसाय थे। यद्यपि तात्या टोपे आयु में इनसे बड़े थे तथापि वे भी खेलने, शस्त्र चलाने आदि में इनका साथ देते थे।

जब मनू कुछ बड़ी हुई तो मोरोपन्त को उसके विवाह की चिन्ता हुई। बाजीराव भी मनू का विवाह अच्छी जगह करना चाहते थे। जब उन्हें पता लगा कि झाँसी के महाराज गंगाधरराव की प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया है तो उन्होंने प्रयत्न कर मनू का विवाह उनसे करा दिया। इस प्रकार मोरोपन्त की मनू और बाजीराव की छबीली झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई बन गई। सन् १८५१ में लक्ष्मीबाई को एक पुत्र

हुआ। पर दुर्भाग्य से वह शीघ्र ही मर गया। इसकी मृत्यु का गंगाधरराव को बड़ा धक्का लगा। वे बीमार पड़ गये। बीमारी गम्भीर होती चली गई। उन्होंने झाँसी की गद्दी का वारिस छोड़ जाने की इच्छा से अपने सम्बन्धी वासुदेवराव के पुत्र आनन्दराव को गोद लिया। गंगाधरराव ने सरकार के नाम से एक खरीता तैयार किया। उसमें लिखा था: "मेरी मृत्यु के साथ मेरे परिवार का अन्त न हो अत: मैंने, कम्पनी सरकार और मुझसे जो सन्धि हुई थी, उसकी दूसरी धारा के अनुसार आनन्दराव नामक बालक को गोद लिया है। इसका नाम दामोदरराव रखा गया है। यह लड़का मेरे ही कुटुम्ब का है और रिश्ते में मेरा नाती है। अगर इस बीमारी से मैं अच्छा न हुआ तो सरकार को चाहिए कि वह इस बालक पर अपनी कृपा बनाये रखे। जब तक मेरी पत्नी जीवित है तब तक उसे राज्य की स्वामी तथा पुत्र की माता माना जाय। राज्य का शासन उसीके हाथों में रहे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न होना चाहिये।" रुग्णशय्या पर पड़े काँपते हाथों से गंगाधरराव ने यह खरीता झाँसी के पोलिटिकल एजेण्ट मेजर एलिस के हाथों में दिया। २१ नवंबर, १८५३ को गंगाधरराव की मृत्यु हो गई।

गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ऐसे अवसर को कैसे जाने देता? वह तो प्रत्येक राज्य को समाप्त कर अंग्रेज़ी राज्य का विस्तार करने पर तुला ही हुआ था। उसने दामोदरराव को उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया। ७ मार्च, १८५७ को झाँसी अंग्रेज़ी राज्य में मिला ली गई। गंगाधरराव की

सम्पत्ति ज़प्त कर ली गई। डलहौज़ी ने महारानी के लिये पाँच हज़ार रुपयों की मासिक पेंशन निश्चित की। पहले तो उसने इसे लेना स्वीकार नहीं किया। पर परिस्थितियों से विवश होकर तथा लोगों के आग्रह करने पर उसने पेंशन लेना स्वीकार किया। महारानी से किला खाली करा लिया गया। उसे शहर के महल में आकर रहना पड़ा। महारानी ने डलहौज़ी के निर्णय के विरुद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने अपील करने के लिए उमेशचन्द्र बनर्जी को विलायत भेजा। अपील में लिखा था : "डलहौज़ी ने अन्यायपूर्वक झाँसी का राज्य अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया है, जो वास्तव में गोद लिए हुए पुत्र को मिलना चाहिए। गवर्नर-जनरल कहते हैं कि अंग्रेज़ों ने कृपापूर्वक झाँसी का राज्य गंगाधरराव को दिया था। पर यह बिलकुल झूठ है। झाँसी का राज्य हमें अंग्रेज़ों से नहीं मिला। हमारे पूर्वजों ने पेशवा के लिए जो पराक्रम किए थे उसके बदले में हमें यह राज्य मिला है। अतः इस राज्य को अपने राज्य में मिला लेने का अंग्रेज़ों को कोई अधिकार नहीं है।" पर इस अपील का कोई परिणाम नहीं निकला।

केवल राज्य लेकर अंग्रेज़ सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने हर प्रकार से महारानी को अपमानित करने में कुछ भी उठा न रखा। उनसे कहा गया कि वह अपने पति का ऋण अपनी पेंशन से अदा करे। महारानी ने उत्तर दिया कि कर्ज़ राज्य पर है, जिसने राज्य लिया है वह कर्ज़ की अदायगी के लिए ज़िम्मेवार है। जब दामोदरराव ७ वर्ष के हुए तो महारानी

ने उनके यज्ञोपवीत संस्कार करने के लिए गंगाधरराव की निजी सम्पत्ति से एक लाख रुपये माँगे । पर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर कालविन ने इस शर्त पर रुपये देना स्वीकार किया कि बालिग होने पर अगर दामोदरराव वह धन मांगे तो महारानी को उसे लौटाना पड़ेगा । इसके लिए महारानी को दो ज़मानतदार भी देने पड़े । अंग्रेज़ी शासन होते ही झाँसी में गोहत्याएँ होने लगीं । महारानी ने सरकार को लिखा कि झाँसी में गौहत्या नहीं होनी चाहिए । पर सरकार तो जान-बूझकर उसका अपमान करने पर तुली हुई थी । वह भला उसकी प्रार्थना क्यों स्वीकार करती ? इस प्रकार महारानी का आत्माभिमान और शौर्य अपमान की ठोकरों से जगाया जा रहा था ।

झाँसी में विद्रोह—

इस समय झाँसी में १२ नम्बर की पैदल सेना, १४ नम्बर की घुड़सवार सेना तथा कुछ गोलन्दाज़ थे । इस सेना में भी क्रान्तिकारी विचार फैल चुके थे । प्रत्येक सिपाही जानता था कि झाँसी में भी शीघ्र ही विद्रोह होने वाला है । पर अंग्रेज़ अफसरों को इसका पता न था । जून मास में विद्रोह के चिह्न प्रकट होने लगे । कई अंग्रेज़ अफसरों के बंगलों में आग लगा दी गई । इससे झाँसी के अंग्रेज़ चौकन्ने हो गए । स्थानीय सेना का अफसर गार्डन को विश्वास हो गया कि विद्रोह अब दूर नहीं । वह महारानी के पास सहायता माँगने पहुँचा । महारानी ने इन्हें सहायता देना स्वीकार किया । अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने अपनी सुरक्षा में ले

लिया तथा उनपर अपने विश्वसनीय पहरेदारों की नियुक्ति की। पर अंग्रेज़ों को महारानी पर पूर्ण विश्वास न था। कुछ दिनों बाद ही उन्होंने अपनी महिलाओं और बच्चों को महारानी के महल से लाकर किले में रखा।

जोखन बाग़ हत्याकाण्ड—

झांसी में ७ जून को शंखनाद किया गया। गार्डन ही क्रान्तिकारियों की गोली का प्रथम शिकार हुआ। और भी कई अंग्रेज़ मार डाले गए। किले को विद्रोही सिपाहियों ने घेर लिया। किले के भीतर भी जो भारतीय सेना थी वह भी अंग्रेज़ों के विरुद्ध थी। इस सेना ने कई बार किले का फाटक खोल देने का प्रयत्न किया। कुछ दिनों तक तो अंग्रेज़ किले में बैठकर अपनी रक्षा करते रहे। पर किले में रहनेवाली भोजन-सामग्री तथा बारूद समाप्त हो जाने पर अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण करने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया। कुछ दिनों तक तो महारानी क्रांतिकारियों से छिपाकर भोजन-सामग्री किले में भेजती रहीं। पर यह अधिक दिनों तक न चल सका। अन्त में अंग्रेज़ों ने क्रांतिकारियों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेज़ों को पकड़कर विद्रोही इन्हें जोखन बाग़ ले गए। वहाँ पर सभी अंग्रेज़ मार डाले गए। इस हत्याकाण्ड में ७५ अंग्रेज़ पुरुषों, १६ स्त्रियों तथा २३ बच्चों को प्राण खोने पड़े।

कई अंग्रेज़ लेखकों ने इस हत्याकाण्ड के लिए महारानी को दोषी माना है। पर महारानी इतनी उदार, दयावान तथा क्षमा-

शील थीं कि ऐसा निर्दय कृत्य करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इतिहासकार ने लिखा है कि "विश्वसनीय आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि इस हत्याकाण्ड के अवसर पर रानी का कोई कर्मचारी उपस्थित न था। यह सारा कर्म हमारे पूर्व कर्मचारियों ने ही किया है। घुड़सवारों के अफसर ने हत्या करने की आज्ञा दी थी तथा हमारी जेल का दरोगा इस हत्याकाण्ड में सबसे आगे था।"

इस हत्याकाण्ड के बाद विद्रोहियों ने खज़ाना लूट लिया। जेल के कैदी मुक्त किए गए। इसके उपरान्त वे महारानी से मिले तथा उनसे रुपये माँगने लगे। महारानी ने उन्हें अपने अलंकार देकर किसी प्रकार सन्तुष्ट किया। यह सब धन लेकर सिपाही दिल्ली की ओर रवाना हो गए। झाँसी से अंग्रेज़ी राज्य उठ गया। महारानी ने शासनसूत्र अपने सुदृढ़ तथा योग्य हाथों में लिए। दस माह तक उन्होंने अत्यन्त कुशलता से शासन किया। उसके इस शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी रही। अशान्ति फैलानेवालों को उसने कठोर दंड दिए।

झाँसी पर आक्रमण—

मध्यभारत की क्रांति को कुचलने के लिए सेनापति ह्यूरोज़ दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ रहा था। मार्ग में उसने रायगढ़, चन्देरी, सागर, बानपुर आदि स्थानों के क्रांतिकारियों को पराजित किया तथा १६ मार्च को झाँसी से चौदह मील दूर चंचलपुर गाँव में आ पहुँचा। इस समय चारों ओर से

अंग्रेजों की विजय के समाचार आ रहे थे। उसने सोचा कि झाँसी की रानी भला उसका क्या सामना कर सकेगी। उसे आशा थी कि वह एक-दो दिनों में ही झाँसी पर अधिकार कर लेगा। उसने महारानी के पास सन्देश भेजा कि वह मोरोपन्त ताम्बे, लक्ष्मणराव तथा लालू बक्षी के साथ निःशस्त्र होकर उसकी छावनी में उपस्थित हो। इस अपमानजनक सन्देश की उसने घृणापूर्वक अवहेलना की और उसने उत्तर में कहला भेजा कि वह रणक्षेत्र में ही उससे मिलेगी।

महारानी ने नगर तथा किले की रक्षा करने की व्यवस्था की। प्रत्येक बुर्ज पर तोपें चढ़ाई गईं। झाँसी के आसपास की भूमि वीरान कर दी गई ताकि अंग्रेज़ी सेना को रसद न मिल सके। इस समय अगर ग्वालियर और टीकमगढ़ अंग्रेज़ी सेना के लिए रसद न पहुंचाते तो ह्यू रोज़ की सेना संकट में पड़ जाती। दस दिनों तक भयंकर युद्ध होता रहा। दोनों ओर की तोपें गोलाबारी करती रहीं। महारानी मर्दाना वेश में युद्ध का संचालन कर रही थीं। इस युद्ध में महारानी ने जिस कुशलता और वीरता का परिचय दिया उसे देखकर ह्यू रोज़ भी चकित हो गया। झाँसी को सरलता से तथा अल्पकाल में जीत लेने के उसके मनसूबे मिट्टी में मिल गए।

झांसी की ओर तात्या—

इधर झाँसी का युद्ध हो रहा था, उधर तात्या टोपे अपनी सेना लेकर महारानी की सहायता के लिए आगे बढ़े चले आ रहे थे। इस समय अगर झाँसी की सेना और तात्या की सेना

एक-दूसरे से सहयोगपूर्वक एकसाथ दोनों ओर से अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण करतीं तो ह्यू रोज़ की सेना नष्ट हो जाती। पर दुर्भाग्य से यह न हो सका। ह्यू रोज़ को दोनों सेनाओं से अलग-अलग निपटने का अवसर मिल गया। वास्तव में इस समय अंग्रेज़ी सेना बड़े संकट में थी। "उसके सामने अपराजित किला खड़ा था। इसमें युद्ध के जोश से भरे हुए ग्यारह हज़ार वीर सैनिक थे। उनकी सहायता करने के लिए बीस हज़ार सेना आ पहुंची थी, जिसका अधिनायकत्व एक ऐसा व्यक्ति कर रहा था जो अंग्रेज़ों से घृणा करता था तथा दो बार कानपुर में अंग्रेज़ों को हराकर उत्साह से भरा हुआ था। यह एक ऐसी परिस्थिति थी जिसका सामना करने के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जिसमें विशेष साहस, दृढ़ निश्चय और उत्तरदायित्व ग्रहण करने की शक्ति हो। एक भी गलत कदम, एक भी गलत निर्णय घातक सिद्ध हो सकता था।"[१]

इस परिस्थिति में ह्यू रोज़ चिन्तित हो उठा। उसने झाँसी के कुछ सरदारों को घूस देकर अपनी ओर मिला लिया। उनके द्वारा उसने झाँसी के किले में ऐसी गड़बड़ी पैदा कर दी जिससे गोरी सेना पर एकसाथ दोनों ओर से आक्रमण न हो सके। सरदार दूल्हासिंह परदेशी तथा लालता-बादी इन स्वामी-द्रोहियों में प्रमुख थे।

ह्यू रोज़ ने किले के घेरे में थोड़ी-सी सेना छोड़ी। बाकी

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 112.

सेना लेकर वह तात्या का सामना करने के लिए बढ़ा। दो दिनों तक युद्ध होता रहा। दोनों ओर की तोपें भीषणता से गोले उगलती रहीं। ह्यू रोज़ की अनुशासित सेना के सामने तात्या की क्रांतिकारी सेना न टिक सकी। वह भाग खड़ी हुई। ह्यू रोज़ की सेना में सिल्वेस्टर नामक एक डाक्टर था। उसने लिखा है : "जिस समय पेशवा की सेना बाहर से उनकी (महारानी की सेना की) रक्षा करने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय किले से धावा कर हमारे मोर्चों को नष्ट क्यों नहीं किया गया, यह समझ में नहीं आता। हमारी पैदल सेना तथा गोलन्दाज़ अपने कामों में कितने ही कुशल क्यों न होते तब भी उनकी संख्या अधिक होने के कारण सफलता उन्हें ही मिलती।"[१] गालियन नामक अंग्रेज़ लेखक ने काल्पी में तात्या और महारानी में जो वार्तालाप हुआ था उसपर प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि जब तात्या ने महारानी से कहा कि जब हम अपनी सेना के साथ आपकी सहायता को आए थे और जब हमारी सेना तथा अंग्रेज़ी सेना में युद्ध आरम्भ हुआ उस समय अगर किले से गोले बरसाये जाते तो अंग्रेज़ों की एक न चलती—जीत हमारी होती। इसपर महारानी ने उत्तर दिया कि किले के लालताबादी नामक हवलदार ने यह कहकर हमें आक्रमण करने से रोका कि अंग्रेज़ वास्तव में आक्रमण नहीं कर रहे हैं। वे तो आक्रमण का बहाना मात्र कर रहे हैं ताकि हम लोग किले से बाहर निकल आएं।[२]

---

१. 'Compaign in Central India', page 101–2.

२. 'Rani', page 260.

इससे स्पष्ट है कि झाँसी की पराजय का प्रमुख कारण अंग्रेज़ी सेना की वीरता न थी वरन् झाँसी के कुछ सरदारों का स्वामी-द्रोह तथा उनकी धोखेबाज़ी थी।

महारानी काल्पी में—

तात्या की पराजय के समाचार से झाँसी में निराशा छा गई। अब ह्यू रोज़ ने भी किले पर ज़ोरदार आक्रमण आरम्भ कर दिया। तोपों के गोलों से झाँसी नगर में कई जगह आग लग गई। कई मकान ढह गए। सैकड़ों लोग मरने लगे। अंग्रेज़ गोलन्दाज़ों ने किले के कुएं पर गोले बरसाना आरम्भ किए। इससे किले के लोगों को पानी मिलने में कठिनाइयाँ होने लगीं। भोजन-सामग्री भी कम पड़ने लगी। एक गोला सीधा बारूदखाने पर आ गिरा। इससे बारूदखाना एक ज़ोर के धमाके के साथ उड़ गया। इसमें तीस पुरुष तथा आठ स्त्रियाँ मर गईं। एक दिन एक गोले ने किले के एक बुर्ज को ढहा दिया। महारानी ने रात के अंधेरे में ही उसकी मरम्मत कराके सबको आश्चर्य में डाल दिया। महारानी की तोपें भी अत्यन्त भयंकरता के साथ गोले उगलकर अंग्रेज़ी सेना का विनाश करती रहीं।

४ अप्रैल को अंग्रेज़ दीवाल फाँदकर नगर में घुस पड़े। दूल्हासिंह परदेशी की दगाबाज़ी से यह संभव हो सका। महारानी ने अनुभव किया कि किले की रक्षा करना अब संभव नहीं। रात को वह अपने कुछ विश्वस्त सरदारों के साथ घोड़े पर सवार हो दामोदरराव को पीठ में बाँधकर

अंग्रेज़ी सेना की पंक्तियों को चीरते हुए बाहर निकल आई। ह्यू रोज़ ने जब उसके घेरे से बाहर निकल जाने का समाचार सुना तो वह उसके साहस और वीरता से चकित हो गया। उसने लेफ्टिनेंट डाकर को उसका पीछा करने भेजा।

५ अप्रैल को अपना घोड़ा दौड़ाते हुए महारानी झाँसी से २१ मील दूर भांडेर नामक गाँव पहुँची। वहाँ उसने थोड़ा विश्राम किया। दामोदरराव को थोड़ा खिलाया-पिलाया। जब वह पुनः काल्पी के लिए रवाना होने वाली थी तो लेफ्टिनेंट डाकर वहाँ आ पहुंचा। महारानी ने तलवार खींचकर उसपर आक्रमण कर दिया। डाकर घायल होकर घोड़े से नीचे गिर पड़ा। महारानी ने काल्पी की ओर अपना घोड़ा दौड़ा दिया। दिन भर वह घोड़ा दौड़ाती रही। रात को वह सुरक्षित काल्पी पहुँच गई।

झाँसी के किले पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। इस समय अंग्रेज़ों ने झाँसी में रोंगटे खड़े करने वाले अत्याचार किये। हज़ारों लोग मार डाले गए। नगर में अनेक दिनों तक लूटमार होती रही।

काल्पी का संघर्ष—

इस समय काल्पी क्रांतिकारियों का एक प्रबल केन्द्र बन गया था। चारों ओर से क्रांतिकारी नेता तथा सेनाएँ यहाँ एकत्रित हो गई थीं। महारानी लक्ष्मीबाई, बानपुर के राजा मर्दनसिंह, शाहपुर के राजा, बांदा के नवाब अलीबहादुर, फरुखाबाद के नवाब तफ़ज्जुल हुसेन आदि अनेक राजा, नवाब,

ज़मींदार आदि अपनी-अपनी सेनाओं के साथ काल्पी आ गए थे। अंग्रेज़ों के विरुद्ध शीघ्र ही होने वाले संग्राम के लिए काल्पी में ज़ोरदार तैयारियां हो रही थीं। सैनिकों की प्रतिदिन कवायद होती। शस्त्रों के उपयोग की उन्हें शिक्षा दी जाती। कारखानों में तोपें ढाली जाने लगीं। गोले, गोलियां, बारूद आदि बनने लगे।

काल्पी में इस समय सब साधनों के होते हुए भी एक सर्वमान्य नेता के अभाव के कारण यह क्रांति-केन्द्र अधिक कार्यक्षम न सिद्ध हो सका। अगर इस समय यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति होता जो यहाँ एकत्रित विभिन्न स्थानों के क्रांतिकारी नेताओं और अनुयायियों को एकसूत्रता में बाँधकर एक निश्चित योजना के अनुसार उनसे काम लेता तो काल्पी का इतिहास कुछ और ही होता। विभिन्न क्रांतिकारी नेताओं की शक्तियों को एक महान् शक्ति में गूंथकर संगठित और प्रभावशाली ढंग से कार्य करनेवाले नेता के अभाव के कारण यह क्रांतिकेन्द्र निर्बल सिद्ध हुआ। अंग्रेज़ी शक्ति के सामने, इसी कारण, यह अधिक दिनों तक न टिक सका।

काल्पी में इस समय तीन ऐसे व्यक्ति थे जो इस केन्द्र का नेतृत्व ग्रहण कर सकते थे। पहिले थे रावसाहब, जो नानासाहब के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे। पर उनमें न तो संचालन करने की योग्यता थी और न नेतृत्व करने की क्षमता। यही कारण था कि काल्पी का सारा काम उनके नाम से होने पर भी उनके व्यक्तित्व अथवा प्रभाव का प्रत्यक्ष व्यवहार में कोई उपयोग न हो सका।

दूसरी व्यक्ति थीं महारानी लक्ष्मीबाई । इनमें नेतृत्व के सभी गुण—वीरता, साहस, व्यवहारकुशलता आदि प्रचुर मात्रा में उपस्थित थे । पर एक स्त्री होने के कारण क्रांतिकारी नेता इस वीरांगना के हाथों में युद्ध-संचालन का कार्य सौंपने को तैयार न थे ।

तीसरा व्यक्ति था तात्या टोपे । इनमें कार्यसंचालन का अद्भुत क्षमता थी । यह वीर थे, साहसी थे, दूरदर्शी थे तथा संकटकाल में भी कोई न कोई मार्ग ढूंढ़ निकालने की इनमें अद्भुत क्षमता थी । अगर इस समय काल्पी के क्रांतिकेन्द्र का सम्पूर्ण नेतृत्व इनके कुशल हाथों में होता और यदि सभी क्रांतिकारी नेता इनके आदेशों का पालन करते तो अंग्रेजी शक्ति का सफलतापूर्वक सामना करना असंभव न था । पर 'तात्या' राजवंश न था, इस कारण इनकी आज्ञा का पालन करना राजपरिवार के लोग अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल मानते थे । उनकी दृष्टि में तात्या आज्ञापालक हो सकते थे, आज्ञा देनेवाले नहीं ।

इस समय काल्पी में अनुभवी, दूरदर्शी और प्रतिभावान नेतृत्व न होने के कारण आपस का मतभेद भी चरमसीमा पर पहुँच गया था । तात्या के सर्वव्यापी प्रभाव को देखकर कई क्रांतिकारी नेता उनसे ईर्ष्या करने लगे थे । उनके मार्गदर्शन में काम करना वे अपमान समझते थे । इस आपसी विद्वेष से रावसाहब ने सारे सूत्र अपने हाथों में ले लिए । जब महारानी लक्ष्मीबाई ने रावसाहब से प्रार्थना की कि उन्हें एक

सेना दी जाए ताकि वे झाँसी पर आक्रमण कर उसे पुनः अपने अधिकार में कर सकें, तो रावसाहब ने उनके उत्साह और शौर्य की प्रशंसा की और कहा कि वे काल्पी में ही रहकर उनकी सहायता करें। महारानी को सेना न मिल सकी अतः वे निराश हो गई। इधर तात्या टोपे से भी सभी अधिकार ले लिए गए। इस प्रकार इस समय काल्पी में एकता का अभाव था।

झाँसी पर विजय प्राप्त कर ह्यू रोज़ का ध्यान काल्पी की बढ़ती हुई शक्ति की ओर गया। वह जानता था कि जब तक काल्पी क्रांतिकारियों के अधिकार में है तब तक अंग्रेज़ों के लिए संकट बना रहेगा। अतः उसने शीघ्र से शीघ्र काल्पी पर अधिकार करने का निश्चय किया। काल्पी पर दो प्रकार से विजय प्राप्त की जा सकती थी। एक तो तत्काल सीधा काल्पी पर निर्णायक आक्रमण करने से, अथवा सीधा आक्रमण करने के बजाय उसे चारों ओर से घेर लेने से तथा उचित अवसर आने पर फिर सीधा आक्रमण करने से। दूसरा मार्ग लम्बी अवधि का था। अतः ह्यू रोज़ ने काल्पी पर उसी समय सीधा आक्रमण करने का निश्चय किया। वह जानता था कि "काल्पी के सामने इस समय, जब गर्मी की ऋतु प्रायः समाप्ति पर थी और वर्षाऋतु आरम्भ होनेवाली थी, रुकने से सारे देश में पुनः विद्रोह फैल जाता और कानपुर भी संकट में पड़ जाता। अंग्रेज़ी सरकार के सेनापति की लम्बी रक्षा-पंक्ति पर पीछे से आक्रमण होने की संभावना हो जाती। दक्षिण के मराठे, अंग्रेज़द्वेषी अरब और रुहेले तथा दक्षिण के नानासाहब के

पक्षपाती विद्रोह की ज्वाला भड़का देते।"[१] इसी समय ह्यू रोज़ को समाचार मिला कि बानपुर और शाहगढ़ के राजा क्रान्तिकारियों से मिलने के लिए काल्पी की ओर बढ़ रहे हैं। उसने इन्हें रोकने के लिए मेजर ओर के अधिनायकत्व में एक सेना भेजी। बेतवा के पार दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। पास के जिगनी के राजा ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध उन राजाओं की सहायता की। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी सेना हार गई। बानपुर और शाहगढ़ के राजा अपनी सेना के साथ काल्पी पहुँचे।

अंग्रेज़ी सेना कानपुर की ओर बढ़ने लगी। कोंच से दस मील की दूरी पर लोहारी नामक एक किला था। सबसे पूर्व ह्यू रोज़ ने इस किले पर आक्रमण किया और एक घमासान संघर्ष के बाद उसपर अधिकार कर लिया। पूँछ नामक स्थान पर अंग्रेज़ी सेना ने अपना पड़ाव डाला।

कोंच का युद्ध—

ज्योंही रावसाहब को ह्यू रोज़ की सेना के काल्पी की ओर बढ़ने का समाचार मिला त्योंही उन्होंने भी उसका सामना करने की तैयारी आरम्भ कर दी। उन्होंने कोंच नामक स्थान में अपने मोरचे बनाए। पूँछ और कोंच के बीच चौदह मील का फासला था। इस भाग में अनेक छोटे-छोटे किले थे। ये सब किले तात्या के अधिकार में थे। तात्या ने अलग-अलग

---

१. मेजर ह्यू रोज़ द्वारा भेजी गई २२ जून, १८५८ की रिपोर्ट।
(Freedom Struggle in U. P., vol. III., page 395)

स्थानों पर लड़ने के बजाय एक ही मोरचे पर लड़ना उचित समझा। अतः उन्होंने मार्ग के सभी किलों को खाली कर दिया तथा कोंच में ही सेना को एकत्रित किया। जिस स्थान पर मोरचे बनाए गए थे वह युद्ध की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त स्थान था। इसके तीनों ओर जंगल और बगीचे थे जो रक्षा-पंक्ति का काम करते थे। बीच-बीच में अनेक बड़े-बड़े मंदिर थे जिनके चारों ओर मज़बूत दीवालों का कोट था। ये दीवालें तात्या की सेना के लिए सुदृढ़ मोरचों का काम देती थीं।

ह्यूरोज़ भी एक चतुर सेनानी था। वह समझ गया कि कोंच के सुदृढ़ मोरचे पर सीधा आक्रमण करना घातक होगा। अतएव उसने आक्रमण की चतुरतापूर्ण योजना बनाई। उसने मेजर ओर के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी, क्रान्तिकारी सेना के पीछे पहुँचकर उसपर आक्रमण करने के लिए भेजी। साथ ही उसने जंगल और बगीचों में छिपे हुए क्रान्तिकारी सेना को बाहर निकालने के लिए एक दूसरा सैनिक दल भेजा। इस प्रकार दोनों ओर से एकसाथ उसने आक्रमण किया। कुछ समय तक घमासान युद्ध होता रहा। मेजर ओर द्वारा पीछे से रावसाहब की सेना पर आक्रमण आरम्भ होते ही क्रान्तिकारी सेना को पीछे हटना पड़ा। इस समय तात्या ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक शत्रु से लड़ते हुए भी जिस अनुशासित और व्यवस्थित ढंग से अपनी सेना को पीछे हटाया उसकी अंग्रेज़ लेखकों ने भी प्रशंसा की है। "जिस प्रकार उनकी (तात्या की) सेना पीछे हटी उससे अधिक व्यवस्थित ढंग से कोई सेना पीछे नहीं हट सकती

थी।.........वह जल्दी में कोई काम नहीं करती थी। न तो कोई अव्यवस्था ही थी और न पीछे पहुंचने के लिए कोई भगदड़ ही थी। सब कुछ व्यवस्थित ढंग से हो रहा था। यद्यपि सेना का मोरचा दो मील का था, तथापि एक स्थान पर भी कोई विचलित होता नहीं दिखाई दिया। सिपाही गोली चलाते फिर भागकर पिछली कतार में खड़े सिपाहियों के पीछे खड़े हो जाते और अपनी बन्दूकें भरते। आगे के सिपाही फिर गोली चलाते और फिर वे बन्दूकें भरकर तैयार खड़े सिपाहियों के पीछे आ जाते।"[१] इस प्रकार बारी-बारी से गोलियां दागते हुए यह सेना काल्पी पहुंच गई। इस पीछे हटती हुई सेना का पीछा करने का साहस अंग्रेज़ी सेना को नहीं हुआ।

कोंच की हार से क्रान्तिकारियों के आत्मविश्वास को बड़ा धक्का लगा। इस हार के लिए वे एक-दूसरे को दोष देने लगे। पैदल सेना घुड़सवार सेना को ताने देती कि वह उन्हें छोड़कर भाग खड़ी हुई। झाँसी के घुड़सवारों पर दोषारोपण किए जाने लगे। उन्होंने उत्तर दिया कि वे तो अपनी महारानी की रक्षा में लगे हुए थे तथा वे उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाना चाहते थे। तात्या टोपे पर भी लांछन लगाए गए। अभी तक तात्या ने अंग्रेज़ों से तीन लड़ाइयाँ लड़ी थीं और तीनों में वे हार गए थे। अतएव काल्पी में उनके सेनापति होने की क्षमता पर खुलेआम अविश्वास प्रकट किया जाने लगा। इस प्रकार इस समय काल्पी में क्रान्तिकारियों

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 124.

के सभी दल एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने लगे। कोंच के युद्ध में रावसाहब ने सेनापतित्व का भार स्वयं संभाला था। तात्या और महारानी ने तो एक साधारण सैनिक की तरह इसमें भाग लिया।

अनुभवहीनता और दूरदर्शिता के अभाव के कारण कोंच के रणक्षेत्र में क्रान्तिकारी सेना टिक न सकी। रावसाहब ने समझा था कि सेना के सामने का मोरचा ही मज़बूत रखने से युद्ध अच्छी तरह लड़ा जा सकता है। सेना के दोनों बाज़ू तथा पिछले भाग को सुदृढ़ रखने की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। इसी कमज़ोरी का लाभ उठाकर ह्यू रोज़ ने सरलता से विजय प्राप्त कर ली। कोंच की पराजय के बाद महारानी लक्ष्मीबाई ने रावसाहब से कहा कि जब तक योग्य व्यक्तियों के हाथों में सेना की कमान नहीं सौंपी जाती तब तक विजय प्राप्त करना संभव नहीं। रावसाहव ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सेना के प्रमुख अफसरों को एकत्रित किया और उनसे देश और धर्म की रक्षा के लिए वीरता से लड़ने की अपील की। सभी उपस्थित लोगों ने यमुना का जल हाथ में लेकर अत्यन्त उत्साह से शपथ खाई कि वे या तो फिरंगियों को मार भगायेंगे अथवा इस प्रयत्न में अपने प्राण न्योछावर कर देंगे।

सेनापति ह्यू रोज़ काल्पी की इस गड़बड़ी से लाभ उठाना चाहता था। अपनी सेना के साथ वह काल्पी की ओर बढ़ता गया। कोंच और काल्पी का सीधा रास्ता छोड़कर वह एक दूसरे रास्ते से आगे बढ़ने लगा। रावसाहब ने कोंच और

काल्पी के सीधे रास्ते पर ही अपने मोरचे बनाये थे। इसी समय कानपुर की ओर से मेक्सवेल अपनी सेना के साथ ह्यू रोज़ की सहायता के लिए यमुना के पार काल्पी के सामने पहुंच गया। ह्यू रोज़ तथा मेक्सवेल ने मिलकर काल्पी पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

गलौली का युद्ध—

गलौली नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। इस युद्ध में अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण करने की योजना अत्यन्त चतुरता से बनाई गई थी। सबसे पूर्व रावसाहब तथा बांदा के नवाब ने अंग्रेज़ी सेना के बायें भाग पर ज़ोरदार आक्रमण कर दिया। उन्हें विश्वास था कि बायें भाग की सहायता के लिए दाहिने भाग के गोरे सैनिक अवश्य आएंगे। इस प्रकार दाहिना भाग निर्बल होते ही उसपर प्रबल आक्रमण कर दिया जाए। इस मुख्य आक्रमण का भार महारानी लक्ष्मीबाई को सौंपा गया था। ज्योंही दाहिने भाग से अंग्रेज़ सैनिक बायें भाग की सहायता के लिए गए त्योंही महारानी ने अपना आक्रमण आरंभ किया। आक्रमण का समय भी समझ-बूझकर दिन के दस बजे का निश्चित किया गया था क्योंकि मई मास होने के कारण इसके बाद भयंकर लू का चलना आरंभ हो जाता है। गोरी सेना इस लू में विशेष कार्यक्षम नहीं रह पाती। निदान निश्चित समय पर महारानी ने पैदल तथा घुड़सवार सेना से आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ों ने आक्रमणकारियों पर तोपों से गोले बरसाने आरंभ किए।

इस गोलाबारी में कई क्रान्तिकारी सैनिक मर गये। महारानी समझ गईं कि जब तक अंग्रेज़ी तोपें आग उगलती रहेंगी तब तक आक्रमण सफल नहीं हो सकता। महारानी ने अपना घोड़ा गरजनेवाली तोपों की ओर सीधा बढ़ा दिया। वे अपनी सेना के साथ सीधी अंग्रेज़ी तोपों की ओर बढ़ीं। गोरी सेना ने लाख प्रयत्न किया पर महारानी अपनी टुकड़ी के साथ आगे बढ़ती ही रहीं। महारानी की अद्‌भुत वीरता तथा साहस के सामने अंग्रेज़ी सेना के पैर उखड़ने ही वाले थे कि इसी समय अंग्रेज़ी सेना की सहायता के लिए ऊँटों का एक दस्ता यमुना पार से आ पहुँचा। इस ताज़ा दम ऊँट-सेना के आते ही अंग्रेज़ी सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। क्रान्तिकारियों के हाथों से जीती बाज़ी निकल गई। क्रान्तिकारी सेना भागकर काल्पी पहुंच गई। ह्यू रोज़ की सेना काल्पी की ओर बढ़ने लगी। काल्पी पर दो ओर से आक्रमण आरंभ हुआ। इधर से ह्यू रोज़ ने गोलाबारी आरंभ की, उधर यमुना पार से मेक्सवेल के तोपखाने भी काल्पी पर गोले बरसाने लगे। अब काल्पी सुरक्षित नहीं रह गई थी। क्रान्तिकारी सेना रात्रि के अन्धकार में काल्पी से निकल गई। २३ मई, सन् १८५८ को काल्पी पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

काल्पी जैसे सुदृढ़ और शक्तिशाली केन्द्र का इतनी सरलता से पतन हो जाना क्रांति के संगठन की निर्बलता का द्योतक है। इस समय काल्पी में बीस हज़ार सेना थी। ग्वालियर की सुरक्षित सहायक सेना भी थी। अनेक राजा, नवाब तथा ज़मींदार भी अपनी-अपनी सेना के साथ यहाँ उपस्थित थे।

युद्ध के आवश्यक सभी साधन—तोपें, बन्दूकें, गोले, गोलियाँ, बारूद आदि यहाँ थे। एक सुदृढ़ किला भी क्रांतिकारियों के हाथों में था। इसके भीतर बैठकर भी अगर वे अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग करते तो महोनों तक वे अंग्रेज़ी शक्ति को चुनौती दे सकते थे। पर यहाँ के क्रांतिकारी अंग्रेज़ों के एक साधारण आक्रमण का भी सामना न कर सके। क्रान्ति के भविष्य के लिए यह दुर्भाग्य की बात थी। डा० सिल्वेस्टर ने काल्पी की इस समय की स्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया है: "झाँसी की तरह यहाँ (काल्पी में) गड़बड़ हुई। यहाँ युद्ध से सम्बन्धित सभी सामान थे। बड़े गोले दागनेवाली दो बड़ी तोपें थीं। इनके अतिरिक्त १५ तोपें और थीं। यहाँ पर गोले और गोलियों का बहुत बड़ा संग्रह था। तोप के गोले और हथियारों की मरम्मत के अनेक कारखाने झोपड़ियों में चल रहे थे। यहाँ जितने औज़ार, हथियार, साँचे, हथौड़े आदि थे, वे सब विलायत में बने हुए थे। बन्दूकों की मरम्मत बहुत अच्छी तरह होती थी।...... वास्तव में विद्रोहियों का यह सबसे बड़ा शस्त्रागार था। अगर उनमें (विद्रोहियों में) रक्षा करने की क्षमता होती तो यह (काल्पी) इतनी सरलता से हमारे हाथ न आती।"[१]

१. The compaign in Central India, page 116-17.

ग्वालियर पर विजय

कोंच की पराजय के बाद ही तात्या समझ गए थे कि काल्पी का भविष्य आशाप्रद नहीं है। आपसी वैमनस्य, योग्य नेतृत्व का अभाव तथा सेना की अव्यवस्था आदि बातों से तात्या समझ गए कि अब काल्पी अधिक दिनों तक अंग्रेज़ी शक्ति का सामना नहीं कर सकेगी। पर तात्या की कर्तव्य-निष्ठा इतनी प्रबल तथा प्रखर थी कि वे इस निराशजनक परि-स्थिति में भी संघर्ष को जारी रखने के लिए अन्य क्षेत्रों की खोज में लगे हुए थे। कोंच के रणक्षेत्र से सीधे वे चुर्खी पहुँचे थे। चुर्खी जालौन से चार मील की दूरी पर स्थित है। इस समय इनके माता-पिता तथा परिवार के अन्य लोग यहीं पर एक संबंधी के यहाँ रहते थे। तात्या ने इन्हें काल्पी की परि-स्थिति बतलाई तथा इनसे कहा कि वे किसी अन्य स्थान पर चले जाएँ क्योंकि यह स्थान सुरक्षित नहीं रह गया है।

इसके उपरान्त तात्या अत्यन्त गुप्त रूप से ग्वालियर पहुंचे। उनके वहाँ पहुँचने का समाचार न तो ग्वालियर-नरेश को लगा और न उनके दीवान दिनकरराव को। उन्होंने महाराजा की सेना से सम्पर्क स्थापित किया। इस समय यह सेना महाराजा से असन्तुष्ट थी। इस सेना में अनेक पुरवैये (पूर्विया) लोग थे। इनपर महाराजा का विश्वास नहीं रह गया था। वे अपनी सेना से पुरवैयों को धीरे-धीरे निकालते जा रहे थे। सैनिक भी समझ गये थे कि उनका अधिक दिनों तक वहाँ रहना संभव नहीं है। तात्या ने इस असन्तोष से

लाभ उठाकर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। "थोड़े ही दिन ग्वालियर में रहकर तात्या ने समझ लिया कि राज्यक्रांति के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ वहाँ विद्यमान हैं। वे समझ गए कि इस नगर (ग्वालियर) के सामने (विद्रोही सेना का) आने का अर्थ था—उसपर विजय प्राप्त करना।"[१]

काल्पी के पतन के बाद भी क्रान्तिकारी सेना का संगठन छिन्न-भिन्न नहीं हो पाया था। इस कुशलता से वह रातोंरात वहाँ से हट गई कि अंग्रेज़ी सेना को उनके चले जाने का समाचार दूसरे दिन तक न मिल सका। दो-दो, चार-चार के छोटे दलों में यह सेना रात्रि में काल्पी से बाहर निकल गई। वहाँ से निकलने के पूर्व सेना को यह संकेत दे दिया गया था कि वे गोपालपुर में आकर एकत्रित हों। रावसाहब, महारानी लक्ष्मीबाई आदि गोपालपुर में निश्चित दिन आ पहुंचे।

क्रान्तिकारियों की दृष्टि से यह अत्यन्त निराशामय काल था। कानपुर, झाँसी, काल्पी आदि सभी प्रमुख क्रांतिकेन्द्र उनके अधिकार से निकल चुके थे। एक भी ऐसा स्थान नहीं बचा था जहाँ वे सुरक्षापूर्वक रह सकें। जब तात्या ग्वालियर से गोपालपुर पहुँचे तो वहाँ उपस्थित नेताओं ने भावी कार्यक्रम पर विचार किया। कुछ लोगों का मत था कि बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ना चाहिए। पर बुन्देलखण्ड अब सुरक्षित नहीं रह गया था। कुछ लोगों का मत था कि दक्षिण की ओर बढ़ा जाय। वहाँ उन्हें सहायता मिलने की पूरी

---

१. 'Eighteen Fifty Seven', page 292.

आशा थी। पर बिना एक शक्तिशाली सेना के दक्षिण की ओर बढ़ना लाभप्रद नहीं समझा गया। इस समय न तो उनके पास सुसंगठित और सुशिक्षित सेना ही थी और न युद्ध के साधन। उनकी तोपें, शस्त्रादि काल्पी में ही रह गये थे। तात्या ने अपना मत देते हुए कहा कि ग्वालियर की सेना हमारा साथ देने को तैयार है, पर ग्वालियर-नरेश अंग्रेज़ों का साथ छोड़ने को तैयार नहीं हैं। पर अगर हम लोग वहाँ जायेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। महारानी लक्ष्मीबाई ने तात्या का समर्थन किया और कहा कि पहिले ग्वालियर पर अधिकार किया जाय, वहाँ शक्तिशाली सेना भी मिलेगी, साथ ही युद्ध के अन्य साधन और शस्त्रास्त्र भी मिलेंगे ; इसके उपरान्त दक्षिण की ओर बढ़ना उचित होगा। यह मत सबने स्वीकार किया।

ग्वालियर-विजय—

जब ग्वालियर-नरेश जयाजीराव को पता लगा कि राव-साहब, तात्या टोपे, झाँसीवाली रानी, बाँदा के नवाब आदि सेना के साथ ग्वालियर की ओर बढ़ रहे हैं तो वे चिन्तित हो उठे। उन्होंने इनका सामना करने का निश्चय किया। छः हज़ार पैदल, डेढ़ हज़ार घुड़सवार तथा आठ तोपें लेकर वे इनका सामना करने के लिए मुरार से चार मील की दूरी पर आकर डट गए। पर महाराजा की सेना तो पहले ही क्रांतिकारियों के पक्ष में हो चुकी थी। ज्योंही रावसाहब की सेना आगे बढ़ी, त्योंही महाराजा ने अपने गोलन्दाज़ों को उस-

पर गोले बरसाने को आज्ञा दी। पहले तो गोलन्दाज़ों ने तोपें दागने का दिखावा किया, पर बाद में उन्होंने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। स्वत: महाराजा ने तोपें चलाने का प्रयत्न किया। पर इसी समय महारानी लक्ष्मीबाई ने तोपों पर अपनी घुड़सवार सेना के साथ आक्रमण किया। इसपर महाराजा ने अपनी पैदल तथा घुड़सवार सेना को आक्रमण करने की आज्ञा दी। ये दोनों सेनाएं आगे बढ़ीं। पर ज्योंही क्रांतिकारी सेना महाराजा की सेना के निकट पहुँची, त्योंही उसने उसपर गोली चलाने के बजाय उसके सिपाहियों से मित्रता से हाथ मिलाए। महाराजा यह सब देखकर भौंचक्के रह गए। उन्होंने अपने घोड़े को रणक्षेत्र से भगाया और आगरे की ओर रवाना हुए। रास्ते में उन्होंने धौलपुर में विश्राम किया। यहीं दिनकरराव तथा अन्य कई सरदार उनसे आकर मिले। सबको लेकर वे आगरा पहुंचे।

३१, मई सन् १८५८ को क्रांतिकारियों ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। किले पर भी पेशवा का झंडा लहराने लगा। १५० घुड़सवारों के साथ महारानी लक्ष्मीबाई ने नगर में प्रवेश किया तथा राजा के महल पर अधिकार कर लिया।

क्रांतिकारियों ने बहुत प्रयत्न किया कि जयाजीराव अंग्रेज़ों का साथ छोड़कर क्रांतिकारियों का साथ दें। इसी लिए ग्वालियर के निकट पहुँचते ही उन्होंने जयाजीराव तथा उनकी माता बायज़ाबाई को अत्यन्त नम्र स्नेहपूर्ण पत्र लिखे थे। उन्होंने इनमें लिखा था कि वे ग्वालियर पर अधिकार करने नहीं आए हैं और न वे यहाँ अधिक दिनों तक रहना ही चाहते हैं। वे

तो उनसे मिलकर यहाँ से चले जाना चाहते हैं। महाराजा तथा बायज़ाबाई ने ये पत्र गवर्नर-जनरल के मध्यभारत के एजेण्ट हेमिल्टन के पास भेज दिये। इन पत्रों का रावसाहब को कोई उत्तर नहीं दिया गया। जब बायज़ाबाई ग्वालियर से चली गईं तो रावसाहब ने उन्हें समझा-बुझाकर वापस लाने के लिये तात्या टोपे को भेजा। पर वे वापस आने के लिए तैयार न हुईं।

रावसाहब ने कड़ी आज्ञा दी थी कि ग्वालियर में लूटमार न की जाय। इतना ही नहीं, उन्होंने जयाजीराव के कर्मचारियों को आदेश दिया कि वे पहले की तरह अपने पदों पर कार्य करते रहें।

क्रान्तिकारी शासन—

ग्वालियर का शासन प्रायः पूर्ववत् ही चलता रहा। उच्च पदों पर रावसाहब ने अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को नियुक्त किया। दिनकरराव की जगह रामराव गोविन्द दीवान नियुक्त किए गए। अमीचन्द कोषाध्यक्ष बनाये गए। तात्या टोपे को सेनापति का पद प्रदान किया गया। तात्या सेना का संगठन करने में जुट पड़े। गाँवों से नौजवानों को भरती करने का काम कई मराठे सरदारों को सौंपा गया। जयाजीराव के अनेक सैनिक अफसर सेना के उच्च पदों पर नियुक्त किए गए।

अंग्रेज़ी सरकार के लिये ग्वालियर पर क्रांतिकारियों का अधिकार होने का समाचार निरभ्र आकाश से वज्रपात होने

के समान था। गवर्नर जनरल इस समाचार को सुनकर इतना घबरा गया कि उसने विलायत भेजी जानेवाली अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "अगर सिन्धिया (शिन्दे) विद्रोहियों से मिल जाता है तो कल ही मुझे बिस्तर लपेटना पड़ेगा।" ग्वालियर के रेज़ीडेण्ट मेकफर्सन ने लिखा था : "अगर ग्वालियर विद्रोहियों से मिल जाता तो क्या होता, इसका निश्चय करने के लिये नक्शे पर एक दृष्टिपात करना ही पर्याप्त है।"

इतिहासकार मलीसन ने लिखा है : "अगर ग्वालियर शीघ्र ही न जीता गया तो कितनी हानि होगी, इसकी कल्पना भी करना कठिन है। इसमें विलंब करने से तात्या टोपी, ग्वालियर की प्रबल राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति से तथा वहाँ की सम्पत्ति तथा युद्ध-सामग्री से और काल्पी की बची-खुची सेना की सहायता से देश-भर में मराठा-विद्रोह का, जिस बात में वह अत्यन्त चतुर और निपुण है, संगठन करेगा और दक्षिण की मराठा रियासतों पर पेशवा का झंडा लहराने लगेगा।"[१]

इस प्रकार ग्वालियर पर क्रांतिकारियों का अधिकार होते ही अंग्रेज़ों में तहलका मच गया तथा इस देश से अंग्रेज़ी सत्ता की समाप्ति के चित्र उनकी आँखों के सामने नाचने लगे।

अंग्रेज़ों द्वारा आक्रमण—

काल्पी की विजय के बाद सेनापति ह्यू रोज़ अवकाश ग्रहण करने के प्रयत्न में था। इतने में ४ जून, १८५८ को उसको

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 249–50.

समाचार मिला कि क्रांतिकारियों ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया है। वह चकित हो गया। उसे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि काल्पी की पराजय के बाद इतनी शीघ्रता से क्रांतिकारी ग्वालियर पर अधिकार कर सकते हैं। ग्वालियर जैसे साधन-संपन्न और महत्त्वपूर्ण स्थान पर क्रांतिकारियों के अधिकार हो जाने के कितने घातक परिणाम हो सकते हैं, इसकी कल्पना से वह सिहर उठा। ग्वालियर पर शीघ्र से शीघ्र अधिकार कर लेने की आवश्यकता को उसने अनुभव किया। वह यह भी जानता था कि शीघ्र ही वर्षा ऋतु आरम्भ होनेवाली है। अगर वर्षा आरम्भ हो गई तो फिर नदियों और नालों में बाढ़ आ जाएगी; उन्हें पार कर आक्रमण करना कठिन हो जाएगा। अतः उसने पुनः सेना की कमान सँभाली।

ग्वालियर का युद्ध—

सबसे पूर्व उसने मेजर ओर को शिवपुरी-ग्वालियर सड़क पर नज़र रखने के लिये भेजा ताकि क्रांतिकारी दक्षिण की ओर न बढ़ सकें। इसके बाद उसने कर्नल स्मिथ के पास चंदेरी में आदेश भेजा कि वह ग्वालियर से ५ मील दूर दक्षिण-पूर्व की ओर कोटा सराय पहुँचे। साथ ही उसने कर्नल रिंडले को आज्ञा दी कि वह आगरे से ग्वालियर की ओर बढ़े। वह भी स्वतः पूर्व की ओर से ग्यालियर की दिशा में रवाना हुआ। इस प्रकार ग्वालियर को चारों ओर से घेर लेने की व्यवस्था की गई।

१६ जून, १८५८ ई० को ह्यू रोज़ मुरार की छावनी से ५ मील दूर बहादुरपुर पहुँचा। उसने क्रांतिकारियों के मोरचों पर पैदल सेना द्वारा आक्रमण आरम्भ किया। तात्या टोपे ने भी अंग्रेज़ी सेना पर तोपों के गोले बरसाये। अंग्रेज़ी तोपखाने भी गोले बरसाने लगे। ह्यू रोज़ के आदेश पर अंग्रेज़ी घुड़-सवारों ने तात्या की सेना पर पीछे से हमला कर दिया। तात्या की यहाँ भी हार हुई। उन्हें रणक्षेत्र से पीछे हटना पड़ा।

अब अंग्रेज़ी सेना ग्वालियर की ओर बढ़ी। अंग्रेज़ों ने भी बड़ी चतुरता से जयाजीराव तथा उनके सरदारों को सेना के आगे रखा। जब ग्वालियर की सेना ने अपने महाराजा को अंग्रेज़ी सेना के सामने देखा तो उन्होंने, क्रांतिकारियों के बहुत कहने-सुनने पर भी, उनपर गोलियाँ चलाने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप क्रांतिकारी ग्वालियर की रक्षा का कोई उपाय न कर सके।

महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु—

इधर स्मिथ बिना विरोध के कोटा सराय तक आ पहुँचा। आसपास की पहाड़ियों पर क्रांतिकारियों ने तोपें लगा दी थीं। अंग्रेज़ी सेना के घुड़सावारों ने इन तोपों पर सीधा आक्रमण किया। क्रान्तिकारियों को अपनी तोपें पीछे हटानी पड़ी। अंग्रेज़ों की पैदल सेना अब आगे बढ़ी। क्रांतिकारी सेना थोड़ा पीछे हटी। इसी समय अंग्रेज़ी सेना के पिछले भाग पर सहसा आक्रमण कर दिया गया। क्रांतिकारियों ने अंग्रेज़ों

की रसद छीनने का प्रयत्न किया। पर स्मिथ ने सेना भेजकर रसद की रक्षा की। इस युद्ध में महारानी लक्ष्मीबाई वीरता से लड़ीं। वे अपनी सेना का नेतृत्व स्वतः घोड़े पर सवार होकर हाथ में नंगी तलवार लेकर कर रही थीं। उनके साहस, वीरता और पराक्रम ने अंग्रेज़ी सेना के छक्के छुड़ा दिये। वे जिस ओर जातीं, उधर अंग्रेज़ी सेना में दरार पड़ जाती। इसी समय क्रांतिकारी सैनिक घबराकर पीछे हटने लगे। अंग्रेज़ी सेना आगे बढ़ने लगी। महारानी ने अपनी घुड़सवार सेना की सहायता से बढ़ती हुई अंग्रेज़ी सेना को रोकने का प्रयत्न किया। पर उनके साथी भागने लगे। अतः उन्हें भी पीछे हटना पड़ा। अंग्रेज़ों के घुड़सवार भागने वाले क्रांतिकारियों का पीछा करने लगे। एक नाले के पास महारानी का घोड़ा रुक गया। उन्होंने घोड़े को नाले के पार कुदाने का प्रयत्न किया। इतने में उन्हें एक गोली लगी। साथ ही एक अंग्रेज़ घुड़सवार ने महारानी पर तलवार का वार किया। इस वार से उनका सिर फट गया, आँखें निकल आईं और उस वीराङ्गना का शरीर निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। १८ जून, १८५८ ई० को क्रांति की इस महान ज्योति को निर्वाण प्राप्त हुआ। उनके साथियों ने पास के एक बगीचे में चिता रचकर उनके शरीर का दाह-संस्कार किया। इस युद्ध में महारानी मर्दाने वेश में थीं अतः तीन दिनों तक अंग्रेज़ों को उनकी मृत्यु का पता ही न चला। जब ह्यू रोज़ को मृत्यु का समाचार मिला तो उसने कहा : "विद्रोहियों में अगर कोई जवांमर्द था तो वह झांसी वाली रानी थी।'

ग्वालियर की पराजय के बाद क्रांतिकारी सेना को भागना पड़ा। तात्या टोपे, रावसाहब, बान्दा के नवाब आदि बची हुई सेना के साथ उत्तर की ओर रवाना हुए। जनरल नेपियर उनके पीछे पड़ा हुआ था। जौरा अलापुर में पुनः एक मुठभेड़ हुई। क्रांतिकारी सेना पुनः भाग खड़ी हुई। नेपियर ने पीछा किया, पर वह उसे न पा सका।

२० जून, १८५८ ई० को अंग्रेज़ों ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। सर राबर्ट हेमिल्टन स्वतः ग्वालियर आया और उसने जयाजीराव को पुनः गद्दी पर बैठाया। जयाजीराव ग्वालियर के किले पर अधिकार करने एक बड़े जुलूस के साथ बढ़ रहे थे। इसी समय एक अत्यन्त रोमाञ्चकारी घटना हुई।

१९ जून को ही क्रांतिकारियों ने किला खाली कर दिया था। पर इनमें १३ वीर ऐसे थे जिन्होंने निश्चय किया कि जब तक वे जीवित हैं तब तक इस किले पर जयाजीराव का झंडा न फहरने पाएगा। क्रांतिकारियों के साथ ये वीर भी किले से बाहर निकल आये थे पर वे किले की रक्षा करने पुनः वापस लौट गये। इनके साथ दो स्त्रियाँ थीं। एक बच्चा भी था।

जब ग्वालियर-नरेश अंग्रेज़ी सेना के साथ किले के निकट पहुँचे तो उन्होंने समझा कि किला खाली है। पर एका-एक उनपर तोपों के गोले बरसने लगे। अंग्रेज़ी सेना चकित हो गई। लेफ्टीनेण्ट रोज़ नगर के कोतवाल को साथ लेकर उन १३ वीरों पर आक्रमण करने आगे बढ़ा। इन वीरों ने

समझ लिया कि उनका अन्त निकट है । उनके पास जो कुछ सोना, चांदी, ज़ेवर, रुपये आदि थे वे उन्होंने किले की दीवारों से नीचे फेंक दिये । फिर बुर्जों पर तोपें लगाकर वे आक्रमण-कारियों की राह देखने लगे । सेना के बढ़ते ही उनकी तोपें गरज उठीं । दो बार गोले फेंककर तीसरी बार तोप फट गई । अब अंग्रेज़ी सेना बिना रुकावट के आगे बढ़ने लगी । इन वीरों ने अंग्रेज़ों के हाथों में पड़ने के बजाय लड़ते-लड़ते मौत का आलिङ्गन करना ही उचित समझा । सबसे पहले उन्होंने दोनों स्त्रियों और बच्चे को अपने हाथों से समाप्त किया । फिर सिर पर कफन बाँधकर वे अंग्रेज़ी सेना पर टूट पड़े । इनमें से एक वीर ने आगे बढ़कर लेफ्टीनेण्ट रोज़ पर तलवार से आक्रमण किया । उसने रोज़ की कलाई और पैर तलवार के एक ही वार से काट डाले । परिणामस्वरूप लेफ्टीनेण्ट रोज़ की मृत्यु हो गई । अनेक गोरे सैनिकों की बलि लेने के बाद ही इन तेरह वीरों ने रणवेदी पर अपने प्राण समर्पित किये इसके बाद ही अंग्रेज़ी सेना किले में घुस सकी ।

ऐतिहासिक संघर्ष

ग्वालियर की पराजय तथा महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु के साथ क्रांति की सफलता की अंतिम आशा भी जाती रही । ग्वालियर-विजय के बाद, देश की आँखें इसी क्रांति-केन्द्र की ओर लगी हुई थीं । यहाँ सेना, धन, युद्ध-सामग्री आदि की

कोई कमी न थी। साथ ही यहाँ तात्या टोपे तथा महारानी लक्ष्मीबाई जैसे प्रतिभाशाली नेता विद्यमान थे। जहां क्रांतिकारियों के लिये ग्वालियर आशा का केन्द्र बन गया था, वहाँ वह अंग्रेज़ों के लिये भावी संकट का प्रतीक बन गया था। यही कारण है कि अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी पूरी शक्ति को एकत्रित कर ग्वालियर के विरुद्ध लगाने में विलम्ब नहीं किया। ग्वालियर के पतन के बाद क्रांतिकारी नेताओं के सामने अपनी जान बचाने का प्रश्न अत्यन्त विकराल रूप से उपस्थित हो गया था। अब यह स्वातंत्र्ययुद्ध आत्मरक्षा का युद्ध बन गया था।

जौरा अलापुर की पराजय के बाद तात्या ने अनुभव किया कि जनता की सहानुभूति, सहयोग और सहायता ही अब उनका एकमात्र सहारा रह गया है। अतएव उन्होंने लोगों का विश्वास प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न किया। आरम्भ में जब कभी तात्या का दल किसी गाँव के पास पहुँचता तो गाँव के रहने वाले लूटे जाने के भय से गाँव छोड़कर भाग जाते। तात्या ने रावसाहब के नाम से यह घोषणा की कि उनकी सेना लूटमार नहीं करेगी। सेना के लिये आवश्यक रसद वे बाज़ार-भाव से कुछ ऊँचे भाव पर ही खरीदेंगे। धीरे-धीरे तात्या के नाम का जो आतंक फैल गया था वह बहुत कुछ कम हो गया। लोग अब उनका विश्वास करने लगे तथा उनकी ओर श्रद्धा से देखने लगे।

इस समय तात्या के अनेक साथी उनका साथ छोड़ चुके थे। रामराव गोविन्द तथा रघुनाथसिंह लक्ष्मीबाई के अंतिम

आदेश के अनुसार उनके पुत्र दामोदर को लेकर किसी सुरक्षित स्थान पर चले गये थे। अनेक सिपाही निराश होकर अपने-अपने घरों की ओर रवाना हो गये थे। इस समय तात्या के पास न तो बड़ी सेना ही रह गई थी, न युद्ध के साधन और न धन। चारों ओर निराशा का अंधकार व्याप्त था। पर ऐसे संकटकाल में भी तात्या कर्मक्षेत्र से हटने को तैयार न हुए।

परिस्थिति के अनुसार, तात्या ने अपनी युद्धनीति बदली। अनुभव ने उन्हें बता दिया कि अंग्रेज़ों से मैदान के युद्ध में पार पाना कठिन है। अतः उन्होंने छापेमारी की नीति अपनाई।

ग्वालियर के युद्ध में विजय प्राप्त कर सेनापति ह्यू रोज़ ने अवकाश ग्रहण किया तथा बम्बई जाकर अपने पद पर काम करने लगे। इसके उपरान्त मध्यभारत की सेना की कमान चार भागों में बाँटी गई। प्रथम भाग की सेना ग्वालियर के किले में रखी गई। दूसरे भाग की मुरार की छावनी में। तीसरा भाग झाँसी में रखा गया। चौथे भाग की सेना शिवपुरी तथा गुना में रखी गई। अंग्रेज़ सैनिक समझने लगे थे कि विद्रोह की समाप्ति हो चुकी है। कुछ दिनों तक वे आराम और सुख से जीवन बिताने की आशा करने लगे थे। पर उनकी यह आशा निराशा में परिवर्तित हुई। क्रांति-कारियों में एक ऐसा व्यक्ति था जिसने परिस्थिति के सामने सिर झुकाना सीखा ही न था। "(ग्वालियर-विजय के पश्चात्) कुछ सप्ताह भी व्यतीत नहीं हो पाये थे कि मध्य-

भारत के नगरों, गाँवों और जंगलों में तात्या टोपे का नाम गूँजने लगा।"[1]

जोरा अलापुर में पराजित होकर तात्या अपनी बची-खुची सेना, रावसाहब, बाँदा के नवाब आदि कुछ व्यक्तियों के साथ भरतपुर की ओर भागे। कुछ दिनों तक तो अंग्रेज़ों को पता ही न लगा कि तात्या किधर गए हैं। ब्रिगेडियर शावर्स को, जो इस समय आगरा में था, यह सन्देह हुआ कि तात्या भरतपुर की ओर बढ़ रहे हैं। अतः वह तत्काल आगरे से एक सेना के साथ रवाना हुआ और भरतपुर के मार्ग को रोककर बैठ गया। तात्या को ज्योंही इस सेना का पता लगा, त्योंही उन्होंने अपनी दिशा बदल दी। समथर पहुँचकर अब वे पश्चिम की ओर जयपुर के लिये घूमे। जयपुर में उनसे सहानुभूति रखनेवाले अनेक व्यक्ति थे। वहाँ उन्हें सहायता मिलने की आशा थी। पालिटिकल एजेण्ट कैप्टन ईडन ने जब यह समाचार सुना तब उसने राबर्ट्स को आदेश दिया कि वह नसीराबाद से सीधा जयपुर पहुँचे। जब तात्या को इस बात का पता चला कि राबर्ट्स जयपुर पहुंच गया है तो उन्होंने पुनः अपना मार्ग बदला। अब वे दक्षिण की ओर बढ़ने लगे।

टोंक पहुँचकर तात्या ने वहाँ के नवाब वज़ीर मुहम्मदखाँ से सहायता माँगी। उसने इन्कार कर दिया। ६ जुलाई, १८५८ को तात्या ने टोंक पर आक्रमण कर दिया। तात्या का सामना करने के लिए नवाब ने अपनी सेना भेजी। पर

---

१. The History of Indian Mutiny, vol V, page 163.

स्वतः घबराकर अपनी गढ़ी के दरवाज़े बन्द कर उसमें छिपकर बैठ गया। नवाब की सेना तात्या की सेना से मिल गई। तात्या को ४ तोपें मिलीं।

अब कर्नल होम्स ने तात्या का पीछा करना आरम्भ किया। उसने बहुत प्रयत्न किया कि तात्या के आक्रमण से टोंक की रक्षा करे, पर वह सफल नहीं हुआ। टोंक की सेना और तोपें लेकर तात्या मधुपुरा और इन्द्रगढ़ पहुँचे। इस समय तात्या पर दो ओर से आक्रमण करने की तैयारियाँ हो रही थीं। एक ओर से राबर्ट्स तथा शिवपुरी की ओर से होम्स आगे बढ़ रहे थे। इस आक्रमण से बचने के लिए तात्या ने अपना मार्ग पुनः बदला। अब वे बून्दी पहुँचे। यहां के महाराना रामसिंह से उन्हें सहायता मिलने की आशा थी। पर तात्या के पीछे आनेवाली अंग्रेज़ी सेना के आने का समाचार सुनकर महाराणा का उत्साह ठंडा पड़ गया। तात्या को रसद देने से इन्कार कर उसने अपने किले का फाटक बन्द कर लिया। बून्दी से पाँच मील दूर चीनी नामक गाँव से तात्या ने ज़बर्दस्ती रसद प्राप्त की। अंग्रेज़ी सेना पीछे लगी हुई थी अतः तात्या बून्दी पर आक्रमण न कर सके। तात्या ने यह अफवाह फैला दी कि वे दक्षिण की ओर बढ़ रहे हैं। पर वास्तव में वे उदयपुर रियासत की ओर रवाना हुए थे। बहुत दिनों तक अंग्रेज़ी सेना को पता ही न चला कि तात्या किधर गये हैं। जब राबर्ट्स को ठीक पता चला तो वह पुनः तात्या का पीछा करने लगा। डबला नामक स्थान पर उसकी तथा तात्या की सेना में मुठभेड़ हुई। पीछे से होम्स भी बढ़ता चला

आ रहा था। इन दोनों अंग्रेज़ी सेनाओं के बीच फँस जाने के कारण तात्या की सेना अत्यन्त संकट में पड़ गई थी। पर तात्या ने बड़ी चतुरता से अपनी सेना को बिना हानि के बचा लिया। कुछ तोपों से उन्हें अवश्य हाथ धोना पड़ा।

१३ मार्च को तात्या का दल नाथद्वारा पहुंचा। राबर्ट्स की सेना पीछे पड़ी हुई थी। तात्या ने नाथद्वारा के मन्दिर में जाकर भक्तिभाव से दर्शन किये। मध्यरात्रि को तात्या को पता लगा कि अंग्रेज़ी सेना निकट आ पहुंची है। वे तो उसी समय वहाँ से रवाना होना चाहते थे पर उनकी सेना इतनी थकी हुई थी कि रात को कूच करना संभव न था। प्रातःकाल ही राबर्ट्स ने उनकी सेना पर आक्रमण कर दिया। कुछ देर तक दोनों ओर से गोलाबारी होती रही। राबर्ट्स की सेना आगे बढ़ती ही रही। अंत में तात्या तोपें वहीं छोड़कर अपनी सेना के साथ भाग खड़े हुए। कर्नल नेलर ने पन्द्रह मील तक उनका पीछा किया। तात्या एकाएक घूम पड़े तथा कर्नल नेलर का सामना करने के लिये तैयार हो गए। पर अब नेलर को आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। पीछे लौट जाने में ही उसने अपनी भलाई समझी।

तात्या का पीछा करते-करते राबर्ट्स हैरान हो गया। अंत में थककर नीमच के सैनिक अधिकारी कर्नल पार्क को उनका पीछा करने का भार सौंपकर वह वापस चला गया। पार्क ने यह बात निश्चित रूप से जानने का प्रयत्न किया कि तात्या अपनी सेना के साथ किस ओर गये हैं। आसपास के लोगों से उसे जो समाचार मिलते, वे परस्पर विरोधी होते थे।

कुछ लोग कहते कि चम्बल में बाढ़ आ जाने के कारण तात्या के लिये उसे पार करना कठिन है। अत: वे दक्षिण की ओर ही गये होंगे। पर इसी समय किसीने समाचार दिया कि तात्या चम्बल पार जाने के प्रयत्न में हैं। पार्क अपनी सेना के साथ चम्बल के तट पर आ पहुँचा। तब तक तात्या पार पहुँच चुके थे। पार्क ने तात्या की सेना को चम्बल-पार के जंगलों में गायब होते देखा। वह हताश हो गया। बाढ़ में चम्बल पार करना बड़े साहस का काम था। वह नीमच लौट आया। वहाँ आते ही वह बीमार हो गया।

चम्बल पार कर तात्या झालड़ा पट्टण पहुँचे। यहाँ का राणा अंग्रेज़ों का पक्षपाती था। उसने तात्या का सामना करने का निश्चय किया, पर युद्धक्षेत्र में पहुँचते ही उसकी सेना तात्या की सेना से जा मिली। तात्या को यहाँ ३० तोपें, बारूद, तोपें खींचनेवाले अनेक बैल तथा बहुत-सी युद्ध-सामग्री मिली। राणा का महल घेर लिया गया। अंत में राणा ने पन्द्रह लाख रुपये देने का वचन देकर किसी प्रकार अपनी जान बचाई। उसने ५ लाख रुपये उसी समय दे दिए तथा दस लाख रुपये दूसरे दिन देने का आश्वासन दिया। पर रात में ही वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। यह वर्षाऋतु थी, चम्बल नदी में बाढ़ आ जाने के कारण अंग्रेजों द्वारा आक्रमण होने का भय न था। अतएव तात्या ने कई दिनों तक झालड़ा पट्टण में विश्राम किया। तात्या ने अपनी सेना को तीन-तीन मास का वेतन बांट दिया। घुड़सवार को तीस रुपये तथा पैदल सिपाहियों को बारह रुपये प्रतिमास के हिसाब से वेतन मिला।

झालड़ा पट्टण में तात्या को शांतिपूर्वक विचार करने का थोड़ा अवसर प्राप्त हुआ। तात्या, रावसाहब तथा बान्दा के नवाब ने गंभीरतापूर्वक विचार कर इन्दौर की ओर बढ़ने का निश्चय किया। उन्हें आशा थी कि होलकर की सेना को पेशवा के नाम से अपने पक्ष में किया जा सकता है। तात्या ने अपने कुछ दूत इन्दौर भेजे ताकि वे वहाँ जाकर क्रांति के पक्ष का वातावरण तैयार करें। तात्या भी अपनी सेना के साथ इन्दौर की दिशा में रवाना हुए। मालवा स्थित मेजर जनरल मिचल ने इन्दौर का मार्ग रोकने के लिये कर्नल लोक-हार्ट को भेजा। साथ ही वह भी उसी दिशा में रवाना हुआ। राजगढ़ के पास लोकहार्ट, होप और मिचल की सेनाएं मिलीं। इनकी संयुक्त सेना तात्या का पीछा करने लगी। राजगढ़ पहुँचने पर मिचल ने कुछ दूर पर तात्या की सेना का पड़ाव देखा। इस समय रात आरम्भ हो गई थी। अतः मिचल ने दूसरे दिन प्रातःकाल आक्रमण करना स्थगित किया। प्रातःकाल उसने देखा कि रात्रि के अंधकार के साथ तात्या की सेना भी लुप्त हो चुकी है। तोपगाड़ियों की लीक तथा हाथी के पैरों के चिह्नों के सहारे मिचल की सेना ने तात्या की सेना का पीछा किया। कुछ आगे बढ़कर मिचल ने देखा कि तात्या की सेना मोरचे बाँधकर उसका सामना करने के लिये खड़ी है। थोड़ी देर तक घमासान होने के बाद तात्या की सेना २७ तोपें छोड़कर भाग खड़ी हुई। अब तात्या ने अपना रुख पूर्व की ओर किया और वे सिंरोज पहुँचे। इनकी सेना बहुत थक गई थी। अतः उन्होंने यहाँ ८

दिनों तक विश्राम किया।

तात्या की शक्ति को समाप्त करने में अंग्रेज़ सेनानी अभी तक असफल ही रहे। तात्या को घेरने की योजना अनेक बार अंग्रेज़ों ने बनाई। पर इन योजनाओं में एकरूपता कभी न आ सकी। इसका कारण यह था कि विभिन्न स्थानों के सैनिक अधिकारियों के पास इतने भिन्न और परस्पर-विरोधी समाचार आते थे कि सबकी योजनाएं अलग-अलग बनती थीं। श्रीमती हेनरी डेबर्ले, जो इस समय गूना में अंग्रेज़ी सेना के साथ थीं, लिखती हैं: "ब्रिगेडियर के पास तीन घण्टे में, तीन विभिन्न अधिकारियों से, तीन विभिन्न आदेश प्राप्त हुए। तार कट गये थे अतः वह इनमें से किसीसे सम्पर्क नहीं स्थापित कर सकता था। सर राबर्ट नेपियर चाहता था कि हम उत्तर की ओर बढ़ें। जनरल राबर्ट्‌स हमें पश्चिम की ओर भेजना चाहता था। जनरल मिचल हमें शीघ्र ही दक्षिण की ओर बढ़ने का आदेश दे रहा था।"[१] इससे स्पष्ट है कि तात्या के साहस; अद्‌भुत सूझ-बूझ तथा चतुरता के कारण अंग्रेज़ सेनानी, जो सुव्यवस्थित और अनुशासित कार्य करने के लिए प्रसिद्ध थे, कितनी गड़बड़ी और उलझन में पड़ गए थे। तीन मास तक लगातार, सुयोग्य सेनानियों के अधिनायकत्व में, सुशिक्षित तथा अनुशासित अंग्रेज़ी सेना की अनेक टुकड़ियाँ तात्या को घेर उसे पराजित करने के प्रयत्न में लगी रहीं पर उन्हें सफलता नहीं मिली।

---

१. 'Campaigning Experience in Rajpootana and Central India' Page 193.

इस समय वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी। आवागमन के मार्ग खुल चुके थे। अंग्रेज़ी सेना के अधिकारियों ने एक नवीन उत्साह और जोश से तात्या को चारों ओर से घेरकर उसपर आक्रमण करने की योजना बनाई। मिचल तो पश्चिम की ओर से उसका पीछा कर ही रहा था। इन्दौर और भोपाल मार्ग को रोके ब्रिगेडियर पार्क खड़ा था। उत्तर की ओर से कर्नल स्मिथ अपने दल के साथ आगे बढ़ रहा था। उत्तर-पूर्व से कर्नल लिण्डेल बढ़ता चला आ रहा था। इस प्रकार तात्या को घेरने तथा उसकी शक्ति को हमेशा के लिए कुचल डालने की पूरी तैयारी हो गई थी।

इसी समय तात्या को एक नवीन साथी मिला, जिसने आड़े समय में तात्या का साथ देकर उनके बल को बढ़ाया। यह मित्र था नरवर का राजा मानसिंह।

राजा मानसिंह—

ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत नरवर नामक एक रियासत थी। इसके अधिपति को राजा का पद प्राप्त था। मानसिंह के पिता की मृत्यु होने पर ग्वालियर-नरेश ने इस रियासत के एक बहुत बड़े भाग पर अधिकार जमा लिया। मानसिंह का स्वाभिमान इस अपमान को सह न सका। उसने अपने बारह हज़ार अनुयायियों के साथ पोहरी नामक किले पर आक्रमण किया तथा उसमें रहने वाली ग्वालियर की सैनिक टुकड़ी को मार भगाया तथा किले पर अधिकार कर लिया। इस समय ग्वालियर-नरेश अंग्रेज़ों के 'परम मित्र' थे। उनकी

सहायता के बल पर ही वे ग्वालियर पर विजय प्राप्त कर सके थे। शिवपुरी से एक अंग्रेज सेना जयाजीराव शिन्दे की सहायता करने दौड़ पड़ी। मानसिंह जनरल नेपियर से स्वतः मिला और उससे कहा कि उसका झगड़ा अंग्रेज़ों से नहीं है वरन् ग्वालियर-नरेश से है। पर नेपियर ने उसकी एक न सुनी और अंग्रेज़ी सेना ने पोहरी पर आक्रमण कर दिया। मानसिंह ने अंग्रेज़ी सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। २४ घंटों तक अंग्रेज़ो सेना किले पर गोले बरसाती रही। पर मानसिंह झुकने को तैयार नहीं हुआ। जब उसने अनुभव किया कि अंग्रेज़ी सेना के सामने उसका टिकना कठिन है तो वह अपनी सेना के साथ रात में क़िले से निकल गया। मानसिंह का चाचा अजीतसिंह भी उसके साथ था। राबर्ट्स ने मानसिंह का पीछा किया। विजयपुर के पास अजीतसिंह ने उसका सामना किया। यह संघर्ष बड़ा विकट हुआ। इस युद्ध में लेफ्टीनेन्ट फासेट मार डाला गया। कैप्टन मूर, लेफ्टीनेण्ट हेनबरी, लेफ्टीनेण्ट स्टिवर्ट आदि कई अंग्रेज़ अफसर घायल हो गये। इस युद्ध के बाद मानसिंह तथा अजीतसिंह तात्या की सेना से जाकर मिल गये।

सिरोंज से रवाना होकर तात्या ईसागढ़ पहुँचे। यह ग्वालियर के राज्य में था तथा यहाँ एक सुदृढ़ किला था। इस समय तात्या की सेना में पन्द्रह हज़ार सिपाही थे। ग्वालियर-नरेश जयाजीराव ने अपने अधिकारियों को यह आज्ञा दे रखी थी कि वे तात्या को कोई सहायता न दें। तात्या ने ईसागढ़ के अधिकारियों से कहा कि उनकी सेना के लिये

रसद खरीदने में वे उनकी सहायता करें। पर उन्होंने उन्हें किसी प्रकार की सहायता देने से इन्कार कर दिया। इस अपमानजनक व्यवहार से क्रुद्ध होकर तात्या ने ईसागढ़ पर आक्रमण कर उसे लूट लिया। यहाँ उन्हें ७ तोपें मिलीं।

तात्या ने अनुभव किया कि एक बड़ी सेना साथ लेकर इधर-उधर भागते फिरना सुरक्षित नहीं है। अतएव उन्होंने अपनी सेना को दो भागों में बांटा। एक दल रावसाहब के साथ तालबहट की ओर रवाना हुआ। इस दल के साथ ६ तोपें थीं। बची हुई सेना तथा ६ तोपों के साथ तात्या चन्देरी की ओर रवाना हुए। चन्देरी ग्वालियर रियासत में है। तीन दिनों तक वे इसे घेरे रहे। पर इसपर विजय न प्राप्त कर सके। इसके उपरान्त तात्या चन्देरी से २० मील दूर मुँगावली नामक स्थान पर पहुँचे। यहीं मिचल की सेना से उनकी सेना का सामना हुआ। गोले बरसाकर तात्या ने अंग्रेज़ी सेना को बड़ी हानि पहुँचाई। कई गोरे सैनिक मार डाले गये। तात्या ने अंग्रेज़ी सेना की दोनों बाज़ुओं पर एक साथ हमला कर दिया। मिचल संकट में पड़ गया। पर तात्या ने अपनी नीति के अनुसार अधिक समय तक अंग्रेज़ी सेना से भिड़ना उचित नहीं समझा। मिचल ने इसका लाभ उठाकर ज़ोरदार आक्रमण कर दिया। तात्या अपनी सेना के साथ भाग खड़े हुए। पर मिचल की सेना लड़ते-लड़ते इतनी पस्त हो गई थी कि वह तात्या की भागती हुई सेना का पीछा न कर सकी।

तात्या अब बेतवा पार कर ललितपुर पहुँचे। ललितपुर के डिप्टी कमिश्नर ने जब तात्या के वहाँ आने का समाचार

सुना तो वह वहाँ से भागकर बानपुर पहुँचा। यहीं रावसाहब पुन: तात्या से मिले। तात्या तो वहीं रह गये, पर रावसाहब का दल अब दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ने लगा। रावसाहब की सेना को बेतवा पार करने से रोकने के लिए स्मिथ अपनी सेना के साथ तैयार खड़ा था। दोनों सेनाओं में ज़ोरदार टक्कर हुई। यहाँ ५ अंग्रेज़ अफसर मार डाले गये। अंत में रावसाहब को भागना पड़ा। मिचल ने उनका पीछा किया पर उन्हें पा न सका।

चक्कर खाकर रावसाहब पुन: ललितपुर आकर तात्या से मिले। इस समय वे बड़े संकट में थे। चारों ओर अंग्रेज़ी सेनाएं लगी हुई थीं। इनसे अपनी रक्षा करने का प्रश्न उनके सामने था। तात्या ने सोचा कि नर्मदा के उत्तर का भाग अब सुरक्षित नहीं रहा। अत: उन्होंने दक्षिण की ओर बढ़ने का निश्चय किया। अपने वास्तविक उद्देश्य का पता अंग्रेज़ों को न लग सके अतः उन्होंने बेतवा के पार जाने का प्रयत्न किया। पर इस नदी पर लिण्डवेल पहरा दे रहा था। उसने इन्हें बेतवा को पार नहीं होने दिया। वहाँ से हटकर तात्या तालबहट पहुँचे। यहाँ उनकी सेना ने कुछ दिनों तक विश्राम किया। इसके बाद वे सीधे दक्षिण की ओर बढ़ने लगे। जब ये सागर के पास इटावा नामक स्थान पर पहुंचे तो इन्हें पता लगा कि मिचल की सेना उनके पीछे चली आ रही है। खुरई के पास दोनों सेनाओं की एक साधारण-सी टक्कर हुई। तात्या अपनी सेना के साथ जंगल में घुस गये।

राजगढ़ पहुँचने पर तात्या को पता लगा कि कर्नल चार्ल्स

बेलचर उनके दक्षिण के मार्ग को रोके खड़ा है। उन्होंने पुनः अपनी दिशा बदली। अब उन्होंने हुशंगाबाद से ४५ मील दूर सुरीला घाट से नर्मदा पार की। इस प्रकार वे नागपुर के इलाके में पहुंच गये। ज्योंही तात्या के नर्मदा पार करने का समाचार प्रकट हुआ, त्योंही अंग्रेज़ी सरकार घबड़ा उठी। वह अच्छी तरह जानती थी कि अगर कहीं तात्या महाराष्ट्र पहुंचने में सफल हो गये तो दक्षिण में क्रांति की ज्वाला सुलगने में देर नहीं लगेगी। पेशवा के साथ अंग्रेज़ों ने जो अन्याय किया था और उनके राज्य पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था, इसको दक्षिण के लोग अभी भूले न थे। वहाँ भी देश के अन्य भागों की तरह अंग्रेज़ों के विरुद्ध असंतोष व्याप्त था। अगर तात्या जैसा स्फूर्तिदायक सेनानी महाराष्ट्र के लोगों के बीच पहुँच जाता तो पेशवा के नाम से वे पुनः उठ खड़े हो सकते थे तथा अंग्रेज़ों के लिए महान संकट पैदा कर सकते थे। इस समय दक्षिण में अंग्रेज़ी सेना भी बहुत कम थी, क्योंकि वहां की सेना उत्तर के विद्रोह को दबाने में लगी हुई थी। अतः अंग्रेज़ों ने, तात्या महाराष्ट्र न पहुँच सकें, इसके लिये अपनी पूरी शक्ति और बुद्धि लगा दी थी।

नर्मदा पार कर तात्या मुलताई होते हुए नागपुर पहुँचे। ब्रिगेडियर हिल असीरगढ़ के पास नागपुर का मार्ग रोके खड़ा था। तात्या ने उधर बढ़ना सुरक्षित न समझा। इस समय तात्या का पुराना प्रतिद्वंद्वी ह्यू रोज़ दक्षिण की सेना की कमान संभाले हुए था। खान देश के मार्ग से कहीं तात्या महाराष्ट्र में न घुस आयें, अतः उसने खानदेश के मार्ग को रोकने के

लिये एक सेना भेजी। अब तात्या की सेना तथा महाराष्ट्र के बीच केवल सतपुड़ा पर्वतमालाएं ही रह गई थीं। अगर वे इन्हें पार कर लेते तो वे पेशवा के पुराने राज्य में पहुँच जाते। पर इन पर्वतमालाओं के सभी मार्गों पर अंग्रेज़ी सेनाएं लगी हुई थीं। निदान तात्या को पुनः उत्तर की ओर घूमना पड़ा। निमाड़ ज़िले के कारगुन नामक स्थान पर होलकर की दो सेनाएँ थीं। इन दोनों सेनाओं को तात्या ने अपने पक्ष में कर लिया। इन सेनाओं को साथ लेकर जब वे आगरा-बम्बई मार्ग पर पहुँचे, उन्हें अंग्रेज़ों का बहुत-सा सामान मिला जो बैलगाड़ियों द्वारा उत्तर की ओर भेजा जा रहा था। इस सामान को तात्या ने अपने अधिकार में कर लिया। गाड़ीवानों तथा गाड़ियों को भी उन्होंने अपने साथ ले लिया ताकि अंग्रेज़ों को बहुत समय तक इस सामान के लूटे जाने का पता न चले। मेजर संडरलैण्ड अपनी टुकड़ी के साथ पास में ही था। पर उसे भी इस घटना का समाचार न मिल सका। कुछ दिनों बाद उसे इसका पता लगा तो वह उस स्थान पर आया जहाँ सामान लूटा गया था। वहीं से उसने तात्या का पीछा करना आरम्भ किया। राजपुर के पास पहुँचने पर उसे तात्या की सेना दिखाई दी। पर ज्योंही वह आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा, त्योंही वह सेना गायब हो गई। उसने पीछा करना न छोड़ा। तीन मील की दूरी पर उसने देखा कि एक ऊँची चट्टान पर तात्या की सेना उसकी राह देख रही है। एक हल्की झड़प के बाद तात्या की सेना पुनः भाग खड़ी हुई। अब तात्या ने पुनः नर्मदा पार करने का प्रयत्न

किया। नर्मदा के उस पार अंग्रेज़ों की घुड़सवार सेना पहरा दे रही थी। पर ज्योंही इस सेना ने तात्या को अपनी ओर बढ़ते देखा, त्योंही वह भाग खड़ी हुई। इस समय तात्या के पास रसद नहीं रह गई थी। वे कहीं से इसे खरीदना चाहते थे। जब वे चिकला नामक गाँव पहुँचे तो गाँव के लोग डरकर भाग गये थे। सारा गाँव खाली पड़ा था। तात्या ने वहाँ की दुकान के ताले तोड़कर रसद एकत्रित की। वहाँ से वे राजपुर पहुँचे। वहाँ के राजा से इन्होंने तीन हज़ार नौ सौ रुपये वसूल किये।

दक्षिण पहुँचने के अपने प्रयत्न में असफल होकर तात्या ने बड़ौदा की ओर बढ़ने का निश्चय किया। बड़ौदा में भी उनके अनेक सहायक थे। उन्हें विश्वास था कि अगर वे वहाँ पहुँच जाते हैं तो होलकर की सेना उनका साथ देने को तैयार हो जायेगी। इस समय बड़ौदा में भी असंतोष फैला हुआ था। विद्रोह के भी चिह्न दिखाई देने लगे थे। सरकार ने कई ज़िले के लोगों से शस्त्र रखवा लिये थे। इस समय की बड़ौदा की स्थिति पर तत्कालीन रेज़ीडेण्ट सर आर० शेक्सपियर ने इन शब्दों में प्रकाश डाला है : "गुजरात की रक्षा करने तथा गायकवाड़ को दबाने की हममें शक्ति नहीं है। पर इस अशान्तमय परिस्थिति में गायकवाड़ को अपने वश में रखकर ही हम गुजरात की रक्षा कर सकेंगे।"[१] साथ ही उसने बड़ौदा

---

१. Source Material of the History of Freedom movement in India (Collected from Bombay Govt. Records. Vol. I, Page 194)

के सैनिक अधिकारी को पत्र लिखा : "हमारे साधन अत्यन्त सीमित हैं। अगर बड़ौदा में रहकर हमने वीर और साहसी शत्रु (तात्या) को इस नगर पर अधिकार कर अपनी खोई हुई मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त करने का पुनः अवसर दिया तो बहुत संभव है कि बंबई से सहायता आने के पूर्व ही वह (तात्या) इतनी शक्ति और प्रभाव प्राप्त कर ले कि वह गायकवाड़ को गद्दी से उतारने में सफल हो जाय।"[१]

चतुर मिचल तात्या के उद्देश्य को समझ गया। उसने पार्क को उनका पीछा करने के लिये भेजा। जब तात्या बड़ौदा से ५० मील दूर छोटा उदयपुर पहुँचे तो पार्क ने अचानक उन पर आक्रमण कर दिया। तात्या के सामने भागने के सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया था। इस पराजय से तात्या का बड़ौदा जीतने का स्वप्न मिट्टी में मिल गया। अब वे पुनः राजपूताना की ओर भागे। दक्षिण और बड़ौदा विजय की दोनों योजनाएं असफल हो जाने के कारण परिस्थितियाँ और भी प्रतिकूल हो गई थीं। ऐसे संकटपूर्ण जीवन से तंग आकर बान्दा के नवाब ने अंग्रेज़ों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया।

तात्या और रावसाहब अब भी मैदान में डटे रहे। बाँस-

१. Letter (No. 1191 of 1858) From Brigadier-General Shakespeare, Resident Baroda to Brigadier Johan, commanding Baroda, dated Baroda Residency, 28th Nov, 1858 (Political department).

वाड़ा के जंगलों में रहनेवाली भील आदि जंगली जातियों ने भी तात्या को परेशान कर डाला। वे सदा इन्हें लूटने के प्रयत्न में रहते थे। अंग्रेज़ सेनानायकों ने समझा कि अब तात्या को पकड़ना कोई कठिन काम नहीं। उन्होंने अपनी सेनाओं का जाल उनके चारों ओर इस प्रकार से फैलाया कि उनका बचना असम्भव हो जाय। जनरल राबर्ट्स पश्चिम की ओर डटा हुआ था। उत्तर में अरावली पर्वत के दर्रों पर नज़र गड़ाये मेजर राक बैठा हुआ था। पूर्व और दक्षिण-पूर्व की घाटियों पर कर्नल समरसेट पहरा दे रहा था। दक्षिण का मार्ग तो पहले ही बन्द किया जा चुका था। बांसवाड़ा के जंगलों में भी तात्या के चारों ओर एक दूसरा छोटा घेरा पड़ा हुआ था। तात्या के प्रमुख साथी भी एक-एक कर उनका साथ छोड़ते चले जा रहे थे। केवल रावसाहब ही उनके साथ थे। तात्या ने देवगढ़ के जंगलों में दो दिनों तक विश्राम किया। अपनी फैली हुई सेना को एकत्रित कर वे पुनः बाँसवाड़ा की ओर रवाना हुए। मार्ग में उन्हें ऊँटों का एक काफिला मिला जो अहमदाबाद से अंग्रेज़ी सेना के लिये सामान लिये जा रहा था। तात्या ने इस काफिले को लूट लिया। इस लूट का समाचार सुनते ही रतलाम से कर्नल समरसेट उस ओर रवाना हुआ। इसी समय तात्या अरावली पर्वत के सलम्बा नामक किले के सामने पहुँचे। यह किला उदयपुर राज्य में था। इस किले से कुछ रसद प्राप्त कर वे उदयपुर की ओर बढ़े।

अंग्रेज़ों को जब यह समाचार मिला तो मेजर राक उदयपुर के उत्तरी दर्रे पर आकर डट गया ताकि तात्या उदयपुर

न पहुँच सकें। इसी समय तात्या को पता लगा कि शाहज़ादा फीरोज़शाह उनकी सहायता के लिए आ रहा है। मानसिंह के भी आसपास होने के समाचार उन्हें मिले थे। इससे भी सहायता मिलने की आशा थी। निराशाजनक परिस्थिति में भी तात्या उत्साहपूर्वक कार्यक्षेत्र में डटे रहे।

प्रतापगढ़ के जंगलों से ज्योंही वे बाहर निकले, त्योंही राक की सेना से उनकी टक्कर हुई। तात्या ने उसकी सेना पर सीधा आक्रमण कर दिया ताकि उनके हाथी और रसद को दर्रे से पार निकल जाने का अवसर मिल सके। जब उनका सारा सामान सुरक्षित निकल गया तो तात्या वहाँ से मन्दसोर होते हुए जीरापुर पहुँचे। इस प्रकार वे पुनः ग्वालियर के निकट पहुँच गये। यहीं मेजर बेनसन ने एकाएक तात्या पर आक्रमण कर दिया। तात्या अपनी सेना के साथ भाग खड़े हुए। अब वे बारोद की ओर घूम पड़े। अब समर-सेट उनके पीछे पड़ा हुआ था। जीरापुर से आगे बढ़ते ही उसे पता लगा कि तात्या का पड़ाव सुबह वहीं था। उसने बड़ी तेज़ी से उनका पीछा किया और बारोद में उनकी सेना पर हमला किया। पर तात्या ने उसे भुलावे में डाला तथा वे कोटा राज्य के नहरगढ़ नामक स्थान की ओर रवाना हुए। यहीं उन्हें मानसिंह मिला। पड़ौन के जंगलों में दो दिनों तक आराम कर वे इन्द्रगढ़ पहुंचे। यहीं शाहज़ादा फीरोज़शाह उनसे आकर मिले।

तात्या के चारों ओर का घेरा और भी दृढ़ किया जा रहा था। उत्तर-पूर्व से नेपियर, उत्तर-पश्चिम से शावर्स, पूर्व से

समरसेट, दक्षिण-पूर्व से स्मिथ, दक्षिण से मिचल तथा दक्षिण-पश्चिम से बेनसन आदि योग्य और अनुभवी सेनानियों के अधिनायकत्व में अंग्रेज़ी सेनाएं तात्या को घेरती चली आ रही थीं। तात्या का गुप्तचर-विभाग इतना सुसंगठित और कुशल था कि उन्हें प्रत्येक सेना कि स्थिति और शक्ति का पूरा पता रहता था। इस कठोर घेरे से किसी का बचकर निकल जाना प्राय: असम्भव ही था। पर इस असम्भव को सम्भव बनाने की क्षमता तात्या में थी।

जब शावर्स को पता चला कि तात्या देवसा में हैं तो उसने होनर को उस ओर रवाना किया और स्वत: भी उसी ओर चल पड़ा। दुर्भाग्य से शावर्स के आने का पता तात्या को न लग सका। इस समय तात्या, फीरोज़शाह तथा रावसाहब भावी योजना बनाने में व्यस्त थे। इतने में शावर्स ने उनपर सहसा आक्रमण कर दिया। तात्या के अनेक सैनिक मार डाले गये। पर इस अचानक आक्रमण से भी तात्या अपनी सेना को कैसे और कहाँ निकाल ले गये, इसकी कल्पना शावर्स भी न कर सका। चारों ओर अंग्रेज़ी सेनाएं तात्या की राह देखते हुए खड़ी थीं। पर इनमें से किसी को पता लगे बिना तात्या अपनी सेना के साथ इस घेरे से निकलकर मारवाड़ पहुँच गये। वास्तव में सात-आठ अग्रेज़ी सेनाओं के बीच से अपनी, रावसाहब की तथा फीरोज़शाह की संयुक्त सेना को बचाकर निकाल लाने में वे किस प्रकार सफल हुए, यह एक महान आश्चर्य था। इनके इस अद्भुत कार्य के कारण कुछ अंग्रेज़ लेखकों ने उन्हें 'जादूगर' के नाम से पुकारा है।

अलवर होते हुए तात्या शिकार नामक स्थान पर पहुँचे। नसीराबाद से होम्स के नेतृत्व में तात्या के विरुद्ध एक सेना भेजी गई। होम्स ने तात्या पर इतना प्रबल आक्रमण किया कि उनको अपने घोड़े, ऊँट, शस्त्रादि सब छोड़कर भागने के लिये विवश होना पड़ा। इस पराजय से तात्या की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई। उनके सैनिक निराश हो गये तथा उनमें से अनेक उन्हें छोड़कर चल दिये। रावसाहब और फीरोज़शाह भी अपनी सेनाओं के साथ तात्या से अलग हो गये।

अत्यन्त निराश होकर तात्या पुन: पड़ौन के जंगल में पहुँचे। दस मास तक लगातार भागते-भागते तात्या चकनाचूर हो गए थे। उनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया था। अंत में उन्होंने अपने मित्र मानसिंह की संरक्षकता में जंगल में विश्राम करने का निश्चय किया। जब तात्या मानसिंह से मिले तो उसने इनसे कहा, "आपने सेना का साथ छोड़कर अच्छा नहीं किया।" तात्या ने उत्तर दिया, "मैं दौड़ते-दौड़ते थक गया हूँ। मैंने ठीक किया हो अथवा गलत, अब तो मैं आपके पास ही रहूंगा।"[१]

चार हज़ार सेना लेकर रावसाहब तात्या से अलग हो गये थे। वे अजमेर के पास कुशानी नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ होनर ने इनकी सेना पर आक्रमण किया। वहाँ से भागकर रावसाहब प्रतापगढ़ पहुँचे। सेमरसेट की सेना ने वहाँ से भी इन्हें भगा दिया। रावसाहब भी दौड़ते-दौड़ते तंग

---

१. 'History of Indian Mutiny', vol. v, page 256—57

आ गए थे। उनके सैनिक भी उन्हें छोड़ते चले जा रहे थे। ऐसी स्थिति में रावसाहब भी मैदान से हट गये। उन्होंने साधु का वेश धारण किया, और इधर-उधर घूमने लगे। १८६२ ई० में वे काश्मीर में गिरफ्तार कर लिये गये, तथा कानपुर में उन-पर मुकदमा चलाया गया, तथा वे फाँसी पर लटका दिये गये।

अजेय तात्या तथा उनके साथी

ग्वालियर की पराजय के साथ इस स्वातंत्र्य-संग्राम के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय की समाप्ति होती है और साथ ही एक अत्यन्त गौरवशाली तथा स्फूर्तिदायक परिच्छेद का आरंभ होता है। अभी तक क्रान्तिकारियों के सामने फिरंगियों की सत्ता को मिटा देने का एक ज्वलन्त उद्देश्य था। महारानी लक्ष्मीबाई की वीरगति के साथ क्रान्ति की शक्ति का ही मानो लोप हो गया। देश का वायुमंडल, अंग्रेज़ों की विजयध्वनि से गूंज रहा था। विभिन्न स्थानों में होनेवाली क्रान्तिकारियों की पराजयों ने देश में असहायभावना और निराशा का आतंकपूर्ण वातावरण उत्पन्न कर दिया था।

इसी अवसर पर महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें कहा गया था कि जो लोग शीघ्र ही अंग्रेज़ों के समक्ष, सरकार-विरोधी कार्य बन्द कर आत्म-समर्पण कर देंगे उनको क्षमा प्रदान की जायेगी। जिन लोगों ने अंग्रेज़ों की हत्याओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

कोई भाग न लिया होगा, केवल उन्हें विद्रोह करने के कारण दंडित नहीं किया जायेगा। क्षमा प्राप्त करने के इस तिनके का सहारा लेकर अनेक क्रान्तिकारियों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

पर इस निराशापूर्ण वायुमंडल में भी देश में एक ऐसा वीर था जिसकी तेजस्विता से तत्कालीन राजनीतिक आकाश पुनः जगमगा उठा था। वह अपने जीते जी क्रान्ति की अग्निशिखा को बुझने देना नहीं चाहता था। यह वीर था तात्या टोपे।

जून, १८५८ ई० से लेकर अप्रैल, १८५९ तक तात्या टोपे अंग्रेज़ों की प्रबल शक्ति से लगातार संघर्ष करते रहे। कभी उनके पास तोपें होतीं, हज़ारों की संख्या में सेना होती तथा विपुल युद्ध-सामग्री होती, तो कभी उनके पास एक भी तोप न रहती और न युद्ध-सामग्री का कुछ अंश ही रहता। सेना के नाम पर कुछ मुट्ठी-भर साथी ही उनके साथ रह जाते। 'लन्दन टाइम्स' के युद्ध-संवाददाता विलियम रसेल ने 'माई डायरी इन इण्डिया' में लिखा है : "हमारा योग्य मित्र तात्या टोपे इतना परेशान करने वाला तथा चालाक है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। गत जून मास से उसने मध्य-भारत को आन्दोलित कर रखा है। उसने छावनियों पर आक्रमण किये, खज़ाने लूटे और शस्त्रागारों को खाली कर लिया। उसने (कई) सेनाएँ एकत्रित कीं पर वे (सब) उसके हाथों से निकल गईं। उसकी गति दुधारा बिजली की तरह थी। हफ्तों वह ४० और ५० मील प्रतिदिन चला। उसने

दोनों ओर से नर्मदा पार की। वह हमारी सेनाओं के बीच से पीछे से गुज़रता था। रास्ते में चाहे पहाड़ हो, नदियाँ हों, खड्ड हों, घाटियाँ हों, दलदल हों, वह कभी पीछे, कभी आगे और कभी टेढ़े-मेढ़े रास्ते से आगे बढ़ता ही चला जाता था। कभी वह बम्बई से डाक लानेवाली बैलगाड़ी को ले भागता तो कभी किसी गांव को लूट लेता। चाहे आगे सेना हो, चाहे वह घेर लिया गया हो पर वह कभी पकड़ा नहीं जा सकता था।"

नवीन परिस्थितियों के अनुसार, तात्या को अपनी युद्ध-नीति में परिवर्तन करना पड़ा था। खुले मैदान में अंग्रेज़ों का सामना करना उनके लिये कठिन था। अतएव उन्होंने छापे-मारी की पुरानी रण-नीति अपनाई। इस नीति का अवलम्बन करने में उन्होंने ऐसी योग्यता, दृढ़ता और मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया कि दस माह तक ७–८ अंग्रेज़ी सेनाएं परेशान रहीं। मौका पाते ही वे अंग्रेज़ी सेना के पड़ावों पर टूट पड़ते। जब तक अंग्रेज़ी सेना संभलती तब तक तात्या की टुकड़ी जंगलों में लापता हो जाती थी। अनेक अंग्रेज़ सेनानियों को तात्या का पीछा करते-करते परेशान होकर मैदान से हट जाना पड़ा। कुछ बीमार हो गये, कुछ थककर चूर हो गये और कुछ निराश हो गये। डा० सिल्वेस्टर लिखता है : "कमान संभालनेवाला प्रत्येक नवीन सेनानायक यही समझता था कि वह शीघ्र ही तात्या को पकड़ लेगा, लम्बी-लम्बी मंज़िलें तय की जाती थीं। अफसर और सैनिक अपना सामान फेंक देते। यहाँ तक कि खीमे भी फेंक देते ताकि वे तीव्रगति से आगे

बढ़ सकें। वे ४० मील प्रतिदिन चलते थे। पर विद्रोही ५० मील प्रतिदिन चलते थे। अंत में हमारे घोड़ों की पीठ छिल जाती थी। ८–१० दिनों का विश्राम आवश्यक हो जाता था। फिर एक नया अफसर सी. बी. तथा तात्या का सिर प्राप्त करने की आकांक्षा लेकर आता। उसके साथ नये ऊँट होते तथा ताज़ादम सेना होती। ······(तात्या का) पीछा करने में आश्चर्यजनक शक्ति लगाई गई। पर पीछा करनेवालों तथा पीछा किये जानेवालों के लिये मार्गों अथवा नदियों की आवश्यकता न थी। वे चलते रहते थे जब तक पस्त न हो जाएं। कभी-कभी कोई भाग्यशाली अफसर भगोड़ों के पिछले भाग तक पहुँच जाता था तथा जो लोग मिलते थे उन्हें काट डालता था। पर ऐसा होना घोर जंगल में ही संभव था। उनके (तात्या के) पास ठीक खबरें रहती थीं। जब कोई (अंग्रेज़ी) सेना पास होती थी तो वे मैदान में नहीं आते थे। अपने मित्र कहलानेवाले राजाओं की रियासतों में (भी) हमें जो समाचार मिलते वे विश्वसनीय नहीं होते थे। लोगों की सहानुभूति हमारे विरोधियों के साथ थी।"[१]

अंग्रेज़ सेनानी सदा ऐसे अवसरों की ताक में रहते थे जब वे तात्या की सेना पर आक्रमण कर उनकी सेना को नष्ट कर सकें। पर ऐसे अवसर उन्हें यदा-कदा ही मिलते थे। अगर आसपास कहीं अंग्रेज़ सेना रहती तो तात्या की सेना का पड़ाव घोर जंगलों में सुरक्षित स्थान में रहता। "जब

१. 'Revolt in Central India', page 235.

कभी उनपर आक्रमण होता था तो वे छोटे-छोटे दलों में विभाजित हो जाते ताकि भागने में सरलता हो। उनका संकेत का एक पेड़ होता था, जहाँ कुछ ही घंटों में वे पुनः एकत्रित हो जाते थे। एक बार तो उन्होंने (तात्या ने) उसी स्थान पर शाम को पड़ाव डाला जहाँ से प्रातःकाल अंग्रेज़ी सेना ने पड़ाव उठाया था। हमारी घुड़सवार सेना के सर्वोत्तम अफसर पीछा करते थे पर भागने में निपुण (तात्या को) नहीं पकड़ पाते थे। उसको (तात्या को) तो तब तक कोई न देख सका जब तक कि मानसिंह ने धोखा देकर उसे हमारे सुपुर्द नहीं किया।"[१]

इन दस महीनों में कई संघर्षों में तात्या अनेक बार पराजित हुए। उनको मैदान से भगाकर, अंग्रेज़ सेनानियों ने अपने अधिकारियों के पास कई बार रिपोर्ट भेजी कि तात्या पूर्ण रूप से हार गये हैं तथा अब उनका उठकर खड़ा होना अत्यन्त कठिन है। इस प्रकार की रिपोर्ट रवाना करने के तुरन्त बाद ही उन्हें समाचार मिलता कि तात्या अपनी सेना के साथ पास ही घूम रहे हैं। वे झुंझला उठते। उनका सारा विजयोल्लास समाप्त हो जाता। उन्हें पुनः तात्या का पीछा करने के लिये बाध्य होना पड़ता।

वास्तव में जनता की सहानुभूति तथा सहायता के बल पर ही तात्या प्रायः एक वर्ष तक अंग्रेज़ी सेनाओं को

---

१. Recollection of Campaign in Malwa and Central India, (J. S. sylvester), page 75.

चुनौती देते रहे। देशी राज्यों के प्राय: सभी शासक अंग्रेजों के पक्षपाती थे। पर उनकी प्रजा तथा सेनाओं के हृदय तात्या के साथ थे। लोग उन्हें, फिरंगियों की सत्ता मिटाने के राष्ट्रीय संकल्प के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में देखने लगे थे। यही कारण था कि लोग उनकी ओर आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे। "यह स्पष्ट है कि जहां कहीं तात्या जाते हैं वहाँ के राजाओं की सेना तोपखानों के साथ आकर उनसे मिल जाती है।"[१] पर ब्रिटिश-शासित भाग में इस प्रकार की सहायता मिलना संभव नहीं था। इसीलिए वे इन भागों से दूर रहने का प्रयत्न करते थे। वे देशी राज्यों की सीमा में ही घूमा करते थे।

प्रबल ब्रिटिश साम्राज्य के ८–१० योग्य और अनुभवी सेनानी सुशिक्षित, अनुशासित और सर्वसाधन-सम्पन्न सेनाओं के साथ एक ऐसे व्यक्ति की शक्ति को कुचलने में प्राय: एक वर्ष तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करते रहे जिसके पास न सुशिक्षित सेना थी, न युद्ध के साधन और न सुरक्षापूर्वक रहने का कोई स्थान। पर यह वीर बार-बार पराजित होने पर भी अंत तक अपराजित ही रहा। ब्रिटिश सैनिक शक्ति तात्या की शक्ति को नष्ट करने में असफल रही।

---

१. Report from W. C. Erskine, Commissioner Jabbulpur Division to William Muir, Secretary Gov. of N. W. F., dated 25th September 1858. (Freedom Struggle in U. P. vol., III, page 501

फीरोज़शाह—

इनका जन्म सुप्रसिद्ध मुगल-राजवंश में हुआ था। सन् १८५७ के मई मास में मक्का की यात्रा कर बंबई में ये जहाज़ से उतरे। उस समय देश में अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की आग फैलने लगी थी। जब उन्होंने सुना कि दिल्ली के लालकिले पर मुगल-सम्राट् का झंडा पुनः फहरने लगा है तो फीरोज़शाह बहुत प्रसन्न हुए। स्वातंत्र्य-संग्राम में भाग लेने के लिये वे शीघ्रता से दिल्ली की ओर रवाना हुए। मार्ग में मालवा के मन्दसोर नामक स्थान के क्रान्तिकारियों ने इनसे प्रार्थना की कि वे वहीं रहकर उनका नेतृत्व करें। यहाँ उन्होंने एक क्रान्तिकारी राज्य की स्थापना की तथा अपने को नवाब घोषित किया। जब क्रान्तिकारियों ने आगरे पर आक्रमण किया तो उनके आग्रह से वे भी साथ में रहे। यहाँ असफल होकर वे रीवाँ पहुँचे। बाद में फरुख़ाबाद पर आक्रमण कर उसपर अधिकार कर लिया। जीरन नामक स्थान पर इन्होंने एक अंग्रेज़ी सेना को पराजित किया। जब अंग्रेज़ों ने फरुखाबाद पर पुनः अधिकार जमा लिया तो वे वहाँ से झाँसी आये। महारानी लक्ष्मीबाई ने इनकी बड़ी सहायता की। यहाँ से फीरोज़शाह एक बड़ी सेना के साथ लखनऊ पहुँचे। लखनऊ के युद्ध में भी इन्होंने भाग लिया। लखनऊ के पतन के बाद मौलवी अहमद उल्लाशाह के साथ इन्होंने शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया। जब नानासाहब, हज़रत बेगम, खान बहादुर आदि क्रान्तिकारी नेता नेपाल की सीमा में आश्रय की खोज में गये तो फीरोज़शाह पुनः घूम पड़े। अवध

से लेकर राजस्थान तक उनकी यह यात्रा वास्तव में आश्चर्य-जनक थी। जिस मार्ग से वे आये उसके आसपास कई अंग्रेज़ी सेनाएं थीं। इन सेनाओं को फीरोज़शाह को रोकने का संकेत मिल चुका था। पर इस वीर की प्रगति रोकने में, प्रयत्न करने करने पर भी अंग्रेज़ी सेनाएं सफल न हो सकीं। वे राजगढ़ आकर तात्या टोपे से मिल गये।

शिकार की पराजय के बाद फीरोज़शाह ने तात्या का साथ छोड़ दिया। नसीराबाद में कर्नल होम्स ने इनकी सेना पर आक्रमण किया। इससे इनकी सेना तितर-बितर हो गई। निराश होकर फीरोजशाह ने अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण करने का विचार किया। पर वे अपनी गतिविधि पर कोई बन्धन स्वीकार करने अथवा अपने साथियों को निःशस्त्र करने को तैयार न थे। अंत में फीरोज़शाह ने अपमानजनक शर्तों पर आत्मसमर्पण करने से इन्कार कर दिया।

देश में इनका रहना सुरक्षित नहीं रह गया था अतः वे देश के बाहर चले गये। कई मुस्लिम देशों में होते हुए वे मक्का पहुँचे। यहीं पर उन्होंने अपने जीवन के शेष दिन अत्यन्त संकट में बिताये। ७ दिसम्बर, सन् १८७७ को यहीं इनकी मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के बाद गवर्नर-जनरल ने इनकी बेवा बेगम को १०० रुपये मासिक पेंशन प्रदान की।

बान्दा के नवाब अलीबहादुर—

बान्दा के नवाब अलीबहादुर बाजीराव (प्रथम) को प्रेमिका मस्तानी के वंश में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने भी १८५७ की

क्रान्ति में बड़े उत्साह से भाग लिया। यह नाना साहब पेशवा को अपना स्वामी मानते थे। सन् १८५७ में देश के अन्य भागों की तरह बान्दा में भी अंग्रेज़ों के विरुद्ध असन्तोष फैला हुआ था। यहाँ का सिविल अफ़सर मेन बड़ा ही चतुर तथा दूरदर्शी था। उसने संकटकाल आने पर अंग्रेज़ों की रक्षा करने की व्यवस्था करना आरंभ किया। बान्दा के नवाब पर उसका पूर्ण विश्वास था। उनसे सहायता मिलने की उसे पूरी आशा थी। उसने अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों को नवाब के महल में रखा तथा वहाँ गोरे सैनिकों का पहरा बैठाया।

कानपुर के विद्रोह का समाचार आते ही बान्दा की सेना में भी विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे। सेना के अफ़सर बेनेज़ ने सैनिकों को निःशस्त्र करना चाहा। नवाब के सैनिक भी इस निःशस्त्रीकरण में सहायता लेने के लिये बुलाये गये थे। पर वे विद्रोही सैनिकों से जा मिले। परेड के मैदान से अंग्रेज़ों को भागना पड़ा। बान्दा में भी विद्रोह आरंभ हो गया। अंग्रेज़ी शासन की समाप्ति पर नवाब ने शासन की बागडोर संभाली। उन्होंने बान्दा के अंग्रेज़ों के प्राणों की रक्षा की। उन्होंने बान्दा में हत्याकाण्ड नहीं होने दिया।

ब्रिगेडियर जनरल व्हिटलाक ने बान्दा पर आक्रमण किया। नवाब ने उसका डटकर सामना किया, पर अंत में उन्हें बान्दा से भागना पड़ा। यहाँ से वे सीधा काल्पी पहुंचे। नवाब के महल में बहुत बड़ी सम्पत्ति अंग्रेज़ों के हाथ लगी। काल्पी में उन्होंने तात्या से मिलकर क्रान्ति-युद्ध जारी रखा। वे तात्या के साथ छोटा उदयपुर तक रहे। जब क्रान्ति की सफलता की कोई आशा नहीं

रह गई तो नवाब ने महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र के अनुसार अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हें सरकार ने क्षमा प्रदान की तथा ४ हज़ार रुपयों की मासिक पेंशन स्वीकार की।

बुन्देलखण्ड की क्रान्ति में नवाब अलीबहादुर को एक विशेष स्थान प्राप्त है।

गिरफ्तारी और फाँसी

अंग्रेज़ लेखकों ने तात्या की गिरफ्तारी, उनके मुकदमे तथा उन्हें दी गई फाँसी का रोमाञ्चकारी वर्णन किया है। मेजर मीड ने, जिसका इन घटनाओं में प्रमुख हाथ था, इनका अत्यन्त मार्मिक और रोचक वर्णन किया है। प्रचलित इतिहास में इन घटनाओं को जो रूप प्राप्त है वह इस परिच्छेद में दिया गया है।

विगत १० मास के अनुभवों के आधार पर अंग्रेज़ अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तात्या का दमन करने में केवल सैनिक शक्ति सफल नहीं हो सकती। इस समय मध्यभारत की सेना की कमान सर राबर्ट नेपियर के हाथों में थी। वह चतुर और योग्य सेनानी था। उसने तात्या को अंतिम रूप से पराजित करने के लिए अन्य मार्गों का अवलंबन करने का निश्चय किया। इसी समय उसे समाचार मिला कि शिकार के रणक्षेत्र में पराजित होकर तात्या पाड़ौन के जंगलों में कहीं

छिपे हैं। वह यह भी जानता था कि तात्या की सेना छिन्न-भिन्न हो चुकी है। प्रतीकार करने की उनकी शक्ति प्रायः नष्ट हो चुकी है। अतएव उसके मन में तात्या को जीवित पकड़ने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। अपनी इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उसने योजना बनाना आरम्भ किया।

नेपियर जानता था कि तात्या जैसे पराक्रमी व्यक्ति को गिरफ्तार करना सरल काम नहीं है; वह यह भी जानता था कि जब तक तात्या का कोई साथी उसका सहायक नहीं होता तब तक तात्या के निकट तक पहुँचना संभव नहीं। अंत में बहुत विचार करने पर उसकी दृष्टि मानसिंह पर स्थिर हुई। उस समय मानसिंह भी पाड़ौन के जंगलों में छिपा हुआ था। उसकी भी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। पड़ौन के जंगल उसकी रियासत के ही भाग थे। वहाँ के लोग उस समय भी मानसिंह के प्रति स्वामिभक्त थे। अतः वहाँ के लोगों से मानसिंह अथवा तात्या के विरुद्ध सहयोग की आशा करना व्यर्थ था। नेपियर ने मानसिंह को वश में करने का उत्तरदायित्व घुड़सवार सेना के चतुर अफसर मीड को सौंपा। मीड ने मानसिंह के चारों ओर अपना जाल फैलाना आरम्भ किया। सबसे पूर्व उसने पिण्डारियों के नेता नारायणसिंह को अपनी ओर मिलाया। वह उस भाग का एक प्रभावशाली व्यक्ति था। मीड ने उसे समझाया कि आत्मसमर्पण करने में ही मानसिंह की भलाई है। उसने यह भी आश्वासन दिया कि उसके साथ कठोरता का व्यवहार नहीं किया जाएगा। नारायणसिंह ने मानसिंह के दीवान किशोरीलाल तथा शिवपुरी

के नायब कमासदार प्रभूदयाल को मीड से मिलाया। उसने इन लोगों से कहा कि अगर मानसिंह आत्मसमर्पण कर देगा तो उसके जीवन की रक्षा की जाएगी तथा उसे उचित पेंशन भी दी जाएगी। साथ ही उसने मानसिंह तथा उसके कुटुम्बियों के नाम पत्र भेजा जिसमें अनेक आश्वासनों के बाद उसे आत्म-समर्पण करने के लिए आमंत्रित किया था। शीघ्र ही मीड ने नारायणसिंह तथा किशोरीलाल की सहायता से मानसिंह के परिवार की महिलाओं को पकड़ लिया। अब मीड को विश्वास हो गया कि मानसिंह के सामने शरण में आने के सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया है। परिवार की स्त्रियों के गिरफ्तार हो जाने से वह अपने परिवार की मान-प्रतिष्ठा के लिए चिन्तित हो उठा। उसने तात्या से विचार-विमर्श किया। इन दोनों का यह विचार-विमर्श ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इसीके बाद मानसिंह ने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया। पर मानसिंह जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति साधारण ढंग से आत्मसमर्पण करने को तैयार नहीं हुआ। काफी वार्तालाप के बाद कुछ शर्तों के साथ उसने आत्मसमर्पण करना स्वीकार किया। पहली शर्त यह थी कि जब वह अंग्रेजी छावनी के पास पहुँचे तो अंग्रेज़ी सेना का एक उच्च भारतीय अधिकारी आगे आकर उसका स्वागत करे। दूसरी शर्त यह थी कि उसे ग्वालियर दरबार को न सौंपा जाय, तथा उसे अंग्रेज़ी छावनी में ही रखा जाय। तीसरी शर्त यह थी कि २–३ दिनों में ही उसे शिवपुरी के निकट के मौरी नामक गाँव भेज दिया जाय ताकि वह वहाँ अपने कुटुम्बियों के साथ रह सके। मीड ने

सब शर्तें स्वीकार कीं । २ अप्रैल को मानसिंह ने मीड के सामने आत्मसमर्पण कर दिया ।

पाड़ौन के जंगलों में मानसिंह ही तात्या का आश्रयदाता और रक्षक था। मानसिंह के वश में होते ही मीड को आशा हो गई कि अब तात्या के पकड़े जाने की सम्भावना हो गई है । उसने मानसिंह को प्रलोभन देना आरम्भ किया । उसने उससे कहा कि अगर वह अंग्रेजी सरकार की कोई महत्त्वपूर्ण सेवा करेगा तो उसे उसकी खोई हुई मान-प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो सकती है । मानसिंह कुछ प्रभावित होता दिखाई देने लगा । जब मीड के पास यह खबर आई कि मानसिंह का चाचा अजीतसिंह किसी स्थान पर छिपा हुआ है तो उसने उसे गिरफ्तार करने का प्रयत्न आरम्भ किया । मानसिंह स्वतः अजीतसिंह को गिरफ्तार करने को तैयार हो गया । पर जब वह अंग्रेज़ सैनिकों के साथ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ अजीत-सिंह के मिलने की आशा थी तो अजीतसिंह वहाँ से पहले ही गायब हो गया था । अजीतसिंह मानसिंह का "मित्र, साथी और चाचा था । तब भी जब वह उसके शत्रुओं द्वारा नहीं पकड़ा जा सका तो उसे बहुत दुःख हुआ । नैतिक पतन का यह प्रथम कदम था—आगे और अधिक होनेवाले गहरे पतन का यह पूर्वरूप था ।"[१]

एक चतुर शिकारी की तरह मीड धीरे-धीरे आगे बढ़ता जा रहा था । उसके सामने एकमात्र उद्देश्य था । वह

१. 'History of Indian Mutiny', vol V, page 262.

मानसिंह की सहायता से तात्या को गिरफ्तार करना चाहता था। मीड लिखता है: "प्रभूदयाल के द्वारा उसे मालूम हुआ कि मानसिंह मेरे सुझाव के अनुसार काम करने को तैयार है। पर वह चाहता है कि अगर वह ऐसी सेवा करने में सफल हो जाय तो उसे दिए गए आश्वासन पूरे किये जयँ। स्वत: आर० हेमिल्टन उसे ऐसा विश्वास दिलायें। वह चाहता है कि अगर वह तात्या टोपे को गिरफ्तार करा देता है तो उसे शाहबाद और पोहरी अथवा नरवर के प्राचीन राज्य का कुछ भाग मिलने का आश्वासन दिया जाय।"[१] मीड ने मानसिंह से कहा कि ऐसा वचन देना उसके अधिकार की बात नहीं है। पर उसने यह वादा किया कि मानसिंह के अधिकारों का पूरा ध्यान रखा जायेगा। मीड ने उसे उस तार का स्मरण दिलाया, जो आर० हेमिल्टन ने मानसिंह द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने के पूर्व भेजा था। इस तार में स्पष्ट रूप में कहा गया था कि "उसके (मानसिंह के) प्रत्येक दावे पर विचार किया जायेगा।"

तात्या जैसे वीर तथा साहसी योद्धा को गिरफ्तार करना कोई हँसी-खेल न था। अंग्रेज़ों की छावनियों में तात्या के दूत घूमा करते थे। अंग्रेज़ अधिकारियों की प्रत्येक गतिविधि पर उनकी नज़र रहती थी। मीड जानता था कि अगर अंग्रेज़ सैनिक पड़ाव के बाहर निकलते हैं तो इसकी खबर तात्या तक पहुँचने में देर नहीं लगती। मानसिंह ने भी इस बात पर ज़ोर

---

१. Letter (No 44) from Major R. Meade. dated camp Mahoodra 8th April, 1859. (Freedom Struggle in U. P., III, page 560–60.)

दिया कि तात्या की गिरफ्तारी का सारा प्रबन्ध उसीके हाथों में रहे। मीड ने कुछ भारतीय सिपाही मानसिंह के साथ कर दिये। उन सिपाहियों को केवल इतनी आज्ञा दी गई थी कि मानसिंह जिन व्यक्तियों के पकड़ने की आज्ञा दें उन्हें गिरफ्तार कर लें। किसे गिरफ्तार करना है यह बात सिपाहियों से भी छिपाकर रखी गई थी।

अंग्रेज़ों की आँख बचाकर तात्या पड़ौन के जंगल में विश्राम कर रहे थे। थोड़ा स्वस्थ होने के बाद उन्होंने अपने साथियों का पता लगाने अपने दूत भेजे। रावसाहब का तो उन्हें पता न चला। पर एक दूत ने आकर ख़बर दी कि फीरोज़-शाह तथा वर्दी मेजर इमामअली अपनी सेना के साथ पास ही पड़ाव डाले हैं। साथ ही उन्हें इमामअली का पत्र भी मिला। इसमें तात्या से कहा गया था कि वे उनके पास आ जायँ। मानसिंह इस समय अंग्रेज़ी छावनी में था। तात्या ने अपना एक दूत उसके पास भेजा तथा उससे यह पूछा कि उन्हें अब क्या करना चाहिये। मानसिंह ने उत्तर में संदेश भेजा कि वह तीन दिनों में उनसे आकर मिलेगा। तीसरे दिन मानसिंह तात्या से मिलने पहुंचा। "मानसिंह की आज्ञा से सिपाही एक खड्डे में छिपकर बैठ गये। यहां तात्या और मानसिंह अक्सर आया करते थे। वह अपने असावधान शिकार को वहाँ ले गया। मध्यरात्रि तक वह उनसे बातें करता रहा। इसके उपरान्त तात्या सो गये। तब मानसिंह अपने सिपाहियों को वहाँ ले गया। तात्या दबाकर बाँध दिये गये। स्वतः मान-सिंह ने उनके हाथ पकड़े थे। दुर्भाग्य से इस गड़बड़ी में

(तात्या के साथ जो) दो पंडित थे वे भाग गये।"[१] ७ अप्रैल, सन् १८५८ को तात्या गिरफ्तार किये गये। उस समय इनके पास एक घोड़ा, एक तलवार, एक खुखरी, सोने के तीन कड़े तथा ११८ सोने की मुहरें थीं। इनमें से २१ मुहरें, उन सिपाहियों को पारितोषिक के रूप में दी गईं जो गिरफ्तारी के समय उपस्थित थे।

सैनिक न्यायालय—

१५ अप्रैल, १८५९ को शिवपुरी में १८५७ के चौदहवें कानून के अनुसार, तात्या पर सैनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। इस न्यायालय के अध्यक्ष थे कैप्टन बॉग तथा उसके सदस्य थे कैप्टन पियर्स, लेफ्टीनेण्ट आर्चर्ड, कैप्टन वेबस्टर और लेफ्टीनेण्ट डी-केल्टो। प्रमुख सरकारी वकील थे कैप्टन फील्ड। लेफ्टीनेण्ट गिबर न्यायालय के अनुवादक थे। इस न्यायालय के सभी लोग योरोपियन थे। सबसे पूर्व न्यायालय के सदस्यों की नामावली पढ़कर सुनाई गई। अभियुक्त से पूछा गया कि उसे इन नामों में से किसी पर आपत्ति तो नहीं है। अभियुक्त ने कोई आपत्ति नहीं की। अभियुक्त के संबंध में कहा गया कि उसका नाम तात्या टोपी है। वह ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत कानपुर ज़िले के बिठूर नामक

---

१. Letter (No. 49) from Major Mead, dated Mahoodra, 8th April, 1859. (Foreign Political Proceedings 22th April, 1829. Consultation No 5, 155–56 National Archives. New Colhi).

गांव का रहने वाला है तथा स्वर्गीय बाजीराव का, जो अंग्रेज़ी सरकार के पेन्शनर थे, नौकर था।"

उनपर न्यायालय में ये आरोप लगाये गये कि उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया, जून १८५७ से १८५८ के दिसंबर मास तक उन्होंने सेना का नेतृत्व किया और १ अप्रैल को झाँसी के पास सर ह्यू रोज़ की सेना से युद्ध किया। ये उन सेना-नेताओं में से थे जिन्होंने १ जून, १८५८ को महाराजा शिन्दे पर आक्रमण किया तथा उसे हराकर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने ग्वालियर में तथा आसपास १४ जून से २१ जून, सन् १८५८ तक सर ह्यू रोज़ की सेना से युद्ध किया।

इस मुकदमे में ८ प्रमुख गवाह थे। शिवपुरी नायब सूबा विनायक दामोदर को छोड़कर बाकी सब गवाहों ने अभियुक्त की शिनाख्त की तथा कहा कि यही तात्या टोपे हैं। एक गवाह ने उन्हें झांसी के रणक्षेत्र में अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ते हुए देखा था। दूसरे ने उन्हें महाराजा शिन्दे के महल के पास लोगों के सामने भाषण देते देखा था। उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि भविष्य में वे ही उन लोगों की देखभाल करेंगे तथा वे ही सेना के अधिनायक रहेंगे। सफाई की ओर से कोई वकील न था। कभी-कभी अभियुक्त ही गवाहों से प्रश्न किया करता था। अभियुक्त ने मुकदमे में कोई विशेष भाग नहीं लिया। उसकी सफाई बहुत ही सीधी-सादी और सरल थी: "काल्पी की विजय तक मैंने जो कुछ किया वह अपने मालिक नानासाहब के नाम से किया। बाद में रावसाहब की आज्ञा का पालन करता रहा। मुझे इसके सिवा कुछ भी नहीं कहना

है कि अंग्रेज़ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्याओं से मेरा कोई संबंध न था। मैंने कभी किसीको फाँसी लटकाये जाने की आज्ञा नहीं दी।"[१]

गवाहियों के उपरांत 'तात्या टोपे' के हस्ताक्षरयुक्त एक बयान न्यायालय के सामने पेश किया गया। यह बयान मुंशी गंगादीन ने अभियुक्त के कथनानुसार लिखा था तथा इस पर मराठी भाषा की मोड़ी लिपि में 'तात्या' ने इस प्रकार हस्ताक्षर किये थे—"तात्या टोपे, कामदार नानासाहब बहादुर" इस बयान का लेफ्टीनेण्ट गिबन ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया।

१५ अप्रैल को मुकदमा आरंभ हुआ तथा उसी दिन फैसला भी सुना दिया गया। सभी आरोप सिद्ध माने गये तथा अभियुक्त को मृत्युदंड की आज्ञा सुनाई गई। इसके उपरांत तीन दिनों तक तात्या को शिवपुरी के किले में सख्त पहरे में रखा गया। मृत्यु निकट होने पर भी 'तात्या' परेशान न थे। सरकारी रिकार्डों में कहा गया है कि 'तात्या' मृत्यु के लिये उतावले हो रहे थे। एक दिन उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि उनके निर्दोष पिता को कष्ट न दिया जाय तथा उनके परिवार के लिये आजीविका की व्यवस्था की जाय।

१८ अप्रैल को सायंकाल ७ बजे 'तात्या' को फाँसी के मैदान में लाया गया। फाँसी के चबूतरे के चारों ओर अंग्रेज़ी सेना खड़ी थी। मैदान दर्शकों से खचाखच भरा था। मीड ने उसपर लगाये गये आरोपों को पढ़ा तथा उसे दिये गये दंड को

---

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 264.

भी पढ़कर सुनाया। इसके बाद उनकी बेड़ियाँ काट डाली गईं। यह वीर दृढ़तापूर्वक स्वतः ही फाँसी के तख्ते की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। तख्ते पर उसे कसकर बांधा गया। उसने स्वेच्छा-पूर्वक अपनी गर्दन फाँसी के फंदे में डाली। नीचे का तख्ता खींच लिया गया। थोड़ी-सी तड़पन के बाद उस वीर के शरीर से आत्मा उठ गई। निर्जीव शरीर फाँसी पर लटकता रहा। एक स्थितप्रज्ञ की तरह उसने अत्यन्त वीरता और साहस से मृत्यु का आलिंगन किया।

अनेक अंग्रेज़ महिलाएं भी फाँसी के मैदान में उपस्थित थीं। इस वीर-पुङ्गव की मृत्यु से उनकी आँखों में भी अश्रु आ गये। कुछ महिलाओं ने इनके बाल काटकर स्मृति-चिह्न के रूप में अपने साथ ले लिये।

ज्योंही सेना वहाँ से हटी, त्योंही उपस्थित लोग इस अद्भुत देशभक्त की चरणरज लेने के लिये आगे बढ़े। प्रत्येक का हृदय दुःख से इतना भरा हुआ था कि मानो उसके ही कुटुम्ब के किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो। फाँसी के अवसर पर इन्होंने जो वस्त्र पहने थे वे आज भी ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन में सुरक्षित हैं। उनके परिचय में लिखा है : "भारतीय विद्रोह के नेता तात्या टोपी का कोट, इसे १८ अप्रैल, १८५९ को फांसी दी गई।" कानपुर के सार्वजनिक कार्यकर्ता श्री राय सोम-नारायण अभी कुछ दिनों पूर्व इंग्लैंड गये हुए थे। उन्होंने ब्रिटिश म्यूज़ियम में बालों का एक गुच्छा देखा। उसके नीचे लिखा था : "भारतीय विद्रोही तात्या टोपी की शिखा।"[१]

१. "Tuft of the Indian Rebel Tantia Topee."

बहुत संभव हैं किसी अंग्रेज़ ने उनकी मृत्यु के बाद उनकी चोटी काट ली हो जो बाद में ब्रिटिश म्यूज़ियम पहुंची हो।

'तात्या टोपे' के विरुद्ध सैनिक न्यायालय ने जो निर्णय दिया वह कहाँ तक न्यायोचित था, इस सम्बन्ध में अनेक अंग्रेज़ लेखकों ने भी सन्देह प्रकट किया है। के और मालिसन लिखतें हैं : "तत्कालीन जनमत ने भले ही इस फैसले को प्रमाणित माना हो पर आगे आनेवाली पीढ़ियाँ इसे कहाँ तक न्यायोचित मानेंगी, इसमें मुझे सन्देह है। तन्त्या टोपी अंग्रेज़ों के जन्मजात नौकर न थे। उनके जन्म के समय अर्थात् सन् १८१२ में उसके स्वामी पश्चिमी भारत के एक बड़े भाग के स्वतन्त्र शासक थे। उनके मालिक को लूटनेवाली जाति की, ईमानदारी और सच्चाई से, सेवा करने के लिए वे बाध्य न थे।.........उनके मालिक ने पेशवाई के राज्य को पुनः प्राप्त करने का अवसर देखा। उनके मुसाहिब तथा साथी तन्त्या टोपी ने उनकी आज्ञा मानी तथा अपने भाग्य को उनके भाग्य के साथ जोड़ दिया। उन्होंने घोषित किया कि उन्होंने कोई हत्या नहीं की। उनपर हत्या करने का अभियोग भी नहीं लगाया गया था। भूतपूर्व पेशवा के इस मुसाहिब पर अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने का अभियोग लगाया गया था तथा इसी अभियोग पर वह दंडित किया गया तथा फाँसी पर लटकाया गया। इस मामले में इतना ही कहा जा सकता है कि दंड अपराध से कहीं कठोर था।"[१]

---

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 265.

तात्या टोपे तथा आस्ट्रिया के देशभक्त हाफर से सम्बन्धित घटनाओं में आश्चर्यजनक समानता है। जब नेपोलियन बोनापार्ट ने १८१० में आस्ट्रिया पर आक्रमण किया तो हाफर ने सेना एकत्रित कर तीन दिन के भीतर विश्वविजयी नेपोलियन को अपने देश से मार भगाया। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए नेपोलियन ने पुनः आस्ट्रिया पर आक्रमण किया। हाफर को आत्मरक्षा के लिए छिप जाना पड़ा। एक मित्र ने विश्वघात कर उसे गिरफ्तार करा दिया। नेपोलियन ने हाफर को गोली से उड़ा दिया। उस समय नेपोलियन के इस कार्य की योरोप में बड़ी निन्दा हुई। निन्दा करने में अंग्रेज़ सबसे आगे थे। " ये दोनों देशभक्त (हाफर और तात्या) जिन राष्ट्रों से लड़े उन राष्ट्रों की सीमा में इनके जन्म नहीं हुए थे। दोनों ही ऐसे राष्ट्रों के (नागरिक) थे जिन राष्ट्रों को विदेशियों ने गुलाम बना लिया था।.........दोनों ही अपने-अपने राष्ट्रों की आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करते थे। दोनों ने......हाफर तथा तात्या टोपे ने आक्रमण करनेवाली जातियों का सामना करने के लिए असाधारण प्रयत्न किया। दोनों ही अपने-अपने देश के लिए आदर्श वीर थे। इनमें से योरोपियन (हाफर) तो संसार का वीर गिना ही जाता है। सम्भव है मराठा (तात्या) भी चम्बल, नर्बदा, पर्वती की घाटियों में पूजा जाता हो तथा उसका नाम श्रद्धा, उत्साह और आदर से लिया जाता हो।"[१]

---

१. History of Indian Mutiny, vol. V, page 266.

फाँसी चढ़ने वाला तात्या टोपे न था

प्रचलित इतिहास यही मानता है कि ७ अप्रैल, १८५९ को पाड़ौन के जंगलों में जो व्यक्ति पकड़ा गया, १५ अप्रैल को जिसपर सैनिक न्यायालय में विद्रोह करने के अभियोग में मुकदमा चलाया गया और जिसे १८ अप्रैल को शिवपुरी में फाँसी लटकाया गया वह व्यक्ति तात्या टोपे ही था। पर वास्तविकता इससे कुछ भिन्न थी। तात्या के नाम से जिस व्यक्ति को फाँसी चढ़ाया गया वह वास्तव में तात्या टोपे न था। वह कोई और ही व्यक्ति था। यह कथन परम्परागत इतिहास के विश्वास पर कुठाराघात करनेवाला है। जिन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कथन किया जा रहा है वे तथ्य तथा प्रमाण यहाँ दिए जा रहे हैं ताकि इतिहासज्ञ तथा इतिहास में रुचि रखनेवाले व्यक्ति इन तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकें तथा तात्या टोपे के अन्त के सम्बन्ध में जो भ्रम फैला हुआ है उसे दूर करने में सहायक हो सकें।

तात्या के वंशज आज भी ब्रह्मावर्त तथा ग्वालियर में रहते हैं। इस परिवार का विश्वास है कि तात्या की मृत्यु फाँसी के तख्ते पर नहीं हुई। ब्रह्मावर्त में रहनेवाले तात्या के भतीजे श्री० नारायणलक्ष्मण टोपे तथा उनकी (तात्या की) भतीजी गंगूबाई का कथन है कि वे बालपन से अपने कुटुम्बियों से सुनते आए हैं कि कथित तात्या के फाँसी चढ़ जाने के बाद भी तात्या अवसर, विभिन्न वेशों में, अपने कुटुम्बियों से आकर मिलते रहते थे। तात्या के पिता पाण्डुरंग, कथित तात्या के

फाँसी चढ़ जाने के ४ महीने ७ दिनों बाद अर्थात् २७ अगस्त, १८५९ को ग्वालियर के किले से, जहाँ वे अपने कुटुम्बियों के साथ नज़रबन्द किए गए थे, मुक्त किए गए। मुक्त होने पर टोपे-कुटुम्ब पुनः ब्रह्मावर्त वापस आया। इस समय पांडुरंग-भट के पास न तो धन था और न कोई मित्र ही था। टोपे कुटुम्बियों के कथनानुसार इस संकटकाल में तात्या वेश बदल-कर अपने पिता से आकर मिले थे तथा उन्हें धन देकर सहा-यता की थीं। इस धन से पांडुरंग ने अपने रहने के लिए एक कच्चा मकान बनवाया और उसीमें अपने कुटुम्बियों के साथ रहने लगे।

१८६१ ई० में तात्या की सौतेली बहिन दुर्गा का विवाह काशी के खुर्देकर कुटुम्ब में हुआ। श्री० नारायणराव का कथन है कि इस अवसर पर भी तात्या गुप्त वेश में उपस्थित थे तथा उन्होंने विवाह के लिए आर्थिक सहायता दी थी। तात्या के पिता तथा उनकी सौतेली माता का कुछ ही महीनों के अंतर से सन् १८६२ ई० में काशी में देहावसान हुआ। टोपे परिवार के लोगों का कथन है कि इस समय भी तात्या संन्यासी के वेश में अपने माता-पिता की मृत्यु-शय्या के पास उपस्थित थे।

ग्वालियर में रहनेवाले श्री० शंकरलक्ष्मण टोपे का कथन है कि जब वे १३ वर्ष के थे तो एक बार उनके पिता लक्ष्मण, जो तात्या के सौतेले भाई थे, बीमार हुए। उन्हें देखने के लिए एक संन्यासी आए। उनके पिता ने उन्हें बुल-वाया और कहा कि ये तात्या हैं, इन्हें नमस्कार करो। इस समय श्री० शंकर की आयु कोई ७५ वर्ष की है। उनके कथ-

नानुसार यह घटना १८९५ के आसपास की है अर्थात् कथित तात्या के फाँसी के ३६ वर्ष बाद की है।

तात्या टोपे फाँसी नहीं चढ़े इस बात का समर्थन एक और ऐतिहासिक परिवार करता है। यह परिवार है झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के सैनिक अफ़सर तथा उनके विश्वसनीय सहयोगी लालू बक्षी[१] का। झाँसी की क्रान्ति में लालू बक्षी का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था, यह इस बात से सिद्ध होता है कि जब सेनापति सर ह्यू रोज़ झाँसी पर आक्रमण करने आया तो उसने रानी के पास सन्देश भेजा था कि रानी अपने पिता मोरोपन्त ताम्बे तथा लालू बक्षी के साथ उसकी छावनी में हाज़िर हो। इस अपमानजनक सन्देश का रानी ने जो वीरोचित उत्तर दिया वह इतिहास-प्रसिद्ध है। जब रानी झाँसी के किले से निकलकर काल्पी गई तो लालू बक्षी और मोरोपन्त ताम्बे बहुमूल्य सम्पत्ति हाथी पर लादकर किले से निकले और अंग्रेज़ी सेना की कतारों को चीरते हुए निकल गए। जब ये लोग दतिया पहुँचे तो वहाँ के राजा ने इन्हें पकड़कर अंग्रेज़ों के हवाले कर दिया। अंग्रेज़ी सरकार ने मोरोपन्त को झाँसी में तथा लालू बक्षी को भाण्डेर नामक स्थान में फाँसी लटका दिया। लालू बक्षी के भाई माधव बक्षी भी अंग्रेज़ों के विरुद्ध ग्वालियर के युद्ध में लड़े थे। इन्हींके वंशज श्री मल्हार यादव बक्षी ने ९ अगस्त, सन् १९५७ को एक पत्र श्री

---

१. 'बख़्शी' के बजाय बक्षी इसलिये लिखा गया है कि यह परिवार अपना नाम 'बक्षी' ही लिखता है।

नारायणलक्ष्मण टोपे को लिखा था। उस पत्र में लिखित सम्बन्धित बातों का सारांश नीचे दिया जाता है :

हमारे बाबा (गोपालराव बक्षी) हमें बचपन में 'विद्रोह' की बातें सुनाया करते थे। उनका कहना था कि उन्होंने ये बातें अपने चाचा (लालू बक्षी के भाई माधवमल्हार बक्षी) से सुनी थीं। ग्वालियर के पराजय के बाद इनको अज्ञातवास में रहना पड़ा था। सन् १८६३ में ये बद्रीनारायण गए थे। रास्ते में इन्हें एक साधु मिला। आपस में वार्ता होने लगी। दोनों एक-दूसरे से खुलकर बातें करने में हिचक रहे थे। पर जब दोनों अलग-अलग मार्ग पर जाने लगे तो मल्हार बक्षी ने उन्हें अपना परिचय दिया। साधु भी उन्हें पहिचान गया था, पर अब उसे निश्चय हुआ। जब साधु जंगल के एक कठिन मार्ग पर बढ़ने लगा तो उसने मल्हारराव से कहा, "मैं तात्या हूँ।" इसके बाद भी मल्हारराव से तात्या गिरनार और साकुर (गुजरात) में मिले थे।

जब तक उपर्युक्त बातों को अन्य ऐतिहासिक आधारों का समर्थन प्राप्त नहीं होता तब तक इन्हें कुटुम्ब-पुराण से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। पर एक ऐतिहासिक प्रमाण निःसन्देह ऐसा है जिसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि टोपे-कुटुम्ब ने इस बात पर कभी विश्वास नहीं किया कि तात्या की मृत्यु फाँसी के तख्ते पर हुई है। नज़रबन्दी से मुक्त होने के बाद तात्या के भाइयों को आर्थिक संकट के कारण जीविका की खोज में इधर-उधर चला

जाना पड़ा। रामकृष्ण १८६२ ई० में बड़ौदा पहुँचा। वह सीधा महाराजा गायकवाड़ के पास पहुँचा और उनसे बोला कि वह तात्या टोपे का भाई है तथा नौकरी की खोज में वहाँ आया है। महाराजा ने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसे वहाँ के अंग्रेज़ रेज़ीडेण्ट को सौंप दिया। सहायक रेज़ीडेण्ट ने उससे अनेक प्रश्न किये। उनमें से एक प्रश्न यह भी था कि, "आजकल तात्या टोपे कहाँ हैं?" 'तात्या' के फाँसी चढ़ने के तीन वर्ष बाद एक ज़िम्मेदार अंग्रेज़ अफसर द्वारा ऐसा प्रश्न किया जाना वास्तव में आश्चर्य की बात है। रामकृष्ण ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया वह इससे भी अधिक आश्चर्य-जनक है। उसने उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता कि वे कहाँ हैं। जब से वे हमसे अलग हुए तब से न तो हम उनसे मिले और न हमने उनके बारे में कुछ सुना।"[१] तात्या की फाँसी के समय टोपे-परिवार ग्वालियर में नज़रबन्द था। वहाँ से शिवपुरी, जहाँ तात्या फाँसी चढ़ाये गये, केवल ७५ मील की दूरी पर है। अतएव यह आश्चर्य की बात है कि तात्या की मृत्यु के सम्बन्ध में इनके कुटुम्बी इतने दिनों तक अनभिज्ञ ही रहे!

इसी प्रकार जब रावसाहब पर कानपुर में १८६२ में मुकदमा चलाया गया तो मुकदमे के दौरान में उनसे प्रश्न

१. 'Source material for the 'History of Freedom Movement in India, (Bombay Govt. Records), vol. I, page 231–37.

किया गया था, "तात्या टोपे कहाँ है ?"[1] इससे स्पष्ट होता है कि उच्च सरकारी क्षेत्रों में भी तात्या के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह था, तभी इस प्रकार के प्रश्न कथित तात्या की फाँसी के कुछ वर्षों बाद भी ज़िम्मेवार अंग्रेज़ अफसर करना आवश्यक समझते थे।

तात्या पर सैनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया गया था। इस मुकदमे में उन्होंने एक बयान दिया तथा उस बयान पर हस्ताक्षर किये। यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसी स्थिति में इस बात पर कैसे सन्देह किया जा सकता है कि फाँसी का दंड पाने वाला व्यक्ति तात्या टोपे न था। वैसे तो यह तर्क बलयुक्त दिखाई देता है, पर अगर इस तर्क का गम्भीरतापूर्वक परीक्षण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि न तो यह बयान तात्या टोपे का है और न हस्ताक्षर ही। निःसन्देह बयान में क्रांति के प्रारम्भिक काल से लेकर तात्या की गिरफ्तारी तक की घटनाओं का क्रमवार लेखा मिलेगा। इसमें काल एवं घटना-क्रम की दृष्टि से कोई दोष नहीं निकाला जा सकता। पर इस बयान में जो त्रुटियाँ दिखाई देती हैं उनमें से प्रमुख त्रुटि यह है कि इसमें तात्या के व्यक्तित्व का कोई प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता। यह बयान एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया हुआ प्रतीत होता है जो घटनाओं से

१. "Trial Proceedings in the Case Govt. vs. Rao Sahab" original file in possession of the Advisory Committee of the Board for the History of Freedom Struggle in U. P.

बिलकुल जुड़ा हुआ नहीं था। यह बयान तो तात्या का कोई भी ऐसा साथी दे सकता था जो आरम्भ से उनके साथ रहा हो। इस बयान को गंभीरतापूर्वक पढ़ने के बाद हृदय और मस्तिष्क दोनों इस बात को मानने से इन्कार करते हैं कि तात्या जैसा तेजस्वी वीर ऐसा निष्प्राण वक्तव्य दे सकता है।

दुर्भाग्य तात्या के प्रमाणित हस्ताक्षर अभी तक अप्राप्य हैं। इसी कारण इस बयान के हस्ताक्षर की प्रामाणिकता सिद्ध करने का कोई साधन नहीं है। इसपर 'ताया' ने मराठी भाषा की मोड़ी लिपि में इस प्रकार हस्ताक्षर किये थे—"तात्या टोपे कामदार नानासाहब बहादुर।"[१] इस हस्ताक्षर की ओर साधारण रूप से ध्यान देने से ही इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह होने लगता है। महाराष्ट्र में हस्ताक्षर करने की जो पद्धति प्रचलित है उसके अनुसार सबसे पूर्व व्यक्ति का नाम लिखा जाता है, बाद में पिता का और अन्त में कुटुम्ब का। इसके अतिरिक्त एक पद्धति और प्रचलित है। वास्तविक नाम के बाद पिता का नाम न लिखकर 'राव' या 'पन्त' सम्मानार्थी शब्द जोड़े जाते हैं और अन्त में कुटुम्ब का नाम लिखा जाता है। इन पद्धतियों के अनुसार तात्या को इस प्रकार करने चाहिये थे, "रामचन्द्र पाण्डुरंग टोपे" या "रामचन्द्र राव (या पंत) टोपे।" रावसाहब पेशवा ने अपने मुकदमे के कागज़ात पर "पाण्डुरंग राव" ही हस्ताक्षर किये थे।[२] फिर

१. Freedom Struggle in U. P., vol I, (photo) plate No 1.
२. Trial Proceedings in the Case of Covernment vs. Rao Sahab (original file)

तात्या ने ही प्रचलित प्रथा के विरुद्ध क्यों हस्ताक्षर किये। क्या यह सम्भव नहीं कि तात्या का स्थान ग्रहण करनेवाले व्यक्ति ने जानबूझकर उसी नाम के हस्ताक्षर किये हों जिस नाम से उन्हें अंग्रेज़ पहिचानते थे। बयान के आरम्भ में भी कहा गया है, "मेरा नाम तात्या टोपे है" जबकि वास्तव में उनका नाम "रामचन्द्र पाण्डुरंग टोपे" था।

तात्या के मुकदमे की कार्यवाही के सम्बन्ध में अधिकारियों ने जो नीति अपनाई, वह भी असाधारण ही थी। इस क्रांति के जितने नेता पकड़े गए थे उनके मुकदमे उन्हीं स्थानों पर हुए जहाँ के वे रहनेवाले थे और यदि उन्हें फाँसी का दंड मिला तो वे उसी स्थान पर फाँसी लटकाये गए जहाँ उन्होंने अंग्रेज़ों के मतानुसार, उनके विरुद्ध अत्याचार किये थे। बरेली के क्रांतिकारी नेता खानबहादुर खाँ पकड़े गये नेपाल में पर उनपर बरेली में मुकदमा चलाया गया[१] तथा वहाँ की 'नई कोतवाली' के सामने फाँसी लटकाए गए, जहाँ क्रांतिकारियों ने उन्हें नवाब के सिंहासन पर बैठाया था।[२]

इसी प्रकार कुंवरसिंह के भाई अमरसिंह नेपाल में पकड़े

---

१. 'Case against Khan Bahadur', Bareilly Commissioner's Office, Mutiny Records. (Freedom Struggle in U. P., vol. V, pege 590–91

२. Letter no 66 from H. R. Clarke, joint Magistrate Bareilly to W. Roberts, President of special Commission for trial dated 26th March, 1860 (Freedom Struggle in U. P., Vol. V, page 615)

गए। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) की सरकार ने बंगाल सरकार से (बिहार उस समय बंगाल प्रांत का भाग था) पूछा कि उनपर कहाँ मुकदमा चलाया जायगा —गोरखपुर में, जहाँ की जेल में वे रखे गए थे, अथवा उनके ज़िले शाहबाद में? बंगाल सरकार ने उत्तर दिया था, "उनके ज़िले में ही मुकदमा होना एक अच्छा उदाहरण होगा।"[१] यह दूसरी बात है कि शाहबाद भेजे जाने के पूर्व ही उनकी गोरखपुर जेल में मृत्यु हो गई।[२] कानपुर के क्रांतिकारी नेता ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद ने नेपाल में आत्मसमर्पण किया। पर कानपुर में ही उनपर मुकदमा चलाया गया तथा वे सत्तीचौरा घाट पर फाँसी लटकाये गये।[३] इसी प्रकार राव-साहब काश्मीर में पकड़े गए पर उनका मुकदमा कानपुर में ही हुआ तथा यहीं वे फाँसी लटकाए गए।[४] दक्षिण की क्रांति के नेता रंगो बापू गुप्ते के पुत्र सीताराम तथा उनके १६ साथी विभिन्न स्थानों में पकड़े गए पर उनका मुकदमा

---

१. Letter to secretary to Govt. N. W. F. Provinces. Ist Jan., 1860. (Freedom Struggle in U. P., vol IV, page 494.)

२. Biography of Kunwar Singh and Amar Singh, by K. K. Dutta.

३. 'Eighteen Fifty seven' by Dr. Surendra Nath Sen, page 371.

४. 'Trial Proceedings in the Case of Govt. vs. Rao Sahab' (Kanpur Collectorate Mutiny Basta (Freedom Struggle in U. P., vol. III, page 683)

सतारा में ही हुआ।[१] इस प्रकार प्रायः सभी क्रांतिकारी नेताओं पर उन्हीं स्थानों पर मुकदमे चलाए गए जिन स्थानों के वे रहनेवाले थे।

यह कहा जा सकता है कि तात्या मुकदमे के लिए इसलिए कानपुर नहीं लाए गए कि उनका कानपुर में लाना अंग्रेज़ सरकार की दृष्टि में संकट से खाली न था। पर नानासाहब पेशवा भी कम भयंकर नहीं माने जाते थे। पर जो व्यक्ति नाना के नाम से ग्वालियर में पकड़ा गया था वह मुकदमे के लिए कानपुर लाया गया था।[२] इस नीति के अनुसार तात्या का मुकदमा कानपुर में होना चाहिए था क्योंकि वे इसी ज़िले के रहनेवाले थे तथा उनका प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र भी यही था। पर इसके बजाय उनके मुकदमे के स्थान को चुनने में अपनी साधारण नीति का परित्याग करने की क्यों आवश्यकता समझी गई?

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। जितने क्रांतिकारी नेता पकड़े गए थे उन सबके मुकदमे सिविल अदालतों में ही चलाए गए थे। फिर तात्या का मुकदमा फौजी न्यायालय में चलाना क्यों उचित समझा गया? संभवतः इसलिए कि साधारण अदालत से सैनिक न्यायालय में किसी बात को छिपाने की अधिक सुविधा मिलती है।

---

१. Source Material for the History of Freedom Movements in India, (Bombay Govt. Records) vol. I, pages 181–93.

२. The original file found in Kanpur Mutiny Basta.

मुकदमे के सिलसिले में शिनाख्त की जो कार्यवाही की गई वह भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। सबूत के प्रायः सभी गवाहों ने कहा कि उन्होंने तात्या को एक या दो बार ग्वालियर के आसपास देखा था। दिलावरखाँ नामक केवल एक ही गवाह ऐसा था कि जिसने कहा कि उसने तात्या को झाँसी के रणक्षेत्र में देखा था। ऐसा कोई गवाह न था जिसने उन्हें झाँसी की घटनाओं के पूर्व देखा हो। शिवपुरी के सूबा विनायक दामोदर ने अपनी गवाही में कहा कि वह 'तात्या' को नहीं पहिचानता। प्रायः सभी गवाह या तो मानसिंह, ग्वालियर महाराजा अथवा अंग्रेजी सरकार के नौकर थे।[१] ये सभी गवाह सरलतापूर्वक अंग्रेज़ अफसरों द्वारा प्रभवित किए जा सकते थे। इनमें से एक भी स्वतंत्र गवाह नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मावर्त या कानपुर का एक गवाह भी पेश नहीं किया गया, जो इन्हें अच्छी तरह से पहिचानता हो।

इस मुकदमे के सिलसिले में जो अत्यधिक शीघ्रता की गई उससे यह सन्देह होने लगता है कि इस जल्दी की आड़ में सरकार कोई न काई बात छिपाने का प्रयत्न कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार तात्या टोपे के स्थान पर पकड़े गए व्यक्ति को जल्दी से जल्दी फाँसी पर लटकाकर छुट्टी पाना चाहती थी।

---

१. Proceedings of Court Martial of Tatya Tope. Foreign Proceedings Supp., 30 Nov., 1859, con. no. 1362. Natianal Archives. new Delhi.

तात्या पर जो अभियोग लगाये गए वे कानून की दृष्टि से लचर थे। तात्या पेशवा के जन्मजात प्रजाजन थे—न कि अंग्रेज़ी सरकार के। अतः उनपर यह अभियोग लगाना कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़कर उन्होंने राजद्रोह किया, आधार-हीन था। "मुक़दमे में तांतिया टोपी पर कानपुर के योरोपियनों की हत्या का अभियोग नहीं लगाया गया। अच्छा तो यह होता कि इसे (तात्या को) एक हत्यारे के रूप में फाँसी का दंड दिया जाता, पर बजाय इसके अपुष्ट आरोपों पर अनुचित दंड दिया गया और उसे शहीद का ताज पहिनाया गया।"[१] अधिकारियों का दावा था कि उनके पास सत्तीचौरा हत्या-काण्ड में तात्या के दोषी होने के पर्याप्त प्रमाण हैं। बंगाल सिविल सर्विस के जी० लैन्स ने इतिहासकार मेलीसन को एक पत्र में लिखा था: "कानपुर के मजिस्ट्रेट के कार्यालय के कागज़ात में इस बात के अनेक सबूत हैं कि तात्या टोपे, नाना-साहब का क्रूर सलाहकार था। भले ही उसने योरोपियनों के हत्याकाण्ड की योजना न बनाई हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि सत्तीचौरा में या तो उसने अपने आदमी छिपा रखे थे तथा इस हत्याकाण्ड में सहायता दी थी, या ज्वालाप्रसाद को आज्ञा दी थी। इतना ही नहीं उसने उस स्थान पर स्वतः उपस्थित होकर हत्यारों की कट्टरता को उकसाया और जोश दिलाया था।"[२]

१. History of Indian Mutiny, vol. V, pages 265—66 (Foot-note)

२. History of Indian Mutiny, vol. V, pages 265—66 (Foot Note).

१४ अप्रैल, १८५९ को भारत सरकार के वैदेशिक मंत्री सी० बीडन ने मध्यभारत के सेनानी ब्रिगेडियर जनरल आर० नेपियर को तार दिया था : "इलाहाबाद के कर्नल विलियम के पास ऐसे प्रमाण हैं जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि कानपुर के हत्याकाण्ड में तंतिया टोपो का हाथ था। वह इन प्रमाणों को भेजेगा।" इसी दिन बीडन ने कर्नल विलियम को तार भेजा कि वह इन प्रमाणों को नेपियर के पास भेज दे।[१]

इतना सब होते हुए भी इन प्रमाणों के आने की राह नहीं देखी गई। सैनिक न्यायालय के इस मुकदमे का नाटक एक ही दिन में समाप्त कर दिया गया। ग्वालियर के रेज़ीडेण्ट मेकफर्सन ने १९ अप्रैल, १८५९ को भारत सरकार के मंत्री को तार दिया : "मेजर मीड ने तार भेजा है कि तंतिया टोपे पर मुकदमा चलाया गया, उसे दंड दिया गया और सीप्री (शिवपुरी) में १८ (अप्रैल) को फाँसी लटका दिया गया।"[२] एक ही दिन में पूरा मुकदमा हुआ, उसी दिन फैसला सुना दिया गया तथा दो दिन बाद फाँसी भी दे दी गई। ये सब बातें इतनी शीघ्रता से की गईं कि इससे यह सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि इस शीघ्रता के पीछे कोई रहस्य अवश्य था। इसके सिवा रहस्य क्या हो सकता था कि अंग्रेज़ी सरकार के उच्च अधिकारियों को 'तात्या' के संबन्ध में सन्देह था। १५ अप्रैल, १८५९ को भारत सरकार के वैदेशिक मंत्री

---

१. Freedom Struggle in U. P., vol III, pages 566—67.

२. Freedom Struggle in U. P., vol III, page 567.

बीडन ने नेपियर को तार दिया था : "जनरल आउट्रम को कुछ आधारों पर यह सन्देह है कि तंतिया टोपी बड़ौदा का भूतपूर्व मंत्री भाऊ ताम्बेकर है। इसकी जाँच कीजिये। अगर ऐसी बात नहीं है तो भाऊ ताम्बेकर कहां है ?"[१] पर सरकार ने अपना यह सन्देह प्रकट नहीं होने दिया क्योंकि इस भेद का खुल जाना उसके हित में न था। अगर लोगों को इस बात का विश्वास हो जाता कि तात्या मर चुके हैं तो क्रांति की रही-सही प्रखरता भी नष्ट हो जाती। पर अगर सरकार उस व्यक्ति को, जो तात्या के नाम से पकड़ा गया था, यह कहकर छोड़ देती कि वह तात्या नहीं है, तो इस समाचार से कि तात्या अब भी जीवित हैं, क्रांति की बुझती हुई अग्नि पुनः धधक उठने की संभावना थी। इसी कारण, गिरफ्तार किये हुए व्यक्ति को, जो वास्तव में तात्या न था, सरकार ने तात्या सिद्ध कर शीघ्रता से फाँसी पर लटका दिया।

प्रचलित इतिहास नरवर के राजा मानसिंह पर यह दोषारोपण करता है कि उसके मित्रद्रोह और विश्वासघात के कारण ही तात्या को फाँसी लटकना पड़ा। अगर वह अंग्रेज़ों की सहायता न करता तो तात्या का पकड़ा जाना कोई सरल कार्य न था। मानसिंह से यह वादा कर दिया गया था कि अगर वह तात्या को गिरफ्तार करा देगा तो उसे उसकी

---

१. Telegraphic Message No 162 from C. Beadon, Calcutta, 15th April 1859 (Freedom Struggle in U. P., vol. III, page 566.

पुरानी जागीर लौटा दी जायेगी ।[१] नेपियर और मीड ने सिफारिश की थी कि मानसिंह ने (तात्या को गिरफ्तार करा कर) 'राष्ट्रीय सेवा' की है अतः उसके दावे पर सहानुभूति पूर्वक विचार होना चाहिए । पर मानसिंह को प्रायः वादा की गई जागीर नहीं प्रदान की गई । आखिर क्यों ? अंग्रेज़ी सरकार की इससे कहीं साधारण सहायता करने वालों को जागीरें प्रदान की गई थीं । पर तात्या जैसे क्रांति के आधार-स्तंभ को गिरफ्तार करा देने पर भी मानसिंह को जागीर न मिलना इस बात का प्रमाण है कि अंग्रेज़ अधिकारी समझ गये थे कि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति तात्या टोपे नहीं है ।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि तात्या ऐसे जागरूक और चतुर व्यक्ति ने उस व्यक्ति पर कैसे विश्वास किया जो अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण कर चुका था ? 'तात्या' ने अदालत के सामने दिये गये अपने वक्तव्य में कहा है : "मीड के सामने आत्मसमर्पण करने के पूर्व मानसिंह ने मेरी सलाह ली थी ।" इतना ही नहीं, "तात्या ने अपने दूत मीड की छावनी में उससे (मानसिंह से) सलाह लेने के लिए भेजे थे ।"[२] तात्या के गुप्तचर भी अंग्रेज़ी छावनी में फैले हुए थे । वहाँ का रत्ती-रत्ती हाल तात्या के पास पहुँचता था । तब भी तात्या ने नेपियर और मीड द्वारा फैलाए हुए जाल में अपने को इतनी सरलता से कैसे फँसने दिया ? ये सब बातें संदेह को पुष्ट ही करती हैं ।

---

१. Refer to chapter on Tatya Tope's arrest.

२. History of Indian Mutiny, vol. V, page 262.

यदि हम घटना-क्रम को ज़रा गहराई से देखें तो परिस्थितियों का रूप बदल जाता है। मीड जानता था कि जब तक मार्नासह के समान तात्या का कोई साथी उसका सहायक नहीं होता तब तक तात्या के पास तक पहुँचना कठिन है। अतः उसने मानसिंह के चारों ओर जाल फैलाना आरंभ किया। सब से पूर्व उसने धोखा देकर मानसिंह के कुटुम्ब की स्त्रियों को पकड़ लिया। वह जानता था कि ऐसा करने से मानसिंह के सामने आत्मसमर्पण करने के सिवा कोई चारा नहीं रह जायेगा। मानसिंह अपने कुटुम्ब की स्त्रियों की मान-रक्षा करने के लिए चिन्तित हो उठा। उसने तात्या टोपे से सलाह की। वास्तव में दोनों की यही मंत्रणा रहस्यपूर्ण थी। इस समय स्वतः तात्या का परिवार नज़रबन्दी में था। पर इससे तात्या क्रांति के मार्ग से ज़रा भी नहीं डिगे थे। ऐसा व्यक्ति मानसिंह को, शत्रु के सामने सीधे-सादे ढंग से शरण जाने की सलाह कैसे दे सकता था ? आए हुए संकट-काल से बचाव करने के लिए दो चतुर मस्तिष्कों ने अवश्य कोई योजना बनाई होगी। दोनों के सामने दो प्रमुख प्रश्न थे, एक तो मानसिंह के परिवार की स्त्रियों को मुक्त कराना, दूसरा था अंग्रेज़ों से तात्या की रक्षा करना। ऐसा प्रतीत होता है कि तात्या एवं मानसिंह ने मीड को उसीके सिक्कों में भुगतान करने की तथा अपने दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करने की योजना बनाई। इस योजना का पहला कदम था मानसिंह द्वारा आत्मसमर्पण तथा दूसरा कदम था तात्या के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार करा देना। इससे मानसिंह के परिवार की

महिलाओं को मुक्ति तो मिलती ही, पर साथ ही तात्या भी सुरक्षित हो जाते। तात्या के साथियों में ऐसे व्यक्तियों का अभाव न था जो तात्या की रक्षा के लिए अपना बलिदान करने में अपने को धन्य मानते। घटना-क्रम यही संकेत करता है कि यही योजना कार्यान्वित की गई थी।

आत्मसमर्पण करने के बाद मीड ने मानसिंह को उसके चाचा और क्रांति में उसके साथी अजीतसिंह को गिरफ्तार कराने का काम सौंपा। मानसिंह गोरे सिपाहियों के साथ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ अजीतसिंह छिपा हुआ था। पर उनके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही अजीतसिंह वहाँ से गायब हो चुका था। बहुत संभव है कि मानसिंह ने ही उसे पहले ही होशियार कर दिया हो। मानसिंह का अभिनय इतना वास्तविक था कि मेलीसन ने लिखा है: "मानसिंह को इस बात का बड़ा दुःख था कि वह (अजीतसिंह) उसके शत्रुओं द्वारा न पकड़ा जा सका।"[१] मानसिंह ने अपनी कुशलता से अंग्रेज़ों को ज़रा भी संदेह नहीं होने दिया।

मानसिंह ने इस बात पर ज़ोर दिया कि तात्या की गिरफ्तारी की सारी व्यवस्था उसके ही हाथों में रहे।[२] उसका इस प्रकार की इच्छा करना स्वाभाविक ही था क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि निश्चित योजना में कोई बाधा

---

१. History of Indian Mutiny, vol. V., page 262

२. Letter (No. 69) from Major Meade, dated camp Mahoondra, The 8th April, 1859. (Freedom Struggle in U. P., vol III, page 561).

आए । इतना ही नहीं, मीड लिखता है : "मानसिंह ने मुझे विश्वास दिलाया कि इसमें विरोध होने की संभावना नहीं है ।"[१] तात्या जैसे वीर और पराक्रमी पुरुष की गिरफ्तारी के अवसर पर ऐसा आश्वासन देना क्या आवश्यक से अधिक साहसपूर्ण न था ?

गिरफ्तारी के समय "......तंतिया टोपी बांधा गया और दबाया गया । उसका हाथ स्वतः मानसिंह ने पकड़ा था ।"[२] तब भी 'तात्या' अपने वक्तव्य में, जो उन्होंने अदालत में दिया था, मानसिंह का नाम भी नहीं लेते और न एक शब्द द्वारा उनकी निन्दा करते हैं । तात्या जैसा स्पष्टभाषी और निर्भीक व्यक्ति मित्रद्रोही, विश्वासघाती और क्रांतिद्रोही व्यक्ति के प्रति इतनी उदारता का क्यों व्यवहार करता है ? इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि घटनाएं ऊपरी तौर पर जैसी दिखाई देती थीं वे वास्तव में वैसी न थीं—इनके पीछे कोई न कोई रहस्य अवश्य था ।

उपर्युक्त साधार प्रमाणों में से कुछ प्रमाणों के विरुद्ध तर्क दिए जा सकते हैं, पर इन प्रमाणों का संयुक्त प्रभाव तो इसी बात की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि १८ अप्रैल,

---

१. Letter (No. 49) from Major Meade dated camp Mahoondra, the 8th April, 1859. (Freedom Struggle in U. P., Vol. III, page 562).

२. Letter (No. 49) from Major Meade dated camp Mahoondra, the 8th April, 1859. (Freedom Struggle in U. P., vol. III, page 563).

१८५९ को शिवपुरी में जिस व्यक्ति को फाँसी दी गई वह व्यक्ति तात्या टोपे न था।

तात्या का अंत कहाँ और कैसे हुआ ?

अगर यह मान लिया जाय कि तात्या की मृत्यु फाँसी के तख्ते पर नहीं हुई तो अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। पहला प्रश्न यह उठता है कि अगर तात्या फाँसी पर नहीं चढ़े तो उनके नाम से कौन स्वेच्छा से फाँसी लटक गया ? दूसरा प्रश्न यह उठता है कि तात्या ने अपने अज्ञातवास के दिन कहाँ बिताये ? तीसरा प्रश्न यह सामने आता है कि तात्या कि मृत्यु कहाँ और कैसे हुई। निःसन्देह उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक हैं।

लेखक ने टोपे-कुटुम्ब से इन प्रश्नों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जब तात्या टोपे के भतीजे श्री० नारायणलक्ष्मण टोपे से यह प्रश्न किया गया : "क्या आपने अपने परिवार के वृद्धजनों से कभी कोई ऐसी बात सुनी है जिससे इस बात की कल्पना की जा सके कि तात्या के स्थान पर कौन व्यक्ति फाँसी चढ़ गया ?" तो उन्होंने अपने बचपन की एक घटना सुनाई। बचपन में नारायणराव ग्वालियर के जनकगंज स्कूल में पढ़ते थे। उस समय इस स्कूल के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे रघुनाथराव भागवत। एक दिन रघुनाथराव ने बालक नारायण को अपने कार्यालय में बुलवाया और टोपे-परिवार के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये और अन्त में अत्यन्त भावनापूर्ण स्वर में कहा : "मेरे बच्चे ! तुम्हारे चाचा

फाँसी नहीं लटकाये गये, पर उनकी जगह फाँसी लटकाये जाने वाले मेरे बाबा थे।" यह कथन इतना आश्चर्यजनक तथा महत्त्वपूर्ण था कि लेखन ने इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। ग्वालियर के भागवत-परिवार में पूछ-ताछ करने पर पता चला कि रघुनाथराव भागवत के बाबा का नाम नारायण था।

पाड़ौन के जंगल में जब कथित तात्या गिरफ्तार किए गए तो उनके साथ दो व्यक्ति थे। इनमें से एक का नाम नारायण तथा दूसरे का नाम रामराव था। कथित तात्या ने अदालत में दिए गए अपने वक्तव्य में कहा है कि ये लोग उनके रसोइये थे। पर उनका यह कथन तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए ठीक प्रतीत नहीं होता। तात्या के लिये यह अत्यन्त संकटकाल था। उनकी सारी सेना तथा साथी उनका साथ छोड़ चुके थे। अंग्रेज़ी सेना का घेरा भी उनके चारों ओर कसता चला जा रहा था। उनकी शक्ति का अन्त निकट ही प्रतीत होने लगा था। ऐसी परिस्थितियों में यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि साधारण रसोइये उनके साथ रहने का साहस करते। यही सम्भव प्रतीत होता है कि यह नारायण ही नारायणराव भागवत हों जो तात्या के स्थान पर गिरफ्तार होकर फाँसी लटक गए हों तथा इस प्रकार तात्या की रक्षा करने में अपना बलिदान कर दिया हो।

श्री नारायणराव टोपे से पूछा गया कि : "उनके स्मरण में क्या कभी तात्या की मृत्यु का कोई समाचार उनके कुटु-म्बियों के पास आया था ?" उत्तर में उन्होंने कहा : "मैं अपने

परिवार के वृद्धजनों से सुनता आया हूँ कि कोई ५० वर्ष पूर्व तात्या के भाई रामकृष्ण के पुत्र गजानन का एक पत्र बड़ौदा से आया था। इसमें लिखा था कि तात्या की काठियावाड़ में मृत्यु हो गई है। पर इस पत्र में न तो मृत्यु की निश्चित तिथि ही थी और न निश्चित स्थान। श्री नारायणराव की आयु इस समय कोई ५८ वर्ष की है। ५० वर्ष पूर्व इनकी आयु ८ वर्ष से अधिक न होगी। उस समय की घटना स्पष्ट रूप से स्मरण रखना इनके लिए सम्भव न था। अतः लेखक ने यही प्रश्न उनकी चचेरी बहिन श्रीमती गंगाबाई से किया। उनकी आयु इस समय कोई ८० वर्ष की है। ५० वर्ष पूर्व इनकी आयु कोई ३० वर्ष की रही होगी। अतः उस समय की घटनाओं की उनकी स्मृतियाँ अधिक विश्वसनीय मानी जानी चाहिये। उक्त प्रश्न के उत्तर में उन्होंने भी वे ही बातें कहीं जो नारायण-राव ने कही थीं। पर यह पत्र किस वर्ष आया इसकी उन्हें निश्चित कल्पना नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि "हमारे कुटुम्ब में प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधि पर सरकार की सशंक आँखें सदा लगी रहती थीं। इससे हमारा परिवार सदा आतंकित रहता था। जब कभी कोई पत्र आता था तो पढ़कर उसे नष्ट कर दिया जाता था।" उनसे और भी अनेक प्रश्न किए ताकि पत्र के आने के समय की कल्पना हो सके। अन्त में अपनी स्मृति पर बहुत ज़ोर देते हुए उन्होंने कहा, "मुझे इतना स्मरण हो रहा है कि जिस वर्ष गजानन का यह पत्र आया था उस वर्ष उज्जैन में सिंहस्थ का मेला था।" जब बृहस्पति सिंहराशि में आता है उसी वर्ष उज्जैन में सिंहस्थ का मेला

लगता है। इसके अनुसार आज से (१९६२ से) ५३ वर्ष पूर्व विक्रमीय सम्वत् १९६४ अर्थात् सन् १९०९ में सिंह राशि में वृहस्पति था। श्री गंगूबाई के कथन से तो यही मालूम होता है कि इसी वर्ष पत्र आया था। अपना कथन जारी रखते हुए उन्होंने कहा, "मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब गजानन का यह पत्र आया था तो परिवार में गड़बड़ी मच गई थी। इस पत्र में तात्या की मृत्यु-तिथि न होने के कारण परिवार के बड़े-बूढ़े इस बात से चिन्तित हो गये थे कि तात्या की मृत्यु-तिथि का निश्चय किस प्रकार किया जाय। कुटुम्बियों में गंभीर विचार-विमर्श हुआ। अन्त में शास्त्रज्ञों से परामर्श लिया गया। उन्होंने कहा कि अगर मृत्युतिथि निश्चित रूप से न मालूम हो तो शास्त्रानुसार किसी भी तिथि को मृत्यु-तिथि माना जा सकता है। इसी दिन उनका वर्षश्राद्ध भी किया जा सकता है। निदान चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मृत्युतिथि निश्चित की गई।"

इतिहास के अनुसार तात्या की मृत्यु १८ अप्रैल, सन् १८५९ को हुई थी। इस दिन भी चैत्र शुक्ल पूर्णिमा थी। कथित तात्या तथा वास्तविक तात्या की मृत्यु-तिथियाँ एक होना वास्तव में आश्चर्य की बात है। साथ ही इसकी सम्भावना बहुत कम प्रतीत होती है। अधिक सम्भव तो यह मालूम होता है कि टोपे-कुटुम्बियों ने तात्या की मृत्युतिथि निश्चित करते समय इस तिथि को मृत्यु-तिथि मान लेना उचित समझा हो, क्योंकि सारा संसार इस बात पर विश्वास करता था कि तात्या की मृत्यु चैत्र शुक्ल पूर्णिमा विक्रमी

सम्वत् १९१६ (२८ अप्रैल, सन् १८५९) को शिवपुरी में फांसी के तख्ते पर हुई थी। आज भी इसी तिथि को टोपे कुटुम्ब में तात्या का श्राद्ध किया जाता है।

तात्या टोपे की मृत्यु के सम्बन्ध में भी अनेक आख्यायिकाएं प्रसिद्ध हैं। जब से इस बात का प्रतिपादन होने लगा है कि तात्या की मृत्यु फाँसी के तख्ते पर नहीं हुई, तबसे पत्रों में तात्या की मृत्यु के सम्बन्ध में अनेक समाचार प्रकाशित होने लगे हैं।

मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध इतिहास-संशोधक श्री० ए० ए० पाटिल[1] का कथन है कि जब तात्या के स्थान पर दूसरा व्यक्ति फाँसी लटक गया तो तात्या गुप्त रूप में रहने लगे। श्री पण्डित के अनुसार चितंबरे नामक दक्षिणी ब्राह्मण परिवार ने इन्हें गुप्त रूप से रहने में तात्या की बड़ी सहायता की। तात्या कुछ दिनों तक आगर (तत्कालीन ग्वालियर रियासत का एक गांव) में रहे। अपने जीवन के अन्त समय में तात्या राजगढ़ स्टेट के एक गाँव में अपना नाम तथा वेश बदलकर रहते थे। यहीं रोगशय्या पर इनकी मृत्यु हुई। इसी गाँव में श्री पाटिल को तात्या का कवच (जिरह बख्तर), तलवार और टोपी मिली थी जिन्हें उन्होंने दिसम्बर, १९५२ में ग्वालियर में होनेवाली अखिल भारतीय ऐतिहासिक परिषद् के अवसर पर होनेवाली प्रदर्शनी में रखा था।[2]

---

१. 'पद्मिनी' के सम्बन्ध के इनके संशोधन की ऐतिहासिक जगत् में बड़ी प्रशंसा हुई है।

२. 'Hindustan Times', New Delhi, dated Feb. 14, 1956.

इस प्रकार धूलिया के श्री शहादूरामजी गायकवाड़ का कथन है कि कोई ५० वर्ष पूर्व धूलिया में एक तेजस्वी व्यक्ति आकर रहने लगा था। यह व्यक्ति नवयुवकों को व्यायाम करने के लिए सदा प्रोत्साहित किया करता था। यह व्यक्ति वृद्ध था। श्री शहादू गायकवाड़ के भाई स्व यादवराव गायकवाड़ ने इनकी बड़ी सेवा की थी। जब इस व्यक्ति का अन्त समय निकट आया तो इसने यादवराव तथा अन्य लोगों को अपने पास बुलवाया। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। अपने को बड़े प्रयत्न से सँभालकर वह बोला : "अब तो मेरा सब कुछ समाप्त हो चुका है। मैं कौन हूं इस बात का पता किसी को लगे अथवा न लगे। अब इससे कोई अन्तर होने वाला नहीं। पर अब मैं आपसे कहता हूं कि जो व्यक्ति तात्या टोपे के नाम से प्रसिद्ध है वह व्यक्ति मैं ही हूँ। हमने कई लड़ाइयाँ लड़ीं। अन्त में सब समाप्त हुआ। अगर आप लोगों को पता चल जाय कि मैं कौन हूँ तो इससे मेरा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। पर आप लोग किसीसे यह भेद न कहें अन्यथा यह भेद इतने दिनों तक छिपाये रखने के आरोप पर आपको कष्ट दिये जा सकते हैं।" श्री० गायकवाड़ के अनुसार उन्हें तात्या की मृत्यु कब हुई इसका स्मरण नहीं। पर उनकी कल्पना है कि सन् १९०८ और १९१० के बीच में ही तात्या की मृत्यु हुई थी।[1]

कुछ भी हो, अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है जिसके आधार पर तात्या की मृत्यु के सम्बन्ध में

---

१. 'नवयुग' (मराठी) साप्ताहिक, ११ अगस्त, १९५७।

निश्चित रूप से कोई बात कही जा सके। इस दिशा में खोज की जाने की आवश्यकता है। जब तक उपर्युक्त कथनों को किसी ऐतिहासिक तथ्य का समर्थन प्राप्त नहीं होता तब तक उन्हें कौटुम्बिक पुराणों से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। तात्या टोपे की मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहास अभी तक पूर्ण रूप से अन्धकार में है।

ऐतिहासिक पुरुष तात्या

महापुरुष कभी परिस्थितियों के दास नहीं होते। प्रत्युत वे अपने पौरुष और पराक्रम से परिस्थितियों का निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। सन् १८५७ की क्रांति के स्वातंत्र्य-वीर तात्या टोपे इसी प्रकार के महापुरुषों में थे, जिन्होंने परिस्थितियों के सामने कभी सिर नहीं झुकाया और अन्धकारमय और निराशाजनक परिस्थितियों में भी मार्ग निकालकर अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति का परिचय दिया। कर्नल मालकम ने इनके विषय में लिखा है: "उन्हें सफलताएं बहुत कम मिलीं पर पराजय अनेक मिलीं। पर उन्होंने न तो कभी साहस खोया, और न हिम्मत हारी। ऐसा प्रतीत होता था कि पराजय उन्हें सदा नवस्फूर्ति और उत्साह प्रदान करती थी। वास्तव में सत्तावनी क्रांति का राष्ट्रीय संकल्प और आत्मविश्वास तात्या के चरित्र में पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित हुआ था।

"संसार के छापेमार नेता" नाम सुप्रसिद्ध ग्रंथ के लेखक

पर्सी ब्राउन स्टैंडिंग ने छापेमार नेताओं की मालिका में तात्या को सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया है। वे लिखते हैं: "वे (तात्या) विद्रोहियों में सबसे अधिक बुद्धिमान थे। अगर इसी तरह के और कुछ व्यक्ति होते तो हिन्दुस्तान अंग्रेज़ों के हाथों से निकल गया होता। उनमें एक महान सेनापति के सभी गुण विद्यमान थे। उनमें योजना बनाने, व्यवस्था करने, नियंत्रण करने तथा एकाग्रता की अनुपम क्षमता थी। उनमें सबसे बड़ा गुण यह था कि वे इस बात को कभी अनुभव ही नहीं करते थे कि उनकी पराजय हुई।"

श्रीमती हेनरी ड्यूबर्ले ने इनके सम्बन्ध में लिखा है: "उन्होंने जो अत्याचार किये उनसे हम चाहे जितनी घृणा करें पर उनके सेनानायकत्व के गुणों और महान योग्यताओं के कारण हम उनका आदर किये बिना नहीं रह सकते।"[१]

इस प्रकार अंग्रेज़-लेखकों ने भी तात्या की योग्यता, साहस और अपूर्व संगठन-शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

क्रांति के आरंभिक काल में तात्या तो केवल आज्ञापालक मात्र थे। कानपुर की घटनाओं में क्रांतिकारियों की ओर से जो कार्य होते थे वे सब नानासाहब पेशवा के नाम से होते थे। फतेहपुर, औंग, विशेषकर कानपुर के युद्ध में तात्या ने सेना की व्यवस्था तथा युद्ध में व्यूह-रचना आदि में प्रमुख भाग लिया। अंग्रेज़ सेनानियों को क्रांतिकारी सेना की व्यवस्था के

---

१. Campaign Experiences in Rajpootana and Central India, page 237.

पीछे किसी चतुर मस्तिष्क का आभास मिलता रहा। वह चतुर मस्तिष्क तात्या टोपे का ही था। पर रणव्यवस्था का भार तात्या पर होने पर भी रण का नियन्त्रण उनके हाथों में न था।

कानपुर की पुनर्विजय का श्रेय मुख्यतः तात्या की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता तथा साहसपूर्ण योजना को ही प्राप्त है। सेनापति विंडहम की पराजय तात्या की एक महत्त्वपूर्ण विजय थी। जिस समय कानपुर के अन्य क्रांतिकारी नेता निराश होकर इधर-उधर भटकने लगे थे उस समय तात्या का मस्तिष्क कानपुर को फिरंगियों के चंगुल से मुक्त करने की योजना बनाने में लगा हुआ था।

कानपुर के पतन के बाद काल्पी को, अत्यन्त अल्पकाल में एक सुदृढ़ क्रांति-केन्द्र बना देना तात्या जैसे असाधारण संगठन-शक्ति रखनेवाले व्यक्ति का ही काम था। पर जब इस केन्द्र में अंग्रेज़ों को ललकारने की शक्ति आ गई तब काल्पी के केन्द्र को नियन्त्रित करने का अधिकार तात्या के हाथों में न रहा। वे सेनापति मात्र रह गये। रावसाहब की आज्ञानुसार ही उन्हें चलना पड़ता था। परिणामस्वरूप काल्पी का पतन आश्चर्यजनक शीघ्रता से हो गया। ग्वालियर की पराजय के बाद ही वास्तव में तात्या को स्वतन्त्र रूप से सूत्र-संचालन करने के अधिकार प्राप्त हुए थे। पर इस काल तक क्रांति की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। नवीन सेना की भरती करने, शिक्षित करने तथा उन्हें कार्यक्षम बनाने का अवकाश ही नहीं रह गया था। हर दिशा में अंग्रेज़ी सेनाएं तात्या की शक्ति को कुचल देने के लिए उद्यत खड़ी थीं।

तात्या के पास इस समय जो सेना थी उसे सेना कहना ठीक न होगा। इसके अधिकतर सैनिक युद्ध-कला से अनभिज्ञ तथा अनुशासनहीन थे। इस सेना के कुछ सैनिक अंग्रेज़ी सेना के पूर्व सिपाही भी थे। वे शिक्षित अवश्य थे, पर जब ये सैनिक विद्रोहकर अंग्रेज़ी छावनियों के बाहर निकले थे तो इन्होंने अनुशासन को पूर्णरूप से तिलांजलि दे दी थी। वे अंग्रेज़ी अफ़सरों की आज्ञा-पालन करने के आदि थे। वे क्रांति के नेताओं को अनुभवहीन तथा अज्ञानी समझते थे। अतः इनकी आज्ञा मानना वे आवश्यक नहीं समझते थे। क्रांतिकारी सेना के नवीन रंगरूटों को सैनिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था। केवल उत्साह और जोश के कारण ही वे इस सेना में भरती हुए थे। इस प्रकार तात्या की सेना नौसिखियों तथा अनुशासनहीन लोगों की भीड़ मात्र थी। अंग्रेज़ी सेना का सामना होने पर आक्रमण करने की योजना को कार्यान्वित करने में अपनी कुशलता खर्च करने के बजाय तात्या को अपनी सेना को संभालने में ही सारी शक्ति लगानी पड़ती थी।

अगर बीच-बीच में सेना को युद्ध में विजय मिलती रहती है तो उसमें जोश, उत्साह और अन्तिम विजय प्राप्त करने की आशा बनी रहती है। पर अगर लगातार हार ही होती रहे और जीत की कोई आशा ही न रह जाए तो सेना को सँभाले रखना सरल कार्य नहीं होता—विशेषकर ऐसी सेना को जो अनुशासनहीन हो, अशिक्षित हो और अनुभवहीन हो। प्रत्येक पराजय के बाद तात्या के अनेक सैनिक उनका साथ छोड़ देते थे तथा लूट आदि में जो कुछ धन उन्हें मिलता था, उसे लेकर

वे अपने-अपने घरों की ओर चल देते थे। इस प्रकार प्रत्येक पराजय के बाद तात्या के सामने अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ बनाये रखने की समस्या उठ खड़ी होती थी। सहसा लोग पराजित सेना के सैनिक बनने को तैयार नहीं होते थे। पर तात्या लोगों को समझा-बुझाकर अपनी सेना में भरती करने में सफल होते थे। तात्या में अपनी सेना के लिए आदमियों को एकत्र करने तथा उनके निराश एवं उत्साहहीन मन में जोश और आशा की नवस्फूर्ति भरने की अद्‌भुत क्षमता थी।

एक चतुर जनरल की तरह तात्या अपनी सेना की कमज़ोरी को समझते थे। इसी लिए उन्होंने अंग्रेज़ी सेना का मैदान में सामना करने के बजाय छापेमारी की रणनीति अपनाई। उन्होंने इस छापेमारो नीति का इतनी सफलता से प्रयोग किया कि १० माह तक ७-८ अंग्रेज़ी सेनायें पीछे पड़ी होने पर भी वे तात्या को दबाने में असफल रहीं। नौ महीनों तक मालवा, राजपूताना, बुन्देलखण्ड, विंध्यप्रदेश, गुजरात आदि भागों में तीन हज़ार मील का चक्कर लगाकर अनेक अंग्रेज़ सेनानियों के छक्के छुड़ा दिए। ब्रिगेडियर पार्क ने नौ दिनों में २४० मील तक उनका पीछा किया। ब्रिगेडियर समरसेट ने भी इतने ही दिनों में २३० मील की दौड़ लगाई। कर्नल होम्स ने २५ घन्टों में ५४ मील तै किये। ब्रिगेडियर होनर ने चार दिनों में १४५ मील पार किये। पर इतनी तेज़ चाल होने पर भी कोई भी तात्या को न पा सका क्योंकि तात्या की चाल तो इससे भी तेज़ थी।

अनेक बार तात्या को घेरने का प्रयत्न किया गया पर

वे हर बार घेरे को तोड़कर निकल गये। छापेमारी की रण-नीति का अवलम्बन करने में तात्या ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। तात्या की छापेमारी को अंग्रेज़-लेखकों ने रोमाञ्चकारी तथा चित्ताकर्षक कहा है। तात्या एक भारतीय सेनानी की तरह युद्ध की योजनायें बनाते और उन्हें भारतीय प्राचीन पद्धति के अनुसार ही कार्यरूप में परिणत करते। योरोपियन रणनीति उनकी रणनीति से भिन्न थी। "वह एक मराठा की तरह लड़ता है न कि एक काले योरोपियन की तरह। राष्ट्रीय रणनीति के कारण ही वह सफल होता है।"[1] अपने पड़ाव के स्थान चुनने में भी वे अत्यन्त निपुण थे। वे अपनी सेना का ऐसी जगह पड़ाव डालते थे कि जहाँ अंग्रेज़ों का सहसा आक्रमण न हो सके। यही कारण है कि तात्या की सेना पर अचानक आक्रमण करने के अंग्रेज़ सेनानियों के अनेक प्रयत्न असफल ही रहे।

अंग्रेज़ सेनापति इस बात का सदा प्रयत्न करते थे कि तात्या की सेना से मैदान में सामना हो ताकि उनकी समस्त सैनिक शक्ति को नष्ट कर सकें। परन्तु चतुर तात्या उनको ऐसा करने का अवसर ही न देते थे। उन्होंने किसी भी एक युद्ध में अपनी अन्तिम हार-जीत दाँव पर नहीं लगाई। हर पराजय के बाद वे धूल झाड़कर पुनः खड़े हो जाते थे और सेना के साथ घूमने लगते थे। अंग्रेज़ सेनानी, तात्या के धोखा देकर निकल जाने पर, उनसे खीज उठते थे। इतिहासकार के

1. 'Friend of India', Calcutta. Issue of 16th Dec. 1858.

तथा मालीसन ने अंग्रेज़ सेनापतियों की इस झुंझलाहट को इस प्रकार व्यक्त किया है, "उसने (तात्या ने) जिन गुणों का परिचय दिया वे प्रशंसनीय हैं। पर अगर योग्य जनरल होने के साथ-साथ उनमें आक्रमणशील सिपाही का साहस होता तो वह और भी अधिक प्रशंसनीय होता।"[१] अंग्रेजों को अनुशासित और शिक्षित सेना के विरुद्ध आक्रमणशील सिपाही तभी साहस कर सकेगा जब उसके पास वैसी ही अनुशासित और शिक्षित सेना हो—अन्यथा उसका साहस आत्म-हत्या करने की तरह दुःसाहसपूर्ण होता। पर तात्या के पास ऐसी सेना थी ही कहाँ ? अगर हम कल्पना करें कि तात्या की अर्द्ध-शिक्षित अनुशासनहीन सेना का अधिनायकत्व सर ह्यू रोज़, सर कालिन कैम्पबेल, जनरल नेपियर, जनरल हैवलाक आदि सुप्रसिद्ध सेना-नायकों के हाथ में होता तो क्या इन महान् सेनानियों का रणक्षेत्र में थोड़ी देर टिकना भी सम्भव था ? पर तात्या इसी सेना के बल पर अनेक अंग्रेज़ी सेनानियों को एक वर्ष तक चुनौती देते हुए घूमते रहे। अनेक स्थानों पर पराजित होने पर भी वे सदा अजेय रहे। ८ अंग्रेज़ी सेनाएं योग्य सेनापतियों के अधिनायकत्व में तात्या की शक्ति को नष्ट करने में लगी हुई थीं। पर उनके सब प्रयत्न असफल रहे। यही तात्या के महान सेनानी होने की प्रमाण है।

तात्या का गुप्तचर विभाग इतना संगठित था कि अंग्रेज़ी छावनियों का एक-एक समाचार तात्या तक पहुँचता रहता था।

---

1. History of Indian Mutiny. vol. V. Page 266.

कहाँ और कितनी सेना है, उनके पास कितनी रण-सामग्री है, वह किस दिशा में बढ़ रही है आदि बातों की जानकारी तात्या को रहती थी। जनता का उन्हें पूर्ण विश्वास प्राप्त था। उसकी दृष्टि में वे राष्ट्रीय वीर थे। लोग उन्हें सच्ची ख़बरें देते थे। पर अंग्रेज़ों को वे जान-बूझकर गलत खबरें देते थे। यही कारण था कि अंग्रेज़ी सैनिक अफ़सर तात्या की सेना का पता लगाने में प्रायः धोखा खाते थे। नौ महीनों तक अपनी सेना के साथ वे तीन हज़ार मील तक बिना किसी संगठित रसद-विभाग के, घूमते रहे। जनता की सहानुभूति तथा सहायता के बल पर ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी।

देशी नरेश प्रायः सभी-उनके विरुद्ध थे। पर उनकी प्रजा तथा उनकी सेना तात्या की पक्षपाती थी। अनेक बार देशी नरेशों ने अपनी सेना को तात्या का सामना करने भेजा पर वह तात्या से जाकर मिल जाती थी। देशी नरेशों की सेना को अपने पक्ष में कर लेने में तात्या सिद्ध-हस्त थे।

संकट काल में धैर्य न खोना, तात्या का प्रमुख गुण था। कानपुर, काल्पी तथा ग्वालियर की पराजयों के बाद तात्या के सामने ऐसी विषम और भयंकर परिस्थियां पैदा हो गई थीं कि अगर कोई और व्यक्ति होता तो वह अधिक दिनों तक रणक्षेत्र में न टिक पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि जितने ही बड़े संकट आते थे तात्या की प्रतिकार-शक्ति उतनी ही सुदृढ़ होती चली जाती थी। अनेक बार ऐसी परिस्थिति हो गई जब कि तात्या के पास न सेना रह गई थी, न शस्त्र, न धन, न मित्र और न कोई योग्य सलाहकार। पर ऐसी स्थिति में भी

तात्या के साहस और कार्य-क्षमता में कभी कोई कभी नहीं आई।

रंग-रूप में तात्या कोई सुन्दर व्यक्ति नहीं कहे जा सकते। उनका रंग साँवला था। कद मंझौला था। उनका शरीर कसा हुआ और गठीला। चेहरा कुछ फूला हुआ था तथा उस पर चेचक के दाग़ थे। नाक कुछ चपटी थी। आँखें भूरी तथा दांत छोटे और सुन्दर थे। उनकी आंखें विशाल थीं। उनके बालों का रंग काला था। इस प्रकार तात्या के शरीर की बनावट भले ही विशेष आकर्षक न हो पर उनके चेहरे पर तेज था। आँखों से दृढ़ निश्चय झलकता था तथा व्यवहार में वीरता तथा निर्भयता टपकती थी।

क्रान्ति के नेताओं में केवल तात्या ही ऐसे व्यक्ति थे जिनके मन में अंग्रेज़ों के सामने आत्म-समर्पण करने का विचार ही नहीं उठा। जीवित बचे हुए प्रायः सभी नेताओं ने अंग्रेज़ों से पत्र-व्यवहारकर आत्मसमर्पण करने की शर्तों को जानने का प्रयत्न किया। पर वीरवर तथा स्वाभिमानी तात्या ने इस प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया। क्रान्ति-पथ पर बढ़ाया हुआ कदम वापस लेना उन्होंने आत्म-गौरव के विरुद्ध समझा। उन्हें अपने ऐतिहासिक कार्यों की सत्यता पर अडिग आस्था थी। इसी कारण लाभ-हानि तथा जय-पराजय की परवाह किये बिना एक कर्मयोगी की तरह कर्मक्षेत्र में डटे रहे।

टोपे परिवार

महाराष्ट्र के नासिक ज़िले में येवला नामक एक छोटा-सा गाँव है। यही गाँव टोपे परिवार का मूलस्थान है। तात्या के पिता पाण्डुरंग भट अपने समय के महान् विद्वान् माने जाते थे। तत्कालीन पेशवा बाजीराव ने इनकी विद्वत्ता की ख्याति से आकर्षित होकर इन्हें पूना आने के लिए आमंत्रित किया। अपने महल (शनिवार वाड़ा) के पास इन्होंने इनके रहने के लिए एक मकान बनवा दिया। बाजीराव ने इन्हें अपने 'धर्मादाय' विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। पाण्डुरंग की पत्नी का नाम रखमाबाई था। इनके दो पुत्र थे। एक का नाम रामचन्द्र तथा दूसरे का नाम गंगाधर था। १८१८ ई० में पांडुरंग भट, अपने परिवार को लेकर, बाजीराव पेशवा के साथ ब्रह्मावर्त आकर रहने लगे। यहाँ भी वे उनके धर्म और दान विभाग का संचालन करते रहे।

यहाँ आने के छः वर्ष बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। बाजीराव ने इनका विवाह जेजूरकर की मथुरा नामक एक कन्या से करा दिया। द्वितीय पत्नी से पांडुरंगराव को छः पुत्र तथा एक पुत्री हुई। इन सबका लालन-पालन ब्रह्मावर्त में ही हुआ। यहीं इनके यज्ञोपवीत संस्कार तथा विवाह आदि हुए। पांडुरंग के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र (तात्या) का विवाह उनके बचपन में ही हुआ था। इनकी पत्नी का नाम जानकीबाई था। इन्हें १८४१ ई० में मनोरमा नामक एक कन्या तथा १८४३ ई० में सखाराम नामक पुत्र हुआ। मनोरमा का

विवाह काशी (वाराणसी) के सड़शिधे नामक परिवार में हुआ।

कानपुर की पराजय के बाद ब्रह्मावर्त में भगदड़ मच गई थी। अपने प्राणों की रक्षा के लिये सभी वहाँ से भागने लगे। पांण्डुरंग भट ने भी समझ लिया था कि अब इनका ब्रह्मावर्त में रहना सुरक्षित नहीं। तात्या अंग्रेजों के कट्टर शत्रु तो थे ही। उनके परिवार को अंग्रेज़ ब्रह्मावर्त में शांति-पूर्वक रहने देते, इसकी संभावना ही न थी। अतः उन्होंने ब्रह्मावर्त से दूर किसी सुरक्षित स्थान में आश्रय लेने का निश्चय किया। व्यवहार-चतुर और दूरदर्शी मथुराबाई ने ब्रह्मावर्त से भागने के पूर्व अपने घर का बहुमूल्य तथा महत्वपूर्ण सामान अपनी एक विश्वसनीय नौकरानी के यहाँ रख दिया। उसने उस सामान को भयंकर उथल-पुथल के दिनों भी सुरक्षित रखा और जब यह परिवार पुनः वापस ब्रह्मावर्त आया तो उस नौकरानी ने सब सामान मथुराबाई को पुनः सौंप दिया।

पांडुरंग भट अपनी पत्नी, पुत्रों, पुत्री तथा पुत्र-वधुओं के साथ ब्रह्मावर्त से भागकर जालौन के निकट चुर्खी नामक स्थान में अपने एक संबंधी के यहाँ आकर रहने लगे। तात्या की पुत्री मनोरमा को बच्चा होने वाला था अतः तात्या की पत्नी, पुत्री एवं पुत्र पहले ही से यहाँ आ गये थे। काल्पी की तूफानी घटनाओं के समय ही उसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गोविन्द रखा गया। कोंच की पराजय के बाद ही तात्या की पत्नी की मृत्यु चुर्खी में ही हुई। इसी कारण

तात्या काल्पी के युद्ध में उपस्थित न थे। काल्पी की पराजय के बाद पांडुरंग ने चुर्खी में रहना सुरक्षित नहीं समझा। पुनः वे अपने परिवार के साथ भागकर भिंड पहुँचे तथा यहीं वे अपने एक संबंधी के यहाँ गुप्तरूप से रहने लगे। भिंड तत्कालीन ग्वालिर राज्य का ज़िला था। किसीने सरकारी अधिकारियों को सूचना दे दी कि टोपे परिवार भिंड में आ गया है। निदान १५ अगस्त, १८५८ को यह समस्त परिवार गिरफ़्तार कर लिया गया तथा ग्वालियर के किले में इसे नज़रबन्द किया गया। तात्या के सबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस परिवार के सदस्यों को तरह-तरह के कष्ट दिए गए। इस परिवार के सदस्य क्रांति में भाग लेने के दोषी हैं अथवा नहीं, इस बात की जाँच करने के लिए सरकार ने मेजर चार्ल्स बर्न्स गुइन्स को नियुक्त किया। इसने पूरी जाँच की तथा २७ अगस्त, १८५६ ई० को इन्हें निर्दोष घोषित कर मुक्त कर दिया। मुक्ति के समय पांडुरंग से कहा गया कि ब्रह्मावर्त के सिवा किसी अन्य स्थान पर जाकर रहें। पर पांडुरंग ने इसे स्वीकार नहीं किया और उन्होंने उत्तर दिया, वे नज़रबन्दी में भले ही रखे जाएँ पर वे ब्रह्मावर्त से अन्य कहीं जाकर नहीं रहेंगे। अन्त में यह मामला भारत सरकार के पास निर्णय के लिए भेजा गया।

ग्वालियर नरेश भी इस परिवार को अपने राज्य में नहीं रखना चाहते थे। बहुत सोच-विचारकर भारत सरकार ने इस परिवार को ब्रह्मावर्त वापस जाकर रहने की लिखित

आज्ञा प्रदान की।[१] अन्त में सारा परिवार ब्रह्मावर्त वापस आया। उनके रहने का मकान अंग्रेज़ सैनिकों ने जला डाला था। उसी स्थान पर एक कच्चा मकान बनवाकर पांण्डुरंग भट अपने परिवार के साथ रहने लगे।

पांडुरग भट तीन-चार वर्षों के संकटमय जीवन से ऊब उठे। परिवार से अलग रहकर जीवन के शेष दिन शांति-पूर्वक ईश्वर-चिन्तन में बिताने का उन्होंने निश्चय किया। वे अपनी पत्नी को लेकर काशी जाकर रहने लगे। १८६२ ई० में पांडुरंग भट की मृत्यु हो गई। इनकी मृत्यु के तीन-चार महीने बाद ही मथुराबाई की भी मृत्यु हो गई।

कानपुर में क्रांति के अवसर पर तात्या के भाई गंगाधर दक्षिण में येवला गए हुए थे। जब गंगाधर ने कानपुर की गड़बड़ी का हाल सुना तो वे अपने परिवार वालों के लिए चिन्तित हो उठे। अपनी पत्नी तथा पुत्र को येवला में ही छोड़कर वे अकेले ही उत्तर भारत की ओर रवाना हुए। वे भिंड में अपने पिता से आकर मिले और वहीं वे भी अपने परिवार के साथ गिरफ्तार हुए थे। नज़र-बन्दी से मुक्त होने पर वह ब्रह्मावर्त में अपने माता-पिता के साथ रहने लगे। पर इनके पुत्र येवला में ही रहे। आज भी इनके पौत्र वहीं रहते हैं। गंगाधर की मृत्यु १८९९ ई० में ब्रह्मावर्त में ही हुई।

तात्या के छः सौतेले भाइयों में रघुनाथ सब से बड़े थे।

---

१. यह मुक्ति-पत्र टोपे परिवार में आज भी सुरक्षित है। देखिये परि-शिष्ट—३।

यह बलवंत राव कहलाते हैं। इनका जन्म सन् १८३२ में ब्रह्मावर्त में हुआ था। इनकी पत्नी का नाम गंगाबाई था। नज़रबन्दी से छूटने के बाद टोपे परिवार की जीविका का कोई साधन नहीं रह गया था। आर्थिक संकट से परेशान होकर रघुनाथ नेपाल चले गये। वे वहाँ पेशवा परिवार की महिलाओं ने जो गाँव ख़रीद लिये थे, उनकी व्यवस्था देखने लगे। सन् १८८४ में इनकी नेपाल में मृत्यु हो गई।

रघुनाथ से छोटे थे रामकृष्ण। इनका जन्म सन् १८३५ में हुआ था। इन्हें लोग अप्पासाहब कहते थे। इनकी पत्नी का नाम राधाबाई था। बड़ौदा में रामकृष्ण की ससुराल थी। यह सन् १८६२ में नौकरी की तलाश में बड़ौदा पहुँचे थे और वहीं रहने लगे थे। इनको तीन पुत्र तथा चार कन्यायें हुई थीं। दो पुत्र तो उन्हीं के जीवनकाल में मर गए थे। रामकृष्ण की मृत्यु सन् १९१३ में बड़ौदा में हुई थी। उनका तृतीय पुत्र गजानन वहीं रहता था, अब इनकी भी मृत्यु हो चुकी है।

तात्या के तीसरे सौतेले भाई थे लक्ष्मण। इनका जन्म सन् १८३८ में हुआ था। नजरबन्दी से मुक्त होने के बाद थोड़े दिन यह ब्रह्मावर्त में ही रहे। इनके दो विवाह हुए थे। द्वितीय पत्नी का नाम भागीरथी बाई था। इनके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। इनमें से तीन पुत्र अब भी जीवित हैं। सबसे बड़े श्री शंकरराव ग्वालियर में रहते हैं और इस समय इनकी आयु ८० वर्ष की है। दूसरे हैं श्री नारायण राव। ब्रह्मावर्त में अपने परिवार के मकान में यह आज भी रहते हैं। तीसरे हैं रघुनाथराव। यह भी ग्वालियर

में ही रहते हैं। लक्ष्मण की मृत्यु ग्वालियर में सन् १९२२ में हुई।

लक्ष्मण से छोटे बैजनाथ थे। इनका जन्म सन् १८४३ में हुआ था। इन्होंने नेपाल सरकार की नौकरी कर ली थी। इनकी पत्नी का नाम था लक्ष्मीबाई। इनकी मृत्यु सन् १८९८ में ब्रह्मावर्त में हुई। इनकी एकमात्र पुत्री श्री काशीबाई नेवालकर अपने पुत्र विनायक के साथ बम्बई में रहती हैं। यह भी अत्यन्त वृद्ध हैं।

बैजनाथ से छोटे थे सदाशिव। इनका जन्म सन् १८४७ में हुआ था। इनकी पत्नी का नाम था पार्वतीबाई। इन्होंने ब्रह्मावर्त के अपने परिवार का मकान संभाले रहना ही पसंद किया। यहीं पर इनकी मृत्यु सन् १९२४ में हुई। इनकी विधवा पुत्री श्रीमती गंगाबाई मौने अपने चचेरे भाई नारायण राव के साथ ब्रह्मावर्त में रहती हैं। इनकी भी आयु लगभग अस्सी वर्ष की है।

सबसे छोटे थे विनायक। इनका जन्म १८४९ में हुआ था। इनकी पत्नी का नाम सरस्वतीबाई था। विनायक की मृत्यु १९३१ ई० में हुई। यह आजीवन ब्रह्मावर्त में ही रहे। इनके कोई पुत्र न था। अतः इन्होंने अपने भाई लक्ष्मण के पुत्र नारायण को अपने पास ब्रह्मावर्त में रखा।

तात्या की सौतेली बहन का नाम दुर्गा था। इसका जन्म सन् १८५३ में हुआ था। इसका विवाह काशी के गोपालराव खुर्देकर के साथ १८६१ ई० में हुआ था। दुर्गा की मृत्यु सन् १९२४ में ब्रह्मावर्त में हुई थी।

सन् १९५७ में सत्तावनी क्रांति की शताब्दि बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इस अवसर पर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने श्री नारायण राव टोपे को एक हज़ार रुपये तथा वस्त्रादि भेंटकर इस ऐतिहासिक परिवार का सम्मान किया था। तात्या के भाई लक्ष्मणराव के तीनों पुत्रों को भारत सरकार ५० रुपये प्रतिमास पेंशन देती है। इसके अतिरिक्त श्री शंकरराव और रघुनाथ राव को मध्यप्रदेश सरकार की ओर से तथा श्री नारायणराव को उत्तर प्रदेशीय सरकार की ओर से ५० रुपये मासिक सहायता मिलती है।[१]

•

---

१. यह परिच्छेद टोपे परिवार के सदस्यों द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित है।

परिशिष्ट—१

काल्पी पर विजय प्राप्त करने के बाद अंग्रेज़ सैनिक अफ़सरों को एक ऐसी सन्दूक मिली जिसमें महत्वपूर्ण कागज़ात थे। इन अफसरों ने इस सन्दूक पर 'गुप्त पत्रव्यहार' की मुहर लगाकर उसे सीधे सरकार के पास भेज दिया। इसके कागज़ात प्रकाशित करना सरकार ने उचित नहीं समझा। इस गुप्त संदूक के तीन पत्र अभी कुछ वर्षों पूर्व प्रकाश में आये हैं। ये तीनों पत्र मराठी भाषा की मोड़ी लिपि में लिखे गये हैं।[१] इन तीनों पत्रों का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है :

(१)

राव साहब का महारानी लक्ष्मीबाई को पत्र :

"चिंरजीव गंगाजल निर्मल लक्ष्मीबाई राज्य झांसी को पांडुरंग सदाशिव पंत प्रधान पेशवा बहादुर का आशिर्वाद। अपरंच १८ माह रजब तक काल्पी के क़िले में सब कुशल है। फाल्गुन बदी द्वितीया सोमवार[२] को प्रातःकाल चरखारी में मोरचा लगाया गया था। उसे राजश्री रामचन्द्र पांडुरंग

1. Political Consultation. Political proceedings supplement. 30th Dec. 1859. No 644.
(Published in the issue of Marathi Bi-weekly 'kesari' Poona, dated 9th May 1939. Page 4).

२. ६ मार्च, १८५८.

टोपे ने धावा करके फ़तह किया। यहाँ २० तोपों की सलामी दी गई। आप भी वहाँ इस खुशी में तोपों की सलामी दें। अधिक क्या लिखें, अशिर्वाद।"

उल्लिखित पत्र तीन व्यक्तियों को भेजे जाने वाले थे। एक तो जलौन की ताईबाई को, एक झांसी की लक्ष्मीबाई को और एक अलीबहादुर (बांदा के नवाब) को। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पहला पत्र किसी कारण से महारानी लक्ष्मीबाई को न भेजा जा सका। अन्यथा यह काल्पी में न मिलता। झांसी से भागते समय माहारानी यह पत्र काल्पी लाई हों, इसकी संभावना बहुत कम है।

(२)

दूसरा पत्र राव साहब के नाम नवाब बाँदा का है :

"छः रजब सम्वत् १९१४ पितृतुल्य की सेवा में पुत्रवत् अलीबहादुर का चरण मस्तक टेककर आदाब व तसलीमात। निवेदन है कि २० रजब (७ मार्च १८५८) तक पितृतुल्य की कृपा से मुक़ाम बान्दा में सेवक का सब हाल ठीक है। विशेष यह कि पेशवा जी का श्रीमंत राजमान्य राजश्री नारायण रावसाहब के नाम का पत्र पितृतुल्य की ओर से आया (उसे मैंने) अहलकार द्वारा उनके पास रवाना कर दिया। उत्तर आने पर सेवा में भेजूंगा। (मेरा) अन्दाज़ है कि मेरी प्रार्थना के अनुसार ही (यह पत्र) भेजा गया होगा। राजापुर के घाट के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में सेवक को वहाँ की सब कार्य-

वाहियों का पता है। पर (इस सम्बन्ध में) वह नहीं लिख सकता। पितृतुल्य को इसका अर्थ रामजी और लेधे जमादार के निवेदनों से पता चल ही गया होगा। राजापुर घाट की अव्यवस्था समझकर भी पितृतुल्य की आज्ञा तथा सूचना के बिना बखेड़ा बढ़े इस हेतु से सेवक पर नज़र रखें (अर्थ अस्पष्ट)। भागचीला वगैरह घाट का बन्दोबस्त यहाँ से बखूबी किया है। पर इस ओर के राजे-रईसों की सलाह से राजापुर वगैरह मार्ग से गोरों के आने का खटका बना रहता है। इसलिये यह स्थान एक क्षण के लिए भी खाली छोड़ना ठीक नहीं मालूम होता। इधर श्रीकृपा और महाराज के पुण्य-प्रताप से राजश्री तात्या टोपे ने चरखारी में विजय प्राप्त की। इससे निश्चय हुआ कि किला भी शीघ्र ही हाथ में आ जायेगा। सब सरदार तो हैं ही। पर उनमें ज़िला फ़तह नवीस जवाँमर्द और कारगुज़ार मालूम हुए। चरखारी की फ़तह से सब बुन्देलखण्ड पर सरकार (पेशवा) की अमलदारी जल्दी ही होगी। सेवक को दिन-रात उम्मेद हो गई है कि सरकार की दौलत बढ़ रही है क्योंकि सरकार की बढ़ती में सेवक की बहतरी है। सेवक के घराने पर, अपना ही समझकर, पितृतुल्य की हमेशा कृपा रही है। (सेवक की) सब नामवरी सरकार द्वारा ही दी गई है। फाल्गुन शुक्ल (२८ फरवरी १८५८) के आज्ञापत्र में

---

१. कर्वी (चित्रकूट) के नारायण राव पेशवा।

हुक्म सादिर हुआ है कि इधर जो कुछ कार्यवाही होगी वह आपकी सलाह से ही होगी। किसी बात की चिन्ता न करें। पितृतुल्य के चरण सब पार लगा देंगे। आपने अपनी ओर से जो बन्दोबस्त किया है वह उसी प्रकार बनाये रखें। इससे भी सेवक की खातिरजमाई हुई है। इस ओर के सब हाल पितृतुल्य की सेवा में निवेदन करना आवश्यक है। आगे जैसी आज्ञा होती रहेगी उसे सिर पर चढ़ाकर काम करने को तैयार हूँ। सेवा में निवेदन है।"

३)

तीसरा पत्र रावसा ब के नाम तात्या टोपे का है :

"छ रजब शक १७७६ (१४ मार्च १८५८) स्वामी की सेवा में निवेदन है कि सेवक रामचन्द्र पाण्डुरंग टोपे का दोनों हाथ जोड़कर साष्टांग नमस्कार। निवेदन है कि छ २३ माह रजब (१० मार्च, १८५८) तक मुकाम चरखारी में सेवक का सब हाल ठीक है। विशेष (यह कि) हुज़ूर का आज्ञापत्र २१ माह (८ मार्च) को मिला। मजकूर समझा। उनके उत्तर तथा इधर के मजकूर (के सम्बन्ध में) निवेदन (है कि) :—

१. राजा की ओर से तीन लाख रुपये आये। इस सम्बन्ध में पेशजी ने प्रार्थनापत्र में निवेदन किया है।

१. किले वगैरह का बन्दोबस्त सरकार की आज्ञानुसार करूंगा।

१. तोपखाना आदि फालतू-फालतू असवाब राज-श्री वामनराव के साथ रवाना कर देता हूँ।

१. राजा रूपसिंह, निरंजनसिंह और महेन्द्रसिंह के साथ रामभाऊ सिमथर वाले को भेजने की पूरी व्यवस्था की गई है। पेशजी के प्रार्थना-पत्र में (यह सब) लिखा गया है। रामभाऊ को जोशी के साथ रवाना कर रहा हूँ।

१. विश्वासराव लक्ष्मण जालौन वाले से चालीस हज़ार रुपये निकासी लेने का करार हुआ है। सरकार ने यह बहुत अच्छा किया।

१. सरकार को सवारी के लिए घोड़ा चाहिए। पर यहाँ घोड़ा नहीं है। प्राप्त करने की तजवीज़ कर रहा हूँ।

२. पालक एक हाती अठारापनी (आगे का कागज़ फट गया है) इस सम्बन्ध में पेशजी ने प्रार्थना की है। जैसी आज्ञा होगी वैसा करूंगा। यह मजकूर लिखा है। आपके सामने आयेगा। अधिक क्या लिखें। यह निवेदन

प्रातःकाल एक प्रहर दिन.

परिशिष्ट नं० २

कथित तात्या का अदालत में वक्तव्य

१० अप्रैल, सन् १८५९ ई० को मेजर मीड की उपस्थिति में मुशाइरी की अंग्रेज़ी छावनी में तात्या टोपे ने निम्नलिखित बयान दिया था। तात्या कहते जाते थे तथा मुंशी गंगाप्रसाद इस बयान को लिखते जाते थे। इस बयान के अन्त में तात्या ने अपने हस्ताक्षर किये थे। अदालत के अनुवादक लेफ्टीनेण्ट गिबन ने इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था :

" मेरा नाम तात्या टोपे है। मेरे पिता का नाम पांडुरंग है। मेरे पिता जोला परगना, ज़िला पाटोड (अहमद नगर) के रहने वाले हैं। मैं बिठूर का रहने वाला हूँ। मेरी आयु लगभग ४५ वर्ष की है। मैं नानासाहब का सेवक हूँ। मेरा पद उनके साथी का तथा उनके अंगरक्षक (एडी कैम्प) का है।

" १८५७ के मई मास में कानपुर के कलक्टर ने नानासाहब के नाम एक पत्र बिठूर भेजा। इसमें नानासाहब से उसने प्रार्थना की थी कि वे उसको पत्नी तथा बच्चों को विलायत भेजने की व्यवस्था करें। नाना ने इसे स्वीकार किया। चार दिनों बाद कलक्टर ने उन्हें (पुनः) लिखा कि वे बिठूर से अपनी सेना के साथ कानपुर आ जायँ। नाना अपने साथ १०० सिपाही, ३०० बन्दूकची (तथा) दो तोपें लेकर कानपुर के कलक्टर के घर पहुँचे। वह उस समय घर न था। उसने सन्देश भेजा कि आप लोग वहीं (उसके घर)

रहें। प्रातःकाल कलक्टर आया। उसने नाना से कहा कि वे कानपुर के अपने घर में रहें। हम लोग चार दिनों तक वहीं रहे। उसने (कलक्टर ने) कहा कि यह सौभाग्य की बात है कि आप हमारी सहायता को आ गये हैं क्योंकि सिपाही आज्ञा पालन नहीं कर रहे हैं। उसने यह भी कहा कि वह उनके सम्बन्ध में जनरल को लिखेगा। जनरल ने आगरे को (लेफ़्टीनेण्ट गवर्नर को) लिखा। वहाँ से कहा गया कि हमारे आदमियों के वेतन की व्यवस्था की जायेगी।

"दो दिनों बाद तीन पैदल सेनाओं और दूसरे नम्बर की घुड़सवार सेना ने हम लोगों को घेर लिया तथा नाना को और मुझे खज़ाने में बन्द कर दिया तथा शस्त्रागार तथा खज़ाना लूट लिया। खज़ाने में उन्होंने कुछ भी न छोड़ा। सिपाहियों ने नाना को २ लाख ११ हज़ार रुपये दिये। पर उस (धन) पर भी उन्होंने अपने पहरेदार नियुक्त किये। नाना भी इन सन्तरियों की निगरानी में थे। हमारे सिपाही भी विद्रोहियों से मिल गये। इसके बाद सारी सेना ने वहाँ से कूच किया। विद्रोहियों ने नाना को, मुझको तथा हमारे सब कर्मचारियों को अपने साथ ले लिया और बोले, 'दिल्ली चलो'। कानपुर से ६ मील दूर जाने पर नाना ने कहा कि दिन प्रायः समाप्त हो चुका है, अतएव यहीं रुक जाना ठीक होगा। प्रातःकाल पुनः कूच किया जा सकता है। रात को समस्त सेना ने नाना से कहा कि वे उनके साथ दिल्ली चलें। उन्होंने (दिल्ली जाने से) इन्कार कर दिया। तब वे (सिपाही) बोले, 'हमारे साथ कानपुर चलकर (अंग्रेज़ों से) युद्ध करो।' नाना ने इसपर

एतराज किया पर उन्होंने उनकी एक न सुनी। इस प्रकार वे उन्हें कैदी के रूप में कानपुर ले आये और यहाँ आकर लड़ाई छेड़ दी। २४ दिनों तक लड़ाई होती रही। चौबीसवें दिन जनरल ने सुलह का झंडा फहराया और लड़ाई समाप्त हुई। नाना ने एक गिरफ्तार की गई स्त्री द्वारा व्हीलर के पास पत्र भेजा कि सिपाही उसकी आज्ञा नहीं मानते, पर अगर वे चाहें तो उनको तथा उनके साथियों को इलाहाबाद भेजने की व्यवस्था की जा सकती है। जनरल का उत्तर आया कि वह इस (व्यवस्था) को पसंद करते हैं। उसी दिन शाम को जनरल ने नाना के पास एक लाख से भी अधिक रुपये भेजे और उन्हें इस रकम को रखने का अधिकार दिया। दूसरे दिन मैंने ४० नावें ठीक कीं और उनमें पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों को बैठाकर इलाहाबाद के लिए रवाना किया। इसी समय सारी सेना—जिनमें तोपखाना भी शामिल था,—तैयार होकर गंगा के पास आई। सिपाही पानी में कूद पड़े और स्त्रियों और बच्चों की हत्या करने लगे और नावों में आग लगा दी। उन्होंने ३९ नावें नष्ट कर डालीं। पर एक नाव काला काँकर तक पहुंची। पर वह भी वहाँ पकड़ ली गई और कानपुर वापस लाई गई। उसके सब लोग मार डाले गए।

"चार दिनों बाद नाना ने कहा कि वह अपनी माता का श्राद्ध करने बिठूर जायेंगे। सिपाहियों ने उन्हें जाने दिया। कुछ सिपाही उनके साथ बिठूर गए। श्राद्ध के बाद वे उन्हें कानपुर ले आये। नाना को जो रुपये पहले दिए गए थे वे सेना के सिपाहियों की तनख्वाह को बाँटने के लिए ले लिये गये।

" उन्होंने (सिपाहियों ने) हसन फतहपुर में (अंग्रेज़ों से) लड़ने की तैयारी की। उन्होंने सुना था कि फतेहपुर में अंग्रेज़ों का सेना आ पहुँची है। उन्होंने नाना को साथ चलने को कहा। नाना ने इन्कार कर दिया। नाना और मैं कानपुर में ही रह गये। नाना ने ज्वालाप्रसाद को अपनी ओर से उनके साथ भेजा। वहाँ हारकर वे कानपुर वापस आए। योरोपियन सेना ने कानपुर तक उनका पीछा किया। यहाँ फिर दो घंटे लड़ाई हुई। विद्रोही सेना पुनः हार गई। ऐसी स्थिति में मैं और नाना बिठूर की ओर भागे। वहाँ हम लोग मध्यरात्रि को पहुँचे। विद्रोही सेना हमारे पीछे ही लगी हुई थी। दूसरे दिन कुछ धन साथ लेकर नाना फतेहपुर[1] पहुँचे। विद्रोही सेना नाना के पीछे बिठूर पहुँची और उसने बिठूर को लूटा। नानासाहब, बालासाहब, रावसाहब तथा मैंने अपनी-अपनी पत्नियों के साथ गंगा पार की। (इस प्रकार) हम लोग लखनऊ के राज्य में फतेहपुर आ गए और चौधरी भोपालसिंह के यहाँ रहने लगे। कुछ दिनों बाद जब ४२ नंबर की सेना शिवराजपुर पहुँची और उसने नाना को लिखा कि वे किसी ऐसे आदमी को भेजें जो उन्हें उन तक पहुँचा सके, मैं वहाँ पहुँचा और उनसे कहा कि नाना ने उन्हें बुलाया है। इतने में वहाँ अंग्रेज़ी सेना आ पहुँची। ४२वीं सेना बिठूर पहुँची और वहाँ युद्ध हुआ। मैं उनके साथ था। हार जाने पर हम लोग (भागकर) गंगा पार पहुँचे और नाना के पास आ पहुँचे।

---

१. फतेहपुर (चौरासी) उन्नाव जिले में है।

"कुछ दिनों बाद नाना ने मुझे आज्ञा भेजी कि ग्वालियर जाकर मुरार की सहायक सेना को लड़ने के लिए ले आऊँ। मुरार जाकर सहायक सेना को मैं काल्पी ले आया। नाना ने अपने भाई बालासाहब को काल्पी भेजा और उनकी आज्ञा के अनुसार मैं सेना के साथ कानपुर के विरुद्ध लड़ने गया। काल्पी में मैंने थोड़ी सेना तथा एक तोपखाना छोड़ दिया था। कानपुर में ११ दिनों तक युद्ध होता रहा। जब विद्रोही सेना हार गई तब हम सब भाग खड़े हुए। दूसरे दिन हम लोग शिवराजपुर में लड़े। यहाँ हारकर १५ तोपें लेकर हम भाग खड़े हुए। इसी समय नाना ने रावसाहब को कानपुर भेजा था। बालासाहब तथा रावसाहब के साथ नानामऊ के घाट से मैंने गंगापार की। रात-भर हम खेड़ा में रहे। रावसाहब ने मुझे आज्ञा दी कि काल्पी की सेना तथा तोपखाने को संभालूं। इसके अनुसार मैं काल्पी गया। वहाँ पहुँचने के बाद मुझे नाना की आज्ञा मिली कि मैं चरखारी पर आक्रमण करूँ। रावसाहब भी मेरे पीछे आने वाले थे। इसके अनुसार मैं ६०० सिपाही, २०० घुड़सवार तथा चार तोपों के साथ मैं चरखारी गया और लड़ाई आरम्भ हुई। चार दिनों के बाद रावसाहब काल्पी आये। ११ दिनों तक लड़ने के बाद मैंने चरखारी पर अधिकार कर लिया। मैंने राजा से ३ लाख रुपये तथा २४ तोपें लीं। इस समय वहाँ बानपुर और शाहगढ़ के राजा, दीवान देशपत और कचवाया खरवाल (?) के दौलतसिंह आदि बहुतसे लोग आकर मुझसे मिल गये थे। (यहीं) मेरे पास झाँसी की रानी का पत्र आया कि वह योरोपियनों से लड़ रही है और उसने

मुझसे प्रार्थना की थी कि मैं उनकी सहायता के लिए पहुँचूं। मैंने इसकी सूचना काल्पी में रावसाहब के पास भेजी। जयपुर आकर रावसाहब ने झाँसी की सहायता करने की आज्ञा दी। इसके अनुसार मैं झाँसी पहुँचा और बरवा सागर में ठहरा। वहाँ राजा मानसिंह मुझसे आकर मिले। दूसरे दिन झाँसी से एक मील दूर हमारी सेना और अंग्रेज़ी सेना में युद्ध हुआ। उस समय २२ हज़ार सैनिक तथा २८ तोपें थीं। इस युद्ध में हम हार गये। कुछ विद्रोही सैनिक चार-पाँच तोपें लेकर भागकर काल्पी पहुँचे। २०० सिपाहियों के साथ और भांडेर और कोंच होते हुए मैं काल्पी पहुंचा। उसी दिन शाम को रानी काल्पी पहुँची और उसने रावसाहब से कहा कि वह उसे कुछ सेना दे ताकि वह लड़ सके। दूसरे दिन प्रातःकाल रावसाहब ने समस्त सेना को परेड करने की आज्ञा दी और मुझसे कहा कि मैं रानी के साथ युद्ध में जाऊँ। इसके अनुसार मैं रानी के साथ सेना लेकर गया। कोंच में लड़ाई हुई जो दोपहर तक होती रही। हम पुनः हार गए। मैं भागकर चुर्खी पहुँचा। यह जालौन से चार मील की दूरी पर है। यहाँ मेरे कुटुम्बी रहते थे। बाद में रावसाहब ने काल्पी में युद्ध किया पर हार गये। अपनी सेना के साथ वे गोपालपुर पहुँचे। वहाँ से हम लोग ग्वालियर की ओर रवाना हुए। हमें महाराजा सिन्धिया से एक दिन युद्ध करना पड़ा। उन्हें हमने हराया। तीन दिनों के बाद सिन्धिया की सब सेना रावसाहब से मिल गई। खज़ांची अमरचन्द भाटिया द्वारा ग्वालियर के खज़ाने का काफ़ी धन मिला। इससे सिपाहियों को तनख्वाह बाँटी गई। रामराव

गोविन्द भी हमारे साथ था।

"कुछ दिनों बाद काल्पी से अंग्रेज़ी सेना ग्वालियर पहुँची। सिरपुर (शिवपुरी) से भी एक सेना आई। पुनः युद्ध हुआ। यह ४–५ दिनों तक चलता रहा। इस युद्ध में झाँसी की रानी मार डाली गई। रामराव गोविन्द ने उनके मृत शरीर को जला दिया। (इस युद्ध में) हम सब हार गए। २५ तोपें साथ लेकर हम भाग खड़े हुए। ज़ोरा अलीपुर पहुँचकर हम लोग रातभर वहाँ रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल हमपर आक्रमण किया गया। हम डेढ़ घण्टे तक लड़ते रहे। हमने पाँच बार गोले दागे, अंग्रेज़ी सेना ने चार बार। सब तोपें छोड़कर हम भाग खड़े हुए। चम्बल पहुँचकर हम टोंक पहुँचे। टोंक के नवाब ने हमसे युद्ध किया। हमने उससे चार तोपें छीन लीं। इन तोपों के साथ हम माधोपुर और इन्दरगढ़ होते हुए भीलवाड़ा पहुँचे। यहाँ अंग्रेज़ी सेना ने हमपर आक्रमण किया। रात में ही अपनी सेना तथा तोपों के साथ मैं भाग खड़ा हुआ। इस समय मेरे पास आठ-नौ हज़ार सैनिक और ४ तोपें थीं। रात को हम नाथद्वारा से ४ मील दूर कोटरा में रहे। दूसरे दिन सुबह हम पाटन की ओर रवाना हुए। एक मील आगे बढ़ते ही अंग्रेज़ी सेना आ गई। अपनी तोपें छोड़कर हम भाग खड़े हुए और शरणार्थी के रूप में पाटन पहुंचे। इस समय हमारे साथ थे बान्दा के नवाब बान्दा, जो काल्पी से हमारे साथ थे। कमोना के नवाब हमें इन्दुर्की में आकर मिले थे।

"पाटन पहुँचकर हमने राजा को जीत लिया। उसकी तोपें और बारूदखाने पर हमने अधिकार कर लिया और

उसके महल को घेर लिया । दूसरे दिन मैंने राजा से कहा कि वह सेना के खर्च के लिये धन दे । उसने कहा कि वह केवल पाँच लाख रुपये दे सकता है । दूसरे दिन रावसाहब ने राजा को बुलवाया और २५ लाख रुपयों की माँग की । राजा ने कहा कि वह ५ लाख से अधिक देने में असमर्थ है । पर थोड़ी-सी बहस के बाद यह तय हुआ कि राजा १५ लाख रुपये दे । राजा ने कहा कि वह महल जाकर रुपये भेज देगा । तदनुसार वह चला गया और उसने सवा दो लाख रुपये भेजे और उसने वादा किया कि बाकी रकम पहुँच जायेगी । दूसरे दिन उसने ५ लाख रुपये दे दिये ।

"पाँचवीं घुड़सवार सेना के वर्दी मेजर इमामअली ने राजा से दुर्व्यवहार किया । रात में राजा भाग गया । यहाँ हम ५ दिनों तक रहे । हमने अपनी सेना को यहाँ तीन मास का वेतन दिया । सवार को ३० रुपये तथा पैदल को १२ रुपये प्रतिमास दिये गये । १८ तोपें साथ लेकर हम सिरोंज के लिए रवाना हुए । राजगढ़ पहुँचने पर अंग्रेज़ी सेना ने हमपर आक्रमण कर दिया । अपनी तोपें छोड़कर हम भाग खड़े हुए तथा निजाकिला होते हुए सिरोंज पहुँचे । हम लोग आठ दिनों तक सिरोंज में रहे और वहाँ से ईसागढ़ के लिए रवाना हुए । यहाँ पहुँचकर हमने रसद मांगी पर लोगों ने रसद नहीं दी । हमने उसपर हमला किया और उसे लूट लिया । यहाँ हम ठहर गये । दूसरे दिन रावसाहब ने मुझे चन्देरी जाने को कहा तथा वे स्वतः तालबेट मार्ग से आगे बढ़े । इसके अनुसार मैं चन्देरी पहुँचा तथा रावसाहब ललितपुर पहुँचे । चन्देरी के

किले से हमपर चार गोले दागे गये। हमने किले पर आक्रमण किया, सिन्धिया के कर्मचारियों से युद्ध किया। तीन दिनों बाद ११ तोपों के साथ हम मँगरौली (मुगावली) पहुँचे। इनमें से ७ हमें ईसागढ़ में मिली थीं और ४ सिरोंज में। मँगरौली के मार्ग पर हमें अंग्रेज़ी सेना मिली। थोड़ी देर तक गोलाबारी होती रही। बाद में हम अपनी सब तोपें छोड़कर भाग खड़े हुए।

"झाखलौन पहुँचने के दूसरे दिन हम सुलतानपुर पहुँचे। यहाँ रावसाहब भी आ पहुंचे थे। तीन दिन बाद अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुँची। रावसाहब अपनी सेना को जाखलौन ले गये। वहाँ थोड़ी गोलाबारी हुई। इस लड़ाई में मैं उपस्थित न था। रावसाहब ललितपुर लौट आए। दूसरे दिन वे कजरिया पहुँचे और वहीं रुक गये। दूसरे दिन जैसे ही हम लोग रवाना होने वाले थे वैसे ही अंग्रेज़ी सेना आ गई। डेढ़ घंटे तक लड़ाई चलती रही। हम लोग अपनी सब तोपें छोड़कर भाग खड़े हुए और तालबेहट पहुँचे। उस दिन वहाँ रुककर दूसरे दिन झाखलौन गये। वहाँ से इटावा पहुँचे, जो १२ मील की दूरो पर था। यहाँ हम रुके। यहीं हमें पता लगा कि अंग्रेज़ी सेना हमें घेरने के लिए आ रही है। रात ही में हम लोग वहाँ से चल दिये। प्रातःकाल अंग्रेज़ी सेना आई। हमारी सेनाएं अलग-अलग हो गईं। मैं रावसाहब के साथ हो लिया और राजगढ़ होते हुए आगे बढ़ा, और नर्मदा को पार कर कण्डला होते हुए खारगोन की बस्ती पहुँचे। हमारे साथ की सेना ने कण्डला का थाना जला दिया। रावसाहब ने बहुत रोका पर वह न मानी। यह चार

मास पूर्व की बात है। खारगोन बस्ती में होलकर के १५० पैदल सैनिक, घुड़सवारों की एक टोली और दो तोपें थीं। हमारे पक्ष में आने के लिए हमने इन्हें बाध्य किया, और इन्हें साथ लेकर दूसरे दिन हम गुजरात की ओर रवाना हुए। हमने उस मार्ग को पार किया जिसपर तार दौड़ी हुई थी। सिपाहियों ने तार काट डाले और ७ बैलगाड़ियों को लूट लिया, जिसमें सरकारी सामान ग्वालियर जा रहा था। हमने गाड़ियों के साथ के चपरासियों और चौकीदारों को पकड़ लिया। और उन्हें अपने साथ रखा। कुछ चौकीदारों को उन्होंने (सिपाहियों ने) फाँसी लटका दिया। सड़क छोड़कर हम पश्चिम की ओर बढ़े।

"दूसरे दिन अचानक अंग्रेज़ी सेना ने आक्रमण किया। दो तोपें छोड़कर हम भाग खड़े हुए और नर्मदातट पर पहुँचे। दूसरे तट पर सौ सैनिकों के साथ एक (अंग्रेज़) अफसर था। ज्योंही हमारी सेना पार होने लगी त्योंही वे सैनिक भाग खड़े हुए। हमने चिकला को लूटा और मध्यरात्रि को ही वहाँ से चल दिये। ३४ मील चलने के बाद हम राजपुर में रुके। वहाँ के राजा से हमने दूसरे दिन ३६०० रुपये और तीन घोड़े लिए और छोटा उदयपुर के लिये रवाना हुए। दूसरे दिन अंग्रेज़ी सेना ने हमपर छापा मारा। कुछ उनके लोग मारे गए, कुछ हमारे। छोटा उदयपुर से हम देवगढ़ बारी गए और वहाँ से हमारी सेना बँट गई। यहाँ जंगल था। हम यहाँ दो दिन रुके। सेना के पुनः एकत्रित होने पर हम बाँसवाड़ा गये। यहाँ हमारी सेना ने १७ ऊंटों को लूट लिया, जिनपर

व्यापारियों का कपड़ा लदा हुआ था। यहाँ से हम सलोमार पहुँचे। उदयपुर के राजा के प्रतिनिधि सरसिंह से कहा कि वह हमें रसद दे। उसने कुछ रसद भेजी और उदयपुर की ओर रवाना हुए। रास्ते में हमें अंग्रेज़ी सेना का समाचार मिला और हम भीलवाड़ा वापस आये। वहाँ दो दिन रुककर हम प्रतापगढ़ पहुँचे। यहाँ नीमच की अंग्रेज़ी फौज से हमारी दो घंटे लड़ाई हुई। शाम को ८ बजे हम भाग खड़े हुए और मन्दसौर से ६ मील दूर आकर रुके। तीन मंज़िलों के बाद हम जीरापुर पहुँचे। यहाँ एक अंग्रेज़ सेना ने हमपर छापा मारा और इसी प्रकार छपरा-बरोद में भी हमपर छापा मारा गया। हम भागकर नहरगढ़ पहुँचे। यहाँ हमपर तोपों के नौ गोले बरसाये गए। हम तोपों की मार के बाहर हो गए और रात-भर वहाँ रहे। रावसाहब ने रिसालदार नन्नूखाँ को राजा मानसिंह को बुलाने भेजा। राजा आए और पड़ौन से २ मील तक हमारे साथ रहे। यहाँ हम ठहर गये। दो दिन रहने के बाद तीसरे दिन हम किलवारी से आठ मील आगे पहुँचे। राजा मानसिंह नदी तक हमारे साथ तक आये। जब हम नदी के पार हुए तो वे चले गये। दो मंज़िलों के बाद हम इन्दरगढ़ पहुँचे, जहाँ फीरोजशाह अपने अंग-रक्षकों और बारहवीं सेना के साथ मिले। दूसरे दिन दो मंज़िलें तय कर हम देवसा पहुँचे। अंग्रेज़ी सेना ने अचानक हमपर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर के कुछ आदमी मारे गये। वहां से हम मारवाड़ की ओर भागे। हम एक गांव पहुँचे जो मारवाड़ से ६० मील दूर था। इसका नाम मैं भूल गया हूँ। उस

रात को चार बजे अंग्रेज़ी सेना ने हमपर छापा मारा और बारहवीं घुड़सवार सेना रावसाहब की सेना से अलग हो गई दूसरे दिन ठाकुर नारायणसिंह, मानसिंह के चाचा अजीत और गंगासिंह हमारे साथ हो लिये। वे इसी ओर आ रहे थे देवगढ़बारी से मेरा और रावसाहब का झगड़ा होता आ र था। मैंने उनसे कहा कि पहला अवसर मिलते ही मैं उन अलग हो जाऊंगा क्योंकि मैं बहुत थक गया हूँ। यहाँ मौका मिला और मैंने उनका साथ छोड़ दिया और उपर्युक्त दलों के साथ हो लिया।

" जिस समय मैंने रावसाहब का साथ छोड़ा उस समय उनके पास छः हज़ार जवान थे। मेरे साथ केवल तीन आदमी थे। दो खाना बनाने वाले तथा एक सईस। मेरे साथ तीन घोड़े और एक टट्टू भी था। साथ में रामराव और नारायण (नामक) दो पंडित थे। सईस का नाम गोविन्द था, जो हमारे साथ दो मंज़िल रहा और बाद में भाग गया। हम पड़ौन के जंगलों में पहुँचे और राजा मानसिंह से मिले। राजा मानसिंह से छुट्टी लेकर अजीतसिंह अपने घर चले गये। मैं तथा नारायणसिंह मानसिंह के साथ रहे। राजा ने कहा, 'तुमने अपनी सेना का साथ क्यों छोड़ दिया ? तुमने अच्छा नहीं किया।' मैंने उत्तर दिया, 'मैं दौड़ते-दौड़ते थक गया था और चाहे मैंने अच्छा किया या बुरा, अब मैं तुम्हारे ही साथ रहूँगा।' बाद में मैंने सुना कि रावसाहब की सेना पाटण गई और वहीं से सिरोंज की ओर गई। मैंने राजा मानसिंह से कहा कि मैं आदमी भेजकर उनका पता करता हूँ, और मानसिंह ने